ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ - A Social Science Research Journal

Peer Reviewed Bilingual International Research Journal

The Journal Indexed in the UGC-CARE list.

वर्ष 30 * अंक - 120 जनवरी-मार्च, 2025

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

मध्यपदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उनमूलन, दलितों में मानवीय–अस्मिताबोध एवं अधिकार–चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन को प्रवर्त करना है। जिससे कि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं से मौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित है।

- आलेख MS-Word में A-4 आकार के पेपर पर डबल स्पेस में Kruti Dev010 फॉण्ट में टाईप होना चाहिए।
- आलेख 5000 से 8000 शब्दों के बीच होना चाहिए। शोध आलेख के साथ 150 शब्दों का सांराश भी भेजे।
- शोध आलेख E-mail ID : mpdsaujn@gmail.com पर प्रेषित करें।
- प्रकाशन हेतु प्राप्त प्रत्येक शोध आलेख की दो विषय विशेषज्ञों द्वारा समीक्षा की जायेगी । समसामयिक प्रासंगिकता, स्पष्ट एवं तार्किक विश्लेषण, सरल एवं बोधगम्य भाषा, उचित प्रविधि मौलिकता आदि आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकृति के मानदण्ड होंगे।
- किसी भी आलेख को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक का होगा।
- सभी टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ आलेख के अन्त में दिये जाएँ तथा आलेख में यथास्थन उनका आवश्यक रूप से उल्लेख करें।
- पुस्तकों के लिए सन्दर्भ हेतु निम्न पद्धति का अनुसरण करें:
  उपनाम, नाम, (प्रकाशन वर्ष), पुस्तक का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन स्थान, पृष्ठ क्रमांक
- जर्नल के लिए सन्दर्भ हेतु निम्न पद्धति का अनुसरण करें:
  उपनाम, (प्रकाशन वर्ष), आलेख का शीर्षक, जर्नल का नाम, अंक, खण्ड, प्रकाशक, प्रकाशन स्थान, पृष्ठ क्रमांक

ग्राहक शुल्क दरें (Rates of Subscription) इस प्रकार है–

वार्षिक शुल्क : संस्थागत रू. 700/– वैयक्तिक रू. 600/–

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.) 456010

म.प्र. दलित साहित्य अकादमी के लिये पी.सी. बैरवा द्वारा
न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन से मुद्रित एवं प्रकाशित
सम्पादन – डॉ. हरिमोहन धवन

आर.एन.आई. रजिस्ट्रेशन नं. 61954/95 **ISSN 0974-1100**

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ **A Research Journal of Social Sciences**

Peer Revied Bilingual International Research Journal
This Journal is included in the UGC-Consortium for Academic and Research Ethics

वर्ष 30, अंक 120 जनवरी–मार्च, 2025

❒

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

❒

प्रकाशक

पी.सी. बैरवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010

दूरभाष (0734) 2518737

E-mail : mpdsaujn@gmail.com Website : www.mpdsa.org

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

परामर्श मण्डल

डॉ. प्रकाश बरतुनिया
पूर्व कुलाधिपति– बाबा साहेब अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. अनिल दत्त मिश्रा
प्रतिष्ठित गांधीवादी विद्वान व वरिष्ठ उपाध्यक्ष, सुलभ अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सेवा संगठन, नईदिल्ली

डॉ. रामगोपाल सिंह
पूर्व आचार्य, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)

डॉ. जयप्रकाश कर्दम
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

डॉ. हीरालाल अनिजवाल
अतिरिक्त संचालक, उज्जैन संभाग, उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश

डॉ. डी. डी. बेदिया
आचार्य एवं निदेशक, व्यवसाय प्रबंध संस्थान, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सम्पादक मण्डल

डॉ. ज्ञानचन्द्र खिमेसरा
पूर्व आचार्य अर्थशास्त्र व प्राचार्य, शास.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर

डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलु
पूर्व आचार्य इतिहास व प्राचार्य, शास. माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. शैलेन्द्र पाराशर
पूर्व आचार्य समाजशास्त्र व अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. प्रेमलता चुटैल
पूर्व आचार्य, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. अरूण कुमार
प्राध्यापक,राजनीति विज्ञान, शासकीय तिलक महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन
आचार्य, राजनीति विज्ञान व पूर्व प्राचार्य, उच्च शिक्षा विभाग, (म.प्र.)

प्रकाशक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,
बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

वर्ष 30, **अंक** 120 **जनवरी–मार्च, 2025**

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

वर्ष 30 अंक 120 जनवरी–मार्च, 2025

❐ अनुक्रम ❐

1. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन में सामाजिक समन्वय : सामाजिक न्याय की अवधारणा — डॉ. विक्रम सिंह — 1

2. गांधी दर्शन में महिला उत्थान — डॉ. विकास भड़िया — 7

3. आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली : महात्मा जयोतिबा फुले और महात्मा गांधी के चिंतन की समीक्षा — सुरेश कुमार मिठारवाल, डॉ. कैलाश चन्द सामोता — 13

4. ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने का माध्यम महिला स्व–सहायता समूह – एक अध्ययन — अनामिका साहू, डॉ. जी.डी.एस. बग्गा — 25

5. चम्बा क्षेत्र में नाग परम्परा व संस्कृति : एक अवलोकन — लकेश कुमार, डॉ.राजीव कुमार — 36

6. भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक दलों का वित्तपोषण — शिखा ओझा, प्रो. रिपु सूदन सिंह — 44

7. वर्तमान परिदृश्य में थारू जनजाति के बदलते सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिमान — विनय कुमार विश्वकर्मा — 56

8. लखनऊ शहर रिक्शा चालकों के उत्पीड़न का समाजशास्त्रीय अध्ययन — मिलिन्द सेन — 64

9. मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं का इस्लाम में धर्मान्तरण व जनसंख्या वृद्वि : ट्रूथ एवं मिथ — रत्ना सिंह, डॉ. हेमन्त कुमार मालवीय — 78

10. **District-wise Decentralisation of the Tribes of Rajasthan State** — **S. K. Kulshrestha & K. R. Choudhary** — 95

11. Redefining Ostracism in Soundararajan's Trauma of Caste 102
Pooja Kamble & Prof. Vijay. F Nagannawar

12. Economic Empowerment of Women 108
A Study of Cuttack District (Odisha)
Sarita Mallick & Prof. (Dr.) Nibedita Mishra

13. 150 Years After Indenture : Continuity and Change in 126
the Caste Structure of Mauritian Girmitiyas
Shweta Sagar & R. N. Sharma

14. Impact of Post-Matric Scholarship on the Development of 137
Scheduled Tribes in Gujarat
Bhoomi N. Panchal & Dr. Kruti P Shah

15. India-Pakistan Cross-Border Conflict Regional and Global
Implications Rajeev Raushan Kumar 147

16. Job Satisfaction and Social Background of 154
Dalit Teacher Trainees in Colleges : A Study
Shrikant Singh & Dr. Nishat Fatima

17. Socio Economic Empowerment of the Self Help Group 163
Members Living in the Slums of Bhubneshwar City
Smaranika Sahoo & Prof. (Dr) Gayatri Biswal

18. Socio-Economic Status, Gender and Local in Relation to 172
Academic Achievment of Secondary School Students
Tasneem Ahmed & Dr. Zulfiqar Ullah Siddiqui

'पूर्वदेवा' में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है. सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 1–6

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन में सामाजिक समन्वय सामाजिक न्याय की अवधारणा

डॉ. विक्रम सिंह

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, हर्ष विद्या मन्दिर पी.जी. कॉलेज, रायसी, हरिद्वार–247671

E-mail : dr.vikramsingh154@gmail.com Mob. 9412825205

सारांश

सामाजिक समन्वय में विश्वास करने वाले डॉ. भीमराव अम्बेडकर साम्यवादी विचारधारा के विरोधी के साथ–साथ रूढ़ीवादी विचारधारा के भी विरोधी थे। वे परलोक में बिल्कुल विश्वास नहीं करते थे। उनका मानववादी विचारधारा में विश्वास था। वे स्वतन्त्रता, समानता एवम् भातृभत्व की विचाराधारा में विश्वास करते थे। वे समाज के आदर्शों को कर्म एवं कर्ता के स्रोत के रूप में देखते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति या समाज नियमों का अंधभक्त न बने। उनके अनुसार समाज में स्थापित मूल्यों का मूल्यांकन समय दर समय होता रहे, तभी समाज प्रगतिशील बन सकता है। उनके अनुसार सामाजिक नैतिकता ही न्याय की आत्मा होती है। अम्बेडकर जी ने स्वतन्त्रता से भी ऊपर समानता को रखा। गाँधी जी का लक्ष्य जहाँ देश को स्वन्त्रता कराना था वहीं दूसरी ओर अम्बेडकर जी का लक्ष्य स्वतन्त्रता को निम्न से निम्न तबके तक पहुँचाना था। अम्बेडकर के आदर्श समाज का मुख्य केन्द्र बिन्दु–व्यक्ति है न कि परम्परागत समाज व्यवस्था।

मूल शब्द– मानववादी, विचाराधारा, अंधविश्वासी, सामाजिक समन्वय, रूढीवादी, मानवीय मूल्य, परम्परागत समाज

प्रस्तावना

डॉ. भीमराव अम्बेडकर सामाजिक समन्वय में विश्वास करते थे यही कारण था कि वे साम्यवादी विचारधारा के खिलाफ थे। वे किसी भी तरह सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि किसी समाज में न्याय व समन्वय की सम्भावनाएं तभी बढ़ सकती हैं जब उनमें आदर्श एवं यथार्थ में समन्वय हो। डॉ अम्बेडकर के अनुसार "कोई भी समाज जिसमें सामाजिक चेतना है यह बात स्वीकार नहीं करता। इसके विपरीत व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में जो कुछ प्रगति हुई है वह इस सिद्धान्त को मानकर हुई है, जो कुछ

भी दोषपूर्ण ढँग से निश्चित हुआ है उसे निश्चित न समझा जाए,और वह फिर से निश्चित होना चाहिए।"[1] अम्बेडकर जी के सामाजिक न्याय के सिद्धान्त में निहित यह मत था कि समाज के मूल्यों व नियमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन हो ताकि सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, एवं राजनीतिक विभिन्नताओं एवं समानताओं में उचित समन्वय स्थापित हो सके। वे इस बात में विश्वास करते थे कि न्याय ऐसा हो जो अन्याय–पूर्ण वातावरण का अन्त कर सके।

डॉ अम्बेडकर सदियों से चली आ रही रूढ़ीवादी विचारधारा के विरोध में थे। वे परलोक में बिल्कुल विश्वास नहीं करते थे। वे इस विचारधारा के प्रबल विरोधी रहे कि इस धरती से परे कहीं स्वर्ग है। उनका मानना था कि इस धरती पर ही स्वर्ग व नरक है। यही कारण था कि वे ब्राह्मणवाद में विश्वास नहीं करते थे। अपनी मानववादी विचारधारा में उन्होंने व्यक्ति, समाज, आदर्श एवं न्याय में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। यही कारण था कि रूढ़ीवादी व अन्धविश्वासी विचारधारा के विरोध में उनका संघर्ष ता–उम्र नहीं रूका। वे रूढ़ीवादी हिन्दुओं को इस बात की अनुभूति कराना चाहते थे कि रूढीवादी विचारधारा से भारतीय समाज का उद्धार नहीं हो सकता है। समाज में यदि न्यायिक व्यवस्था को स्थापित करना है तो रूढ़ीवाद व अन्धविश्वास को छोड़ना होगा और किसी भी न्याायिक व्यवस्था का आधार कर्म होना चाहिए न कि जन्म।

न्याय के सिद्धान्त की विवेचना करते हुए प्रो. वारकर ने कहा है– "संस्थागत अच्छे मानवीय सम्बन्धों के लिए विभिन्न प्रकार के मूल्यों की जरूरत होती है। स्वतंत्रता,समानता एवं भ्रातृत्व सहयोग के विभिन्न मूल्य होते हैं। ये सभी मूल्य किसी भी कानून व्यवस्था में पाए जाते हैं परन्तु समय के साथ–साथ उनकी मान्यता एवं परिभाषा में अंतर आ जाता है। इसी के साथ–साथ इसमें परिवर्तन भी होते रहते हैं। स्वतंत्रता का अधिकार एवं मूल्य समानता के साथ समायोजित होना चाहिए।"[2] डॉ अम्बेडकर जी का मानना था कि लोगों को समाज के आदर्श या नियमों का अनुसरण आवश्यक रूप से करना चाहिए। वे समाज के आदर्शों को कर्म एवं कर्ता के स्रोत के रूप में देखते थे। उनका मानना यह भी था कि व्यक्ति या समाज नियमों का अन्धभक्त न बने। इन नियमों में सामाजिक सामंजस्यता एवं एकता परिवर्तित परिस्थितियों में लाई जा सकती है। समय के साथ इन नियमों में परिवर्तन की भी आवश्यकता होती है। यदि समाज के नियमों को निर्विवाद मान लिया जाए तो समाज प्रगतिहीन हो जाता है। समाज की प्रगति के लिए आवश्यकता है कि समाज में स्थापित मूल्यों का मूल्यांकन समय दर समय होता रहे। डा. अम्बेडकर सामाजिक नियमों को प्रमुख मानते हैं। उनका मानना है कि इससे ही समाज की गतिविधियां चलती रहेंगी। वे समाज की आवश्यकतानुसार नवीन मूल्यों एव नियमों को स्थान देने के पक्षधर थे। उनके अनुसार सामाजिक नैतिकता ही न्याय की आत्मा होती है।

फिक्टे एवं हीगल जैसे विचारकों का मत है "समाज एक ऐसी इकाई है जो व्यक्तियों से बिल्कुल स्वतंत्र एवं पृथक है एवं वास्तविक रूप से उनसे उच्च है। समाज के अधिकार एवं शक्तियां व्यक्ति से अधिक हैं। व्यक्तिगत हितों का संचालन समाज करता है और समाज एक ऐसी समष्टि है जिसमें व्यक्ति का बहुत कम महत्व होता है। समाज ऐसी संस्था या संगठन है जिसकी आज्ञाएं एवं नियम सभी व्यक्तियों, स्त्रियों एवं पुरुषों पर लागू नहीं होते वरन् उन पर बाह्य होते हैं।"**3**

इसके विपरीत जॉन लॉक का मत इस सम्बन्ध में दूसरा ही है। जॉन लॉक के अनुसार "समाज व्यक्तियों के समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। व्यक्ति ही महत्वपूर्ण होते हैं, समाज में उन्हीं के हित सर्वोपरि होते हैं।"[4] अम्बेडकर का मत इन दोनो ही मतों से भिन्न था। वे किसी भी मत से सहमत नहीं थे। वे समष्टि एवं व्यष्टि में समन्वय के पक्षपाती थे। वे न तो समाज को सर्वोपरि मानते थे और न ही व्यक्ति को। उन्होंने समाज एवं मानव के समग्र रूप में विश्वास किया। मनुष्य एवं समाज एक दूसरे से अलग न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। डॉ अम्बेडकर मानव को समाज का मौलिक तत्व मानते हैं, न कि बिल्कुल स्वतंत्र इकाई। मानव एक बुद्धिशील प्राणी है तथा समाज के बाहर उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। डॉ अम्बेडकर इसी के चलते सामाजिक न्याय की अवधारणा में विश्वास करते थे। सामाजिक विचार एवं मानव–प्रगति दोनों का मानव के विचार एवं स्वतंत्रता से गहरा सम्बन्ध है। रूढीवादी लोग परम्पराओं के महत्त्व पर बल देते हैं जबकि सुधारवादी लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल देते हैं। रूढ़ीवादी लोग परम्परा एवं विश्वास के महत्व को सिद्ध करने के लिए कुछ युक्तियां देते हैं–

(क) किसी समुदाय के सम्पूर्ण जीवन में परम्पराओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतः उस समाज को उसकी सुरक्षा के लिए यथासम्भव प्रयास करना चाहिए अन्यथा परम्परावादी सांस्कृतिक विरासत का अन्त हो सकता है।

(ख) इन परम्परावादी विश्वासों को समाप्त करने में काफी व्यावहारिक खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। इनमें प्रमुख सामाजिक विघटन एवं अराजकता है।

(ग) वे विश्वास जो आज तक जीवित हैं एवं संकटों के झंझावतों के मध्य समय की कसौटी पर खरे उतरें, उनमें सत्य का अंश है। इसके विपरीत सुधारवादियों का इन विश्वासों को लेकर अलग मत है। उनके अनुसार –

(अ) वर्तमान समय में नया ज्ञान हमारे सामने आ रहा है। पुराने सिद्धान्त आज के समय में अप्रासंगिक हो चुके हैं अतः उनके स्थान पर नवीन सिद्धान्तों की आवश्यकता है।

(आ) केवल प्राचीनता को ही किसी सिद्धान्त के सत्य की कसौटी पर खरा नहीं माना जा सकता है जैसे सती–प्रथा, नगर–वधू, देव–दासी प्रथा आदि को प्राचीनता के आधार पर सही नहीं ठहराया जा सकता है।

(इ) व्यक्ति का ज्ञान हमेशा सामाजिक प्रगति की तरफ अग्रसर रहना चाहिए, इसमें समाजोपयोगी अनुसन्धानों के अवसर बने रहते हैं। व्यक्ति की प्रतिभा को परम्परावादी विश्वासों से नहीं दबाना चाहिए।

राजनीति में गाँधी जी का युग जहाँ समाप्त होता है वहीं से राजनीति व समाज में भीमराव अम्बेडकर का पदार्पण होता है। जहाँ गाँधी जी का लक्ष्य देश को स्वतंत्र कराना था, वहीं अम्बेडकर जी का लक्ष्य समाज के निम्न से निम्नतर व्यक्ति तक इस स्वतंत्रता को पहुँचाना था। भारत की स्वतंत्रता से पूर्व ही अम्बेडकर ने दर्शन के सामाजिक पक्ष पर अधिक बल दिया। डॉ अम्बेडकर के चिन्तन का मूल उद्देश्य एक तर्कसंगत एवं न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था की रचना करना था इसलिए सामाजिक–व्यवस्था डॉ अम्बेडकर के चिन्तन की केन्द्रीय विषयवस्तु थी। डॉ अम्बेडकर का सामाजिक चिन्तन व्यावहारिक होने के कारण सटीक, तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक

विश्लेषण पर आधारित था। डॉ अम्बेडकर के अनुसार "रूढ़िवाद व अन्धविश्वास ने भारतीय समाज में विभेद पैदा किया है। उनका दृढ़ विश्वास था कि जिस समाज में सामाजिक चेतना न हो ऐसा समाज प्रगति के पथ पर कभी भी अग्रसर नहीं हो सकता है। बाबा साहेब हिन्दु कोड बिल के अन्तर्गत महिलाओं को विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और दत्तक विधान की स्वतंत्रता देना चाहते थे। इसके अतिरिक्त अंतरजातीय विवाह को भी वे कानूनी संरक्षण देने के पक्ष में थे। उनका मानना था कि अंतरजातीय विवाह ही जाति–व्यवस्था को तोड़ने का एकमात्र उपाय है।"[5]

अम्बेडकर साहब समान नागरिक कानून में विश्वास करते थे। विवाह, तलाक या उत्तराधिकार का कानून बनाते समय धर्म को ही क्यों आधार बनाया जाए? उन्होंने संसद में कहा था "समान नागरिक कानून होना ही चाहिए। हिन्दू मुसलमान और ईसाई धर्म पर आधारित कानूनों में जहां मतभेद के मुद्दे हैं, उन्हें विचारपूर्वक हल करना चाहिए। सभी में कुछ समानता के मुद्दे भी हैं केवल मतभेदों के मुद्दों से बात नहीं बन सकती। समान नागरिक कानून हमारा अन्तिम उद्देश्य है।"[6] उनके अनुसार जाति–व्यवस्था एक प्रकार की सामाजिक दासता है। यह सामाजिक अन्याय एवं शोषण की प्रतीक है। अम्बेडकर के आदर्श समाज का मुख्य केन्द्र–बिन्दु व्यक्ति है न कि परम्परागत समाज व्यवस्था। बाबा साहेब ने अछूतों की समस्याओं को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया क्योंकि वे स्वयं भी अछूत समाज में पैदा हुए थे। दलित वर्ग का पक्ष प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने 'मूकनायक' नामक एक पत्रिका निकाली। दलितों का चित्रण करते हुए उन्होंने 'मूकनायक' के प्रथम अंक में लिखा था "हिन्दु समाज एक बहु मंजिली इमारत है जिसके अन्दर प्रवेश करने के लिए न कोई सीढी है और न कोई द्वार है। समाज जहाँ एक ओर विश्वास करता है कि जड़ पदार्थों में भी भगवान है वहीं दूसरी ओर यह भी कहता है कि कुछ लोग जो उसी के अपने अंग हैं, स्पर्श किए जाने योग्य नहीं हैं।"[7] दलितों के उद्धार के लिए उन्होंने अनेक समाजसुधार आन्दोलन शुरू किये। एक बार उन्होंने अपने भाषण में कहा "दलितों की समाज में कोई इज्ज्जत नहीं है। उनकी अस्मिता खत्म हो चुकी है। किसी के फेंके हुए बासी टुकड़ों पर अब उन्हें जीना छोड़ देना चाहिए ! इसके लिए अब उन्हें मृत जानवरों के मांस को खाने की वृत्ति छोड़ देनी होगी।"[8]

अम्बेडकर साहब का मानना था कि आत्मोद्धार किसी दूसरे की कृपा से नहीं होता बल्कि वह प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रयास से प्राप्त करना पड़ेगा। अम्बेडकर अपने आदर्श समाज में सामाजिक प्रजातन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। सामाजिक प्रजातन्त्र के रूप में अम्बेडकर ऐसा समाज चाहते थे जिसमें व्यक्ति के विचार की अभिव्यक्ति, गमनागमन की शिक्षा व आत्म विकास तथा आजीविका के चुनाव की स्वतन्त्रता हो। डॉ अम्बेडकर ने अपने आदर्श समाज की व्यवस्था को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा–"एक आदर्श समाज वह है जिसमें गतिशीलता हो तथा एक स्थान में हुए परिवर्तन दूसरे स्थान पर सरलता से पहुँचते हों। एक आदर्श समाज में बहुत से सामान्य उद्देश्य होने चाहिए, जिनमें सभी लोग स्वतः भाग ले सकें और अन्य विचारों का आदान–प्रदान हो सके। मिलने–जुलने की सुगम विधियां हों तथा भाई–चारे की भावना का बाहुल्य हो।"[9] समाज ऐसा हो जहां ऊँच–नीच व राग–द्वेष के लिए कोई स्थान न हो। डा. अम्बेडकर द्वारा सामाजिक विषमता के विरूद्ध किया गया संघर्ष बाहरी तौर पर दलितों, श्रमिकों एवं महिलाओं के लिए किया गया प्रतीत होता हैं किन्तु व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने पर

ये उनके द्वारा समाज–व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन लाने की दृष्टि से किए गए संघर्ष का अंग हैं। बाबा साहेब एक बेहतर और समेकित समाज की स्थापना करना चाहते थे। वे केवल एक व्यक्ति नहीं बल्कि सम्पूर्ण संस्था थे। डॉ. अम्बेडकर के मन में कबीर थे, उनकी आस्था में महात्मा बुद्ध। उनके सामाजिक जीवन तथा चेतना पर कबीर का गहरा प्रभाव था।

भारत मे 'जातिप्रथा' लेख में उन्होंने कहा मुझसे योग्य विद्वानों ने जाति के रहस्यों को खोलने का प्रयास किया है किन्तु यह दुख की बात है कि यह अभी तक व्याख्यायित नहीं हुआ है और हम लोगों को इसके बारे में अल्प जानकारी है। मैं जाति जैसी संस्थाओं की जटिलता के प्रति सजग हूं और इतना निराशावादी नही हूं। मेरा विश्वास हैं जाति की समस्या सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप में एक विकराल समस्या है। उनके अनुसार भारतीय समाज रक्त की शुद्धता की बात चाहे जितनी भी क्यों न करे यह शुद्ध रक्त वाला समाज नहीं है। इसमें न जाने कितने रक्तों का सम्मिश्रण है? वे प्रश्न उठाते हैं कि वह कौन सा पहला वर्ण था जो जाति में रूपान्तरित हुआ? अनेक प्रमाण देते हुए वे यह सिद्ध करते हैं कि आरम्भ में ब्राह्मण–वर्ग जाति मे बदल गया। इसी ब्राह्मण समाज ने देश में जाति प्रथा को लादा है। मनु के सैकड़ों वर्शों पूर्व जाति प्रथा अस्तित्व में थी। जाति प्रथा से सम्बनधित नियमों का मनु ने केवल संकलन किया है।

बाबा साहेब ने जो कुछ किया वह हिन्दू समाज की सुदृढता, एकता तथा विकास के लिए था। उन्होंने महसूस किया कि भारतीय समाज सीढ़ी दर सीढ़ी ऐसा सिलसिला है जिससे ऊपर की सीढ़ी का आदमी नीचे की सीढ़ी के आदमी को घृणा की दृष्टि से देखता है और नीचे की सीढ़ी का आदमी ऊपर की सीढ़ी के आदमी को घृणा की दृष्टि से देखता है। ऐसे समाज से समता व बंधुत्व की कतई गुंजाइश नहीं की जा सकती है। डॉ अम्बेडकर यह नहीं समझ पा रहे थे कि जिस समाज का दायित्व पिछड़ों को अपने साथ लेकर चलना चाहिए वह समाज पिछड़ों को और नीचे क्यों धकेल देता है। समाज के एक वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त हैं तो समाज का दूसरा वर्ग वंचित क्यों ? आखिर कौन पाटेगा इस खाई को ? कोई न कोई तो अम्बेडकर जरूर बनता, क्योंकि ताउम्र तो समाज का एक अंग लकवे का शिकार बनकर नहीं रह सकता है ।

गाँधी जी भारतीय वर्ण–व्यवस्था के समर्थक थे परन्तु बाबा साहेब अम्बेडकर इसके प्रबल विरोधी थे। उन्होंने अपने 'जातिप्रथा–उन्मूलन' शीर्षक नामक लेख में लिखा "मेरे लिए यह चातुरवर्ण जिसमें पुराने नाम जारी रखे गए हैं, घिनौनी वस्तु है जिससे मेरा व्यक्तित्व विद्रोह करता है लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि मैं केवल भावनाओं के आधार पर चातुरवर्ण के प्रति आपत्ति करूँ। इसका विरोध करने के लिए मेरे पास अधिक ठोस कारण हैं। जाति का आधारभूत सिद्धांत वर्ण के आधारभूत सिद्धान्त से भिन्न है। न केवल मूल रूप से भिन्न है बल्कि मूल रूप से परस्पर विरोधी है। अम्बेडकर जी निरन्तर वर्ण–व्यवस्था की समस्या पर विचार मंथन करते रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक अछूत हिन्दू समाज में बना रहेगा तब तक उसका जीवन स्तर नहीं सुधरेगा और वह निरन्तर शोषित, अपमानित और अकिंचन बना रहेगा तथा उसका भाग्य कभी भी नहीं बदलेगा।"[10]

निष्कर्ष

डॉ अम्बेडकर हिन्दू समाज में बने रहकर अछूत समाज को सम्मान सहित बराबरी का अधिकार दिलाना चाहते थे। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति बराबरी का अधिकारी है। इतनी छोटी सी बात सवर्ण समाज के दिमाग में क्यों नहीं बैठ रही थी ? वह गुलामी से तो मुक्ति चाहता है परन्तु अपने समाज में फैले कोढ़ से नहीं। संघर्षशील और स्वाधीनता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार बताने वाला समाज अपने ही भाइयों को गुलाम बनाकर रखने के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास करता जा रहा था। अम्बेडकर जी एक ऐसी समाज व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील थे जहाँ मनुष्य, मनुष्य के प्रति आदर की भावना रखता हो। वे मनुष्य को उसका न्यायोचित हक दिलाने के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है– राजनैतिक तथा धार्मिक होने के बजाय मनुष्य अधिकांशतः सामाजिक प्राणी है। वह धर्म में आस्था न रखे, उसकी आवश्यकता अनुभव करे या न करे, वह राजनीति की भी आवश्यकता माने या न माने लेकिन उसे समाज की आवश्यकता तो होगी। समाज के बिना मनुष्य कुछ नहीं कर सकता हैं। अतः उसे उस समाज को जिसमें मनुष्य रहता है, शुभ बनाना उसका प्रथम कर्तव्य है।

❐

सन्दर्भ –

1. *डॉ अंबेडकर, बी. आर., एनिहिलेशन ऑफ कॉस्ट अंबेडकर स्कूल ऑफ थॉट,अमृतसर, 1994, पृ. 21*
2. *फडके भालचन्द्रः डॉ बाबा साहेब अम्बेडकर–श्री विद्या प्रकाशन,पूना, 1985, पृ. 249*
3. *कीर धनंजयः डॉ अम्बेडकरः लाइफ एंड मिशन–पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली, 1962 पृ. 60*
4. *डॉ अंबेडकर बी. आर. स्वराज्य कि दिशा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1993, पृ. 164*
5. *कीर धनंजयः डॉ अम्बेडकरः लाइफ एंड मिशन–पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1962, पृ. 72*
6. *वैद्य प्रभाकर : डॉ अम्बेडकर आणि व्यांचा धम्म–शलाका प्रकाशन, मुंबई 1981, पृ. 12*
7. *पालीवाल कृष्ण दत्तः डॉ अम्बेडकर और समाज व्यवस्था, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली ,1996, पृ. 46*
8. *डॉ. भटनागर राजेंद्र मोहन : डॉ अम्बेडकर चिंतन औंर विचार, जगत राम एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994*
9. *वही, पृ. 48*
10. *कीर धनंजयः डॉ अम्बेडकरः लाइफ एंड मिशन–पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1962, पृ. 54*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 7–12

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

गांधी दर्शन में महिला उत्थान

डॉ. विकास भड़िया

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला महाविद्यालय, झुंझुनूं (राज.)–333001
E-mail: bhariavikash@gmail.com Mob. 9829777782

सारांश

गांधी जी का मानना था कि देश के सम्पूर्ण विकास में अगर नारी को शामिल नहीं गया तो देश के विकास की परिकल्पना साकार नहीं हो सकती, उनका मानना था कि महिलाओं और पुरूषों के लिए समान अधिकार आवश्यक हैं, वे लैंगिक भेदभाव के पूर्णतया खिलाफ थे। राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी गांधीजी के प्रभाव से हुई। गांधी जी ने साबरमती आश्रम हो या सेवाग्राम चाहे, वर्धा आश्रम हो वहां पर 'बा–कूटी' अलग से बनाया गया जहां उनकी पत्नी ढेरों स्त्रियों से स्वतंत्र रूप से मिलकर उनको राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान करती थी। गांधी जी के अनुसार नारी को अबला कहना उसकी मानहानि करना है, स्त्री–पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं। आपसी सहयोग के बिना दोनों का अस्तित्व असंभव है, स्त्री–पुरूष की सहचरी है, उसकी मानसिक शक्तियां पुरूष से जरा भी कम नहीं हैं।

मुख्य शब्द– अधिकार, समानता, स्वतंत्रता, रामराज्य, दयनीय, न्यायसंगत, अबला, असहाय, सती प्रथा, बालविवाह, सविनय अवज्ञा, अस्पृश्यता, प्रथा।

भारत में वैदिक काल में नारी का बड़ा सम्मान था।[1] मैत्रेयी, गार्गी, लोपमुद्रा तथा इन्द्राणी और घोषा वैदिक युग की अत्यन्त विदुषी नारियाँ हैं। साधारण नारी भी उस युग में आवश्यकता पड़ने पर कताई–बुनाई आदि धंधे करके आजीविका कमा लेती थी। क्षत्रिय परिवारों में कन्याएं सैनिक–शिक्षा प्राप्त करती थी।[2] शिक्षा के पश्चात् प्रत्येक लड़की को अपने पति के चुनाव का पूर्ण अधिकार था।[3] स्वयंवर प्रथा का प्रचलन था। कुछ नारियाँ आध्यात्मिक उद्देश्य के लिये आजन्म अविवाहित रह जाती थी, कुछ काल तक यह परम्परा जैन एवं बुद्ध धर्मावलम्बियों में भी विद्यमान रही। विवाह में दहेज प्रथा प्रचलित नहीं थी, पर्दा प्रथा की कुरीतियों से उस समय मुक्ति थी[4] प्राचीन काल में '**अन्तर्जातीय**' तथा '**अनुलोम**' विवाह भी होते थे। स्त्रियाँ आवश्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह, विधवा–विवाह तथा नियोग का आश्रय ले लेती थी,[5] क्योंकि

ऋग्वेद की ऋचाओं से विधवा विवाह तथा अथर्ववेद में पुनर्विवाह की स्वीकृति का उल्लेख मिलता है।[6] प्राचीन भारतीय साहित्य में स्त्री को शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त रही है और उस रूप की सर्वत्र पूजा भी हुई है।[7] *'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृति क्षमा।'– (श्रीमद् भगवाद्गीता)।* इसी क्रम में यह भी कहा गया है– *'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः*

इन ऋचाओं से यह पूजा भाव स्वतः मुखरित होता है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवताओं का निवास होता है। यद्यपि स्त्री को शक्ति के रूप में वैदिक साहित्य में स्थान दिया गया है किंतु काल–चक्र ने धीरे–धीरे स्त्रियों की स्थिति को बदल दिया। कन्या का जन्म अभिशाप माना जाने लगा और कुछ वर्गों में तो उसका जन्म होते ही गला घोट दिया जाता था, सभ्य और सुसंस्कृत परिवारों की स्त्रियों के लिए घर से बाहर निकलना दुसाध्य हो गया। परिणामतः स्त्री जाति शिक्षा से वंचित और पर्दे की घुटन को स्वीकार करने के लिए विवश हुई। विवाह में स्वेच्छा का स्थान विवशता ने ले लिया। अच्छे वर की आकांक्षा ने दहेज प्रथा को जन्म दिया, पुरूषों द्वारा उनको शारीरिक दण्ड दिया जाने लगा। वह सहचरी न रहकर दासी बनकर चली गई। यज्ञ से बहिष्कृत किया गया। शिक्षा के अधिकार से वंचित किया गया उनका उपनयन संस्कार बंद कर दिया गया। यद्यपि राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द आदि समाज सुधारकों ने अपने स्तर पर महिलाओं की स्थिति को सुधारने के प्रयास किये लेकिन गांधीजी के समक्ष स्त्रियों की दीन–हीन दशा का उपर्युक्त परिदृश्य था। वे भारतीय नारियों के लिए नवजागरण का संदेश लेकर आए। गांधी जी नारी स्वातंत्र्य के प्रबल समर्थक थे। गांधी जी स्त्री–पुरूष दोनों के सामाजिक–आर्थिक अधिकारों को एक समान मानते थे। उन्होंने समाज में स्त्रियों और पुरूषों की समानता पर बल दिया। वे एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें स्त्रियाँ बिना किसी प्रतिबंध के सक्रिय भागीदारी निभाएं और उन्हें भी पुरूषों के समान अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति के अवसर प्राप्त हों। उन्होंने कहा,– "मेरे सपनों का स्वराज्य तब तक असंभव है जब तक कि भारतीय स्त्रियाँ, पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर अपनी पूर्ण भूमिका नहीं निभाती। मैंने स्वराज्य को रामराज्य के रूप में परिभाषित किया है और रामराज्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक समाज में हजारों सीताएं नहीं हो।"[8]

गांधी जी स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे उन्होंने कहा था कि एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है, लेकिन स्त्री को शिक्षित करने पर सम्पूर्ण परिवार, समाज शिक्षित होता है। शिक्षित महिला ज्ञान के नवीन क्षितिज खोल सकती है। बाल–विवाह, पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा, विधवाओं की दयनीय स्थिति, तलाक आदि सामाजिक बुराईयों का मुख्य कारण स्त्रियों की अशिक्षा को मानते थे। गांधी जी ने इस बात पर बल दिया कि स्त्री–पुरूष को शिक्षा प्रदान करने में कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

महिलाओं को कमजोर, अबला और असहाय कहना गांधी जी की दृष्टि में न्यायसंगत नहीं है। नारी को अबला कहना उसकी निंदा करना है। यह पुरूष का नारी के प्रति अन्याय है। गांधी जी के अनुसार "यदि अहिंसा मानव जाति का नियम है तो भविष्य नारी जाति के हाथ में है। ममता, प्यार, अपनत्व की भावनाओं से हृदय को आकर्षित करने के गुण स्त्री से ज्यादा और किसमें हो सकते है।"[9]

गांधी जी स्त्री जाति को पुरुष से किसी भी अर्थों में हेय नहीं मानते थे। वे स्त्री और पुरुष में कोई भेदभाव नहीं करते थे। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान स्वयं को स्वाधीन अनुभव करना चाहिए। वीरता केवल पुरुषों की बपौती नहीं।[10] उन्होंने स्त्रियों को सलाह दी कि वे सभी अवांछनीय बंदिशों के खिलाफ सविनय विद्रोह करें। गांधी जी ने स्त्रियों की दशा सुधारने एवं उत्थान हेतु जो प्रयास किए वे इस प्रकार है–

- समाज में स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान करने की मांग– गांधी जी स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये जाने के पक्षधर थे। गांधी जी ने स्त्रियों को अपने विषय में स्वयं निर्णय लेने के अधिकार पर विशेषतः बल दिया वे इस मत से सहमत नहीं थे कि स्त्री–पुरुष पर निर्भर है या वह पुरुष के अधीनस्थ या उससे हीन है। उनका मानना था कि स्त्री समाज में पुरूष की समकक्ष सहकर्मिणी है। उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि "हिन्दू संस्कृति पुरूष और स्त्री को पृथक–पृथक मानने की अपेक्षा, एक–दूसरे का हिस्सा मानती है तथा यह स्वीकार करती है कि दोनों एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं।"[11] गांधी जी का मत था कि स्त्रियों को पुरूषों के समान ही समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। उनका कहना था कि "कोई स्त्री अपने लिये किसी व्यवसाय का चयन करे तो यह निर्णय पुरूषों द्वारा नहीं, अपितु स्वयं महिलाओं द्वारा लिया जाना चाहिए। उन्होंने अनेक ऐसे व्यवसायों और वृत्तियों का उल्लेख किया जिनमें स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता और दक्षता का प्रदर्शन कर सकती हैं।"[12]

- परिवार में महिलाओं का स्थान– गांधी जी ने यह स्वीकार किया कि समाज और परिवार में स्त्रियों की हीन स्थिति के लिए पुरुष ही नहीं अपितु स्वयं स्त्रियां भी उत्तरदायी हैं। उन्होंने भारतीय महिलाओं की निर्णय लेने के विषय में अपने अभिभावकों या पति पर निर्भर करने की प्रवृत्ति की आलोचना की। पारिवारिक जीवन में स्त्रियों को समानता का प्रतिपादन करते हुए गांधी जी ने महिलाओं के अधिकार के सम्बन्ध में कुछ सूत्र प्रस्तुत किये।"[13]

- पत्नी पति की नौकर नहीं है, अपितु वह परिवार धर्म के पालन में एक समान अधिकार रखने वाली सहयोगिनी है। परिवार में पुत्रों और पुत्रियों के मध्य भेद नहीं किया जाना चाहिए। पति और पत्नी जो भी अर्जित करें, उस पर दोनों का समान अधिकार होना चाहिए।

- सती प्रथा का विरोध– गांधी जी ने सती प्रथा का घोर विरोध किया और उन्होंने इसे क्रूर, अमानवीय व अधार्मिक माना। उन्होंने कहा, "किसी स्त्री को उसके पति के साथ चिता में जल जाने की शिक्षा देना, मानवीय गरिमा के महत्व को भुला देना है। एक निष्ठावान पत्नी का वास्तविक कर्त्तव्य तो यह है कि अपने पति के जीवन के कार्यों और लक्ष्यों को अपने व्यक्तित्व में आत्मसात कर ले। इस प्रकार वह जीवित रहते हुए ही, उस पति के प्रति निष्ठा और मानवीय गरिमा दोनों का निर्वाह करेगी और पति के प्रति उसका प्रेम व्यापक होकर ईश्वर के प्रति प्रेम में विलीन हो जाएगा।"[14]

- बाल विवाह व पर्दा प्रथा का विरोध– गांधी जी ने बाल विवाह को भी भारतीय समाज में व्याप्त एक गंभीर चुनौति की संज्ञा दी और इसके उन्मूलन पर बल दिया। उन्होंने कहा, "यदि मेरे पास सत्ता होती अथवा मेरी कलम में पर्याप्त शक्ति है तो मैं उसका उपयोग प्रत्येक बाल

विवाह को रोकने के लिए करता। अल्प आयु में अपने बच्चों का विवाह करने वाले माता–पिता वास्तव में उनके शत्रु हैं और वे उन्हें कमजोर और निर्भर बना देने के लिए उत्तरदायी हैं।[15]

गांधी जी केवल सती प्रथा अथवा बाल विवाह के ही विरोधी नहीं थे, वे उन समस्त कुरीतियों और रूढ़ियों के विरूद्ध थे, जो स्त्रियों के नैतिक और आध्यात्मिक विकास के मार्ग में बाधक हों। इसी कारण उन्होंने पर्दा प्रथा का भी घोर विरोध किया। उनका मानना था कि पर्दा प्रथा अनुचित व गरिमाहीन तो है ही वह वस्तुतः पुरुष की संकीर्ण वृत्ति और महिलाओं के प्रति उसकी दमनकारी प्रवृत्ति का प्रतीक है।

- नारी भोग्या नहीं, अधिष्ठात्री है– महात्मा गांधी ने नारी को पुरुष की भोग्या नहीं अपितु घर–परिवार की अधिष्ठात्री माना है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि स्त्री को चाहिए कि वह स्वयं पुरुष के भोग की वस्तु मानना बंद कर दे। इसका समाधान पुरुष की अपेक्षा स्वयं स्त्री के हाथों में ज्यादा है।

- सार्वजनिक जीवन में भाग लेने हेतु प्रेरणा– गांधी जी की कत्तई यह मंशा नहीं रही कि स्त्रियां केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित रह जाएं। उन्होंने महिलाओं के सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन में सक्रियता की आवश्यकता को गहराई से अनुभव किया। उन्होंने देश के वर्तमान तथा भविष्य को सुरक्षित बनाने के लिए हर क्षेत्र में स्त्रियों के योगदान को आवश्यक माना। इसलिए वे स्त्री जाति को सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के लिए न केवल प्रोत्साहित करते रहे, अपितु उसे सार्वजनिक कार्यों का सम्बल भी मानते रहे। हिन्दुस्तान का भविष्य तुम्हारी गोद में है, क्योंकि तुम ही तो अगली पीढ़ी को पालोगी। तुम भारत के बच्चों को शुरू से ही ऐसी शिक्षा दे सकती हो कि वे बड़े होकर ईश्वर से डरने वाले बहादुर स्त्री–पुरुष बनें।[16]

- राजनैतिक चेतना एवं भागीदारी– सार्वजनिक कार्यों में महिलाओं की उपयोगिता स्वीकार करने के साथ–साथ गांधीजी स्त्रियों को राजनीति में भी पुरुष के समान क्रियाशील देखना और बनाना चाहते हैं। गांधी जी का मानना था कि वर्तमान राजनीति में आई गिरावट को यदि समाप्त करना है तो स्त्रियों के राजनीति में प्रवेश करने की स्थिति को स्वीकार करना आवश्यक है। इस प्रकार गांधी जी स्त्रियों को राजनीति का अनिवार्य अंग मानते हैं। महिलाएं अपनी मृदुलता से कलुषित राजनीति को शुद्ध बना सकती हैं। महिलाओं के संदर्भ में गांधी जी द्वारा किए गए सभी प्रयासों में महत्त्वपूर्ण था उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रूप से सहभागी बनाना। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान उन्होंने महिलाओं से दो मुद्दों पर सहायता की अपेक्षा की मद्य निषेध तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के संदर्भ में। गांधी जी का मानना था कि "सविनय अवज्ञा आंदोलन, असहयोग आंदोलन में नशाबंदी और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार कार्यक्रमों का नेतृत्व महिलाएं ही करें। इन कार्यक्रमों के जरिए महिलाओं में नया आत्मविश्वास पैदा होगा और नई चेतना जागेगी।"[17] सविनय अवज्ञा आंदोलन में जितनी बड़ी संख्या में समाज के विविध वर्गों की स्त्रियों ने भाग लिया उससे ही इसका अनुमान लगाया जा सकता है। गांधी जी के आंदोलन में विशेषतः सविनय अवज्ञा आंदोलन में स्त्रियों का सक्रिय भाग लेना एक क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है।

- अस्पृश्यता निवारण में महिलाओं की भूमिका– अस्पृश्यता को गांधी जी हिन्दू समाज पर लगा एक कलंक मानते थे उन्होंने स्त्री समाज को इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

अगर स्त्रियां अब भी अछूतों को अपनाने में आनाकानी करेंगी तो हमको इनसे भी ज्यादा मुसीबतें उठानी पड़ेगी। गांधी जी ने अछूतोद्धार के लिए एक हरिजन कोष की स्थापना की। भारतीय महिलाओं ने इसके लिए आभूषण दिये और गांधी जी के बताए हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा ली।

- विवाह संस्था में व्याप्त बुराइयों हेतु प्रयास– गांधी जी ने कई अवसरों पर विवाह संस्कार से सम्बद्ध बुराइयों पर तथा विवाह के आदर्श पर अपने विचार व्यक्ति किये। वे विवाह के समय होने वाले अनुष्ठानों के सरलीकरण के पक्ष में थे और उनका कहना था कि पूरे विवाह संस्कार पर न्यूनतम खर्च होना चाहिए। गांधी जी के अनुसार "पत्नी पति की दासी नहीं है अपितु उसकी सहचरी और सहायिका है तथा उसकी खुशियों और गमों में बराबर की हिस्सेदार है। वह अपना रास्ता चुनने के लिए उतनी ही स्वतंत्र है जितना कि पति।" ।[18] गांधी जी ने जबरन विवाह को सर्वथा अनुचित बताया है। माता–पिता द्वारा अपनी बेटियों का जबरन विवाह करना अनुचित है। गांधी जी ने विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध माना।

- महिलाएं अंहिसा की उपयुक्त प्रतिनिधि– गांधी जी महिलाओं को अहिंसा की प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करते थे। अहिंसा में त्यागवृत्ति है, सहन शक्ति है, उदार मनोभावनाएं है और असीम धैर्य है ये समस्त गुण महिलाओं में ही उपलब्ध हैं। स्त्री अहिंसा की साक्षात् मूर्ति है। गांधी जी के अनुसार "प्रसव पीड़ा से बढ़कर कोई पीड़ा नहीं है, किंतु सृजन एवं भावी सन्तति के सुख में वह घोर पीड़ा को भी भुला देती है।"[19] स्वयं पीड़ा भोगना और दूसरों को कम से कम कष्ट पहुँचाना उसके स्वभाव में है। इसलिये अहिंसा उसके लिए अधिक सहज है।[20] मदर टेरेसा, कस्तूरबा गांधी, रानी अहिल्या बाई होल्कर, दुर्गा बाई देशमुख, सुचिता कृपलानी, अरूणा आसफ अली, कमला नेहरू, विजय लक्ष्मी पण्डित, एनीबेसेण्ट, सरोजनी नायडू, इंदिरा गांधी, कल्पना चावला, पी.वी.सिन्धु, गीता फौगाट, मल्लेश्वरी, निर्मला चानू व मलाला, लता मंगेशकर, पी.टी.ऊषा आदि ने अपनी प्रतिभा के दम पर विश्व को यकीन दिलाया कि महिलाएं अहिंसा की मूर्ति हैं और विश्व को शांति का संदेश अच्छी तरह से दे सकती है।

गांधी जी की स्पष्ट मान्यता थी कि स्त्रियों की स्वतंत्रता का नारा लगाने मात्र से स्त्रियों की दशा में कोई सुधार नहीं होगा वास्तव में इसके लिए उन्हें स्वयं अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति जागरूक होना होगा। अपने दायित्वों के पालन द्वारा, वे समाज में पुरूषों के समान अधिकार और स्वतंत्रताओं की मांग करने का नैतिक अधिकार स्वयं अर्जित कर लेगी। उन्होंने स्पष्ट किया कि, "कुरीतियों, अंधविश्वासों और संकीर्णताओं के बंधनों को तोड़कर यदि स्त्रियां स्वयं अपनी स्वतंत्रता के लिए कटिबद्ध हो जायें तो उन्हें परतंत्र रखना संभव ही नहीं रहेगा।" उन्होंने कहा, "शिक्षा बलिदान की भावना और स्वयं अपनी गरिमा में आस्था स्त्रियों की स्वतंत्रता के सुनिश्चित सूत्र है।"[21] उन्होंने स्त्रियों को परामर्श दिया कि वे अनुचित और गरिमाहीन प्रतिबंधों के विरूद्ध सविनय विरोध करें। गांधी जी ने स्पष्ट किया कि वे महिलाओं की स्वतंत्रता के नाम पर उनकी स्वच्छन्दता के समर्थक नहीं थे और यह आवश्यक मानते थे कि महिलाओं का आचरण मर्यादित और संयमित हो। उनका मत था कि स्त्रियों के आचरण की मर्यादायें पुरूषों द्वारा निर्धारित नहीं की जाए, अपितु उनकी स्वयं की अन्तः प्रेरणा और स्वैच्छिक संयम का परिणाम हो।[22] इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्रियों की उन्नति के लिए गांधी जी ने सराहनीय प्रयास किये, शिक्षा से वंचित रखी गई स्त्री को शिक्षा के प्रति न केवल अनुरक्त किया, अपितु उसे शिक्षित

कराने की व्यवस्थाओं को जुटाया। गांधी जी के प्रयासों की सफलता का अनुमान वर्तमान भारत को देखकर सहज ही लगाया जा सकता है। सार्वजनिक जीवन में अत्यधिक क्रियाशील स्त्री–समाज आज अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी वे अग्रणी सहयोग दे रही हैं। स्त्री समानता के आदर्श को व्यवहार में पाकर भारतीय समाज गांधी जी के प्रति ऋणी अनुभव करता है। गांधी जी द्वारा प्रदान की गयी यह नारी जागृति रूपी दुर्लभ देन हिन्दुस्तान के लिए आशीर्वाद है। भारतीय महिलाओं की इस राष्ट्रीय चेतना ने इस देश का मस्तक ऊँचा उठा दिया। स्त्रियों की दशा में परिवर्तन लाने का मार्ग प्रशस्त करने में गांधी जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

❐

सन्दर्भ –

1. *भंवरलाल शर्मा एवं डॉ. प्रेम भटनागर, गांधी और हम, अर्चना प्रकाशन जयपुर 1970 पृ. 105*
2. *वही पृ. 105*
3. *डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, भारत के पुनर्निर्माण में गांधी जी का योगदान, श्री पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली पृ. 210*
4. *वही पृं. 211*
5. *भंवरलाल शर्मा एवं डॉ. प्रेम भटनागर, गांधी और हम, अर्चना प्रकाशन जयपुर पृ. 105*
6. *डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, भारत के पुनर्निर्माण में गांधी जी का योगदान, श्री पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली पृ.सं. 211*
7. *वही पृ. 210*
8. *हिन्दू 23 मार्च, 1925*
9. *यंग इण्डिया, 1930 पृ. 121*
10. *हरिजन, 1947 पृ. 478*
11. *प्रार्थना सभा में भाषण, 5 मार्च 1947*
12. *अमृत बाजार पत्रिका, 2 जनवरी 1918*
13. *प्रेमा बेन कण्टक को लिखा पत्र, 23 जून 1932*
14. *प्रेमा बेन कण्टक को लिख पत्र, 12 अगस्त 1932*
15. *नवजीवन, 25 मार्च 1928*
16. *यंग इण्डिया, 1921*
17. *पं. रामदयाल तिवारी, गांधी मीमांसा, इण्डियन प्रेस, इलाहबाद, 1941 पृ. 189*
18. *महात्मा गांधी, महादेव देसाई द्वारा अनुदित, द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेंटस विद ट्रूथ, नवजीवन, प्रेस, अहमदाबाद, 1959 पृ. 18*
19. *हरिजन, 1938 पृ. 112*
20. *वही पृ. 118*
21. *नवजीवन, 21 अप्रेल 1921*
22. *प्रार्थना सभा में भाषण 1 मार्च 1947*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 13–24

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली : महात्मा जयोतिबा फुले और महात्मा गांधी के चिंतन की समीक्षा

सुरेश कुमार मिठारवाल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान,राजकीय कन्या महाविद्यालय, होद, सीकर
E-mail: <smitharwal443@gmail.com>
डॉ. कैलाश चन्द सामोता,
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

सर्वज्ञात है कि सिंधु घाटी सभ्यता एक विकसित और साक्षर सभ्यता रही है, जिसका भारत के गौरवशाली अतीत में अविस्मरणीय योगदान है। शिक्षा किसी भी समाज में मानव के सर्वागींण विकास का निर्णायक घटक होती है। एक शोषणविहीन, न्याययुक्त समाज के लिए शिक्षा की क्रांति अपरिहार्य है और भारत में इस क्रांति की ज्योत को खोजना, इस आलेख का मुख्य ध्येय है। किसी देश के नागरिकों के लिए शिक्षा प्रणाली कैसी हो? यह एक विचारणीय सवाल है। आज जब दूनिया की भौगोलिक दूरियों को तकनीकी विकास ने बेमानी कर दिया है, तो ऐसी स्थिति में सवाल उदित होता है कि क्या दूनियाभर में एक तरह की शिक्षा प्रणाली हो सकती है? अथवा देश में विद्यमान दशाओं के अनुरूप शिक्षा प्रणाली को अपनाया जाए? यदि भारत की शिक्षा प्रणाली के बारे में हम विचार करें तो, इस सन्दर्भ में हमारे सामने दो तरह के शैक्षणिक चिंतन उभर कर सामने आते है–फुले और गांधी का शिक्षा दर्शन। दोनों ही नायकों का शैक्षणिक चिंतन भारत की दो भिन्न–भिन्न चिंतन परम्पराओं का, सभ्यताओं का, संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते है। इस अनुसंधान आलेख में आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में इन दोनों के शैक्षणिक चिंतन की समीक्षा की गई है।

मुख्य शब्द : शिक्षा, वर्ण, फुले, गांधी, अंग्रेजी, तालीम, शूद्र, अतिशूद्र, द्विज

सामान्य परिचय

भारत में शिक्षा का इतिहास बहुत प्राचीन रहा है। विश्वविख्यात इतिहासकार स्वपन कुमार बिश्वास ने अपनी पुस्तक 'बौद्ध धर्मः मोहन जोदड़ों नगरों का धर्म' के अंतर्गत अनेकानेक वैज्ञानिक व प्रामाणिक पुरातात्विक स्त्रोंतों के आधार पर प्रमाणित किया है कि सिंधु घाटी सभ्यता भौतिक रूप से विकसित, साक्षर और धार्मिक रूप से समृद्ध बौद्ध सभ्यता थी।[1]

सामान्यतया हम यह कह सकते है कि शिक्षा एक कौशल या दक्षता है जो कि किसी सामान्य मानव को एक दक्ष संसाधन के रूप में परिवर्तित करती है। शिक्षा यह शब्द शिक्ष धातु से निर्मित है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है–अधिगम करना या सीखना। अतः शिक्षा मानव को अधिगम कराने वाला एक साधन है, यह एक प्रशिक्षण या कौशल है। हम केवल अक्षर ज्ञान को शिक्षा नहीं कह सकते है, क्योंकि साक्षरता और शिक्षा दोनों अलग है। शिक्षा मानव को एक सामान्य प्राणी से विकवेशील प्राणी बनने में सहायता करती है। शिक्षा एक अधिगम प्रक्रिया है, जो कि मानव को मानव होने का बोध कराती है। शिक्षा रूपी कौशल से ही सबके कल्याण के ध्येय को अर्जित किया जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति की समझ विकसित करती है, दूनिया के बारे में ज्ञान कराती है, उसे तार्किक बनाती है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करती है और उसे सच व मिथ का ज्ञान कराती है। अंततः उसे मानवता का पाठ पढ़ाती है। वह मानव को समता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व, प्रेम, अहिंसा, मित्रता, त्याग, सत्य इत्यादि का बोध कराती है। यदि किसी प्रकार की शिक्षा ऐसे मानवीय मूल्यों को दरकिनार करती है, तो वह शिक्षा नहीं अपितु कुशिक्षा है। सच में यदि कोई शिक्षा सही अर्थ में प्राप्त करता है, तो वह उसे सही मायने में जीवन जीना सीखाती है। सामाजिक न्याय के पैरोकार बाबा साहेब अम्बेडकर ने नवंबर, 1956 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में छात्रों को शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा कि ''शिक्षा शेरनी का दूध है, जो पियेगा, वह दहाड़ेगा''[2]। इसीलिए बाबा साहब नें यह नारा दिया कि 'शिक्षित बनों, संगठित रहो और संघर्ष करों''[3]। इसके साथ ही यदि हम शिक्षित बन जाए तो अन्य लोगों को भी शिक्षित करें, संगठित करें और संघर्ष करना सिखाएं। शिक्षा व्यक्ति के जीवन में होने वाला सकारात्मक बदलाव है। शिक्षा ने अम्बेडकर के जीवन को कैसे बदल दिया? इससे बेहतर शिक्षा के महत्व हम कैसे समझ सकते है, कि किस तरह से ब्राह्मण या वर्णधर्म की अन्याय व असमानता के अमानवीय सामाजिक नियमों पर सर्जित की गई, हिंदू सामाजिक व्यवस्था[4] में एक वर्णबाह्य अछूत बालक भारतीय संविधान का शिल्पकार, आधुनिक भारत का निर्माता, सामाजिक न्याय का संस्थापक, सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र का रचनाकार, बुद्धिवादी, अनुभववादी, नारीवादी, श्रमिकवादी, समतावादी और अंततः मानवतावादी बना। इसके साथ ही शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए ही संयुक्त राष्ट्र महासंघ ने अपने सहस्त्राब्दी विकास के आठ लक्ष्यों में 'प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण'[5] को सम्मिलित किया है अर्थात् पूरी दूनिया में कम से कम प्राथमिक शिक्षा की सर्वव्यापकता तो होनी ही चाहिए।

भारत में भी शिक्षा की उपादेयता को ध्यान में रखते हुए ज्योतिबा फुले के 19वीं सदी के निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के चिंतन और गांधीयन चिंतन से प्रभावित होकर भारत सरकार ने शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में अपनाया है। 86वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 के अंतर्गत शिक्षा को 11वें मौलिक कर्तव्य के रूप में शामिल किया गया था, जिसे निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम या आरटीई 2009, भाग–3, अनुच्छेद 21(क) के तहत मौलिक अधिकार के रूप में भारतीय संविधान में अंतःस्थापित कर दिया गया है। यह अधिनियम 01 अप्रैल, 2010 से लागू है। इसके तहत राज्य कानून बनाकर ऐसी व्यवस्था करेगा, कि 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था का प्रबन्ध हो अर्थात् औपचारिक स्कूल, जो कतिपय अनिवार्य मानदण्डों और मानकों को पूरा करता है, में संतोषजनक और

एकसमान गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रांरभिक शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बच्चे का अधिकार हो। आरटीई अधिनियम के शीर्षक में 'निःशुल्क और अनिवार्य' शब्द सम्मिलित हैं। आरटीई अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार संविधान का अनुच्छेद–21,क यथा प्रतिष्ठापित, बच्चे के इस मौलिक अधिकार को क्रियान्वित करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों पर कानूनी बाध्यता रखता है।[6] शिक्षा के महत्व का आभास, हमें भारत में सामाजिक व शैक्षणिक क्रांति के महानायक ज्योतिबा फुले के द्वारा अपने ग्रंथ 'शेतर्क यांचा आसूड[7]' ग्रंथ के उपोद्घाट में लिखित चिंतन की निम्न पंक्तियों से होता है–

''विद्या बिना मति गई। मति बिना नीति गई।।
नीति बिना गति गई। गति बिना वित गया।।
वित बिना शूद्र गए। इतने अनर्थ एक अविद्या ने किये।।[8]

अध्ययन की अनुसंधान प्रविधि

इस अनुसंधान आलेख में गांधी व फुले के शैक्षणिक दर्शन से संबंधित प्राथमिक व द्वितीय श्रेणी के आंकड़ों का अध्ययन, अनुप्रयोग व अन्वेषण किया गया है। अनुसंधान प्रविधि के रूप में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक, तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक और अनुभवमूलक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से दोनों महानायकों की शिक्षा प्रणाली का विश्लेषण कर, भारत के लिए कौनसी शिक्षा प्रणाली बेहतर है और क्यों व कैसे है? इसका भी अनुसंधान पद्धतियों के माध्यम से विवेचन किया गया है।

गांधी का शैक्षणिक चिंतन या शिक्षा दर्शन

महात्मा गांधी के चिंतन में शिक्षा को लेकर क्या विचार रहे है? वे कैसी शिक्षा की बात करते है? और उन्होंनें स्वयं ने कौनसी शिक्षा प्राप्त की और शिक्षा के माध्यम से उन्होंनें स्वयं को कैसे आगे बढ़ाया और अन्य लोगों के लिए, वे कैसी शिक्षा प्रणाली व पद्धति चाहते है? इन्हीं सवालों को केन्द्र में रखते हुए गांधी के शैक्षणिक चिंतन पर विचार किया गया है।

शिक्षा क्या है और क्यों आवश्यक है

गांधी के शिक्षा दर्शन में शिक्षा मानव के विकास का केन्द्र होती है। एक सभ्य समाज के लिए शिक्षा आवश्यक है। गांधी के शब्दों में ''शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान नहीं है, यदि वह ऐसा है तो फिर केवल एक औजार है, जिसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरूपयोग भी हो सकता है।''[9] गांधी कहते है कि एक किसान अच्छी तरह से अपनी रोजी–रोटी कमाता है, उसे शिक्षा देने से क्या फायदा है? गांधी के अनुसार ''शिक्षा से मेरा मतलब है कि बालक के शरीर मन व आत्मा की श्रेष्ठ क्षमताओं को विकसित किया जाए और उन्हें बाहर लाया जाए।''[10] शिक्षा एक कौशल है जो व्यक्ति को दक्ष बनाता है। गांधी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति के समग्र विकास के लिए आवश्यक है। गांधी ने अपने शिक्षारूपी दर्शन को अंतिम रूप से द्विज वर्ण दर्शन या वर्णधर्म से जोड़कर प्रस्तुत किया है। लेकिन इसे, इस तरह से प्रस्तुत किया गया है कि उसमें सम्मिलित होने वालों को, यह कभी एहसास ही नहीं होता कि उनकी शिक्षा प्रणाली उच्च वर्णों को निम्न वर्णों पर शासन करना सीखा रही है। गांधी के अनुसार शिक्षा के दो ध्येय है अर्थात् एक तात्कालिक और दूसरा दीर्घकालिक। तात्कालिक ध्येय में शिक्षा व्यक्ति को आजीविका के

लायक बनाती है, उसका चारित्रिक विकास करती है, उसके शरीर, मन व आत्मा का विकास करती है और सांस्कृतिक लक्ष्यों को पूर्ण करती है, जबकि दूरगामी लक्ष्य के रूप में शिक्षा व्यक्ति को आत्मबोध कराती है, ईश्वर से मिलाती है, सत्य के पास ले जाती है। गांधी के चिंतन में आत्मिक शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण है, जो धर्मग्रंथों के ज्ञान से मिलती है, ''आत्मा के विकास का अर्थ है, चरित्र का निर्माण करना, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना।''[11] गांधी के अनुसार विद्या वह है, जो व्यक्ति को मुक्त करती है अर्थात् सा विद्या या विमुक्तये। गांधी कहते है कि सच्ची शिक्षा वह है जो व्यक्ति में आध्यात्मिक, बौद्धिक व भौतिक गुणों को विकसित करती है।[12] गांधी शिक्षा के माध्यम से सबसे पहले धार्मिक गुलाम बनाना चाहते है, ताकि वह कितने ही उच्च पद को प्राप्त कर ले, तो भी रहेगा तो धर्मदास ही। इसका प्रभाव आज भी, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान–इसरों के वैज्ञानिकों में भी दिखायी देता है।

शिक्षा कैसी हो व किस भाषा में व किसके लिए हो

गांधी की मान्यता थी कि शिक्षा गतिविधि केन्द्रित हो, जो शिक्षार्थियों को कौशल सीखाती हो और जिससे बच्चे कुशल स्वतंत्र और स्थानीय शिल्पकार के रूप में तैयार हो सकें। शिक्षा केवल मातृभाषा में ही होनी चाहिए। शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए, कि बच्चे अपने मन, शरीर और आत्मा के बीच सामंजस्य स्थापित कर सकें अर्थात् शिक्षा लोगों को केवल रोजगार ही उपलब्ध कराने वाली न हो अपितु उनके चरित्र का सर्जन करने वाली भी होनी चाहिए। टॉलस्टॉय आश्रम में मि. केलनबैक से बच्चे ऐसी ही दक्षता सीख रहे थे। मैंनें स्वयं चप्पल बनना सीखा और अन्य बालकों को भी सीखाया।[13] वे कौशल के माध्यम से और गतिविधि केन्द्रित शिक्षा के माध्यम से चाहते थे, कि नाई का बेटा बाल काटने में दक्ष बने, किसान का बेटा खेती–किसानी करने में दक्ष हो, चमार का बेटा चमड़े का काम करने में कुशल हो, मोची का बेटा पादुकाओं की मरम्मत में दक्ष हो, धोबी का बेटा कपड़े धोने में कुशल हो, कुम्हार का बेटा मिट्टी के बर्तन बनाने में प्रशिक्षित हो, बढ़ई को बेटा लकड़ी का काम करने में पारंगत हो, लौहार का बेटा लौहे का काम करने में दक्ष हो, सुनार का बेटा स्वर्ण के काम में दक्ष हो, पण्डित का बेटा शिक्षा में दक्ष हो, व्यापारी का बेटा व्यापार करने में दक्ष हो, क्षत्रिय का बेटा युद्ध कौशल में दक्ष हो अर्थात् गांधी जन्म आधारित व्यावसायिक शिक्षा या रोजगारपरक शिक्षा दर्शन के पैरोकार है। गांधी ने कहा कि शिक्षा को कोरा साहित्यिक पुट देना और शिक्षार्थियों को बाद में काम के अयोग्य बना देना गुनाह है।[14] ऐसी ही जन्मजात व्यवसाय आधारित प्राथमिक शिक्षा योजना को मुख्यमंत्री सी राजगोपालाचारी ने 1952 ई. में मद्रास में लागू करने का आदेश दिया परंतु पेरियार के विद्रोह के कारण उनकी गांधीवादी शिक्षा की प्रत्यक्ष योजना पूर्णतया असफल हो गई।

अंग्रेजी भाषा की पश्चिमी शिक्षा का विरोध

गांधी ने शिक्षा में भी दोहरे चरित्र का प्रतिनिधित्व किया है। एक तरफ गांधी बुनियादी शिक्षा सबके लिए और दूसरी तरफ आगे की अंग्रेजी शिक्षा केवल उच्च वर्ण के लिए चाहते थे। वे अच्छी तरह से जानते थे, कि अंग्रेजी भाषा में उच्च शिक्षा को प्राप्त करने वाले लोग ही देश की शासन व्यवस्था को संचालित करेंगें और इसीलिए वे शासन कैसे करें? आज राजस्थान प्रदेश में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का नामकरण महात्मा गांधी इंग्लिश मिड़ियम स्कूल किया गया

है। जबकि गांधी ऐसी शिक्षा केवल द्विज वर्ण के लिए चाहते थे। राजस्थान में 2024 में, मुख्यमंत्री भजनलाल शर्मा के नेतृत्व में गठित बीजेपी–ब्राह्मण–बनिया जनता पार्टी ने इन विद्यालयों का विरोध किया है और फिर से इन्हें हिन्दी माध्यम में बदलने की बात कही है। गांधी ने हिन्द स्वराज में लिखा है कि ''करोड़ों लोगों को अंग्रेजी पढ़ाना तो उन्हें गुलामी में फंसा देना है। मैकाले ने इस देश में जिस शिक्षा की नींव ड़ाली, वह सच पुछे तो हमारी गुलामी की नींव थी।''[15] गांधी ने 1921 में यंग इण्डिया में लिखा कि ''अंग्रेजी पार राष्ट्रीय व कूटनीति की भाषा है, इसमें बहुत से साहित्यिक खजाने है, जो हमें पश्चिमी विचारधारा व संस्कृति से रूबरू कराते है। इसलिए हम में से कुछ के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है, जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व राजनीति का संचालन किया जा सकें और हमारा राष्ट्र पश्चिमी देशों के श्रेष्ठ साहित्य व वैज्ञानिक प्रगति से लाभान्वित हो सके। अंग्रेजी का बस इतना प्रयोग युक्तिसंगत है। बालक–बालिकाओं के मन में, यह विचार उत्पन्न होना कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना उच्च समाज में प्रवेश संभव नही है, भारत के पौरूष का अपमान है और विशेषतया यह नारीत्व का अपमान है। यह विचार कितना अपमानजनक है, इससे मुक्ति स्वराज का अंग है।''[16] गांधी का अंग्रेजी भाषा व पश्चिमी सभ्यता के प्रति व्यक्त किया गया विचार दुर्भावनापूर्ण, द्वैषतापूर्ण और दूरभिसंधि युक्त प्रतीत होता है। जैसे सबके सामने विपक्षी को भला–बुरा कहकर, बाद में अपना हित साध लेना या सार्वजनिक मंच पर समानता व मानवता की बात करना, लेकिन व्यवहार में भेदभाव और अमानवीय बर्ताव करना। गांधी की इसी दोहरी नीति के कारण अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन,1931 के दौरान गांधी के महात्मा होने पर ही संदेह व्यक्त किया था।

इस कौशल को केवल द्विज वर्ण के लिए आरक्षित रखने की वकालात कर रहे थे। उन्होंनें स्वयं ने ब्रिटेन से अंग्रेजी में बैरिस्टर की उच्च कानूनी शिक्षा[17] प्राप्त की और इसी शिक्षा के बल पर वे दादा अब्दुला कम्पनी के केस के सिलसिले में अफ्रीका गए और वहाँ से महात्मा बनकर भारत लौटे। सर्वज्ञात तथ्य है कि उस दौर के नायकों–गांधी, नेहरू, जिन्ना, अम्बेडकर इत्यादि ने विदेश में तालीम प्राप्त करके ही भारत का नेतृत्व अपने हाथों में लिया था। अन्यथा लाखों–करोड़ों की संख्या में भारत की आज़ादी के लिए बलिदान देने वाले किसानों, दलितों, आदिवासियों, क्रांतिकारियों को गुमनाम कर दिया गया है। गांधी ने शिक्षा में भी दोहरे चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हुए अंग्रेजी भाषा वाली पश्चिमी शिक्षा का प्रतिरोध किया है। वे लॉर्ड मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के आलोचक थे। उनके अनुसार ''विदेशी शिक्षा ने भारतीय समाज को समृद्ध नहीं किया है अपितु इसे अपंग व असमर्थ बनाया है। हम अपनी संस्कृति को ही भूल गए है। पश्चिमी सभ्यता ने केवल भारतीय संस्कृति को ही नष्ट नहीं किया है अपितु भारतीयों के मस्तिष्क पर इससे भी गहरी चोट की है।''[18] गांधी के इस विचार से साफ–साफ मालूम होता है कि वे वस्तुत आधुनिक भारत में नवीन आवरण वाली बदली हुई वर्णधर्म शिक्षा–संस्कृति का समर्थन कर रहे थे। गांधी बताते है कि अंग्रेजी भाषा ने अपने स्वार्थ के अनुसार भारतीय इतिहास की विकृत व्याख्या की है। उन्हीं के शब्दों में ''अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किया हुआ भारत अपने धर्म से विमुख हो जाएगा, मैकाले का यह सपना सच हुआ या नहीं, मैं यह नहीं जानता। लेकिन उनका एक ओर सपना था– अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारत से अंग्रेजी अधिकारियों के लिए बाबू तैयार करना, उसका यह सपना उसकी धारणा से भी ज्यादा सच निकला।''[19] गाांधी का मानना था कि पश्चिमी शिक्षा, ज्ञानी व अज्ञानी, अमीर व गरीब, वर्ग और समूह, के बीच भेदभाव व असमानता सर्जित करती है।

गांधी की नई तालीम या बुनियादी शिक्षा योजना

गांधी की मान्यता थी कि परिवार, विवाह, धर्म, कानून और राजनीति की तरह शिक्षा भी समाज की महत्वपूर्ण संस्थाओं में से एक है जो सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने और विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गांधी अपनी आत्मकथा में लिखते है कि ''शिक्षा के रूप में, मैनें चरित्र के विकास को हमेशा प्रथम स्थान दिया है।''[20] महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित शिक्षा प्रणाली को आधारभूत शिक्षा या बुनियादी शिक्षा या नई तालीम के नाम से भी जाना जाता है। गांधी ने वर्ष 1937 में वर्धा में आयोजित 'अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन' में अपनी शिक्षा योजना को प्रस्तुत किया कहा जाता है। इसके बाद डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में 'जाकिर हुसैन समिति' का गठन हुआ जिसने गांधी के बुनियादी शिक्षा दर्शन पर एक विस्तृत प्रतिवेदन तैयार किया और इसे 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में अनुमोदित किया गया। इसे ही गांधी की नई तालीम के नाम से पहचाना गया, जिसे वर्धा शिक्षा योजना भी कहा जाता है। गांधी ने वर्धा में सेवाग्राम विद्यालय को इसी योजना के अनुसार संचालित किया। शिक्षा पर गांधीवादी दर्शन को भारतन कुमारप्पा ने दो पुस्तकों– बेसिक एजुकेशन (1951) और टूवर्ड्स न्यू एजुकेशन (1953) में संकलित और संपादित किया है। गांधी की नई तालीम का समग्र रूप निम्न प्रकार से है–

बुनियादी शिक्षा का आशय

गांधीजी की बुनियादी शिक्षा युवा शिक्षार्थियों को नैतिक रूप से मजबूत, व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र, सामाजिक रूप से रचनात्मक, आर्थिक रूप से उत्पादक और जिम्मेदार, भावी नागरिक बनने के लिए तैयार करने का चुनौतीपूर्ण कार्य करती है। गांधीजी का मानना था कि शिक्षा को बच्चे की सभी क्षमताओं का विकास करना चाहिए, ताकि वह एक पूर्ण मानव बन सके। इस तरह, पूर्ण और सामंजस्यपूर्ण रूप से विकसित व्यक्तित्व जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम होता है जो सत्य या ईश्वर है।

बुनियादी शिक्षा के आधारभूत नियम

1. नई तालीम के पाठ्यक्रम की अवधि 7 वर्ष होगी।
2. प्रत्येक बच्चे के लिए 7 से 14 वर्ष तक निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान।
3. शिक्षा का माध्यम मात भाषा होगी।
4. जीवन में आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा शिल्प या दक्षता पर आधारित अर्थात् साक्षरता कोई शिक्षा नहीं होती है अपितु जीवन में कुछ करने के लायक बनाने वाली प्रणाली शिक्षा है।
5. शिक्षा वह है, जो बच्चों में मानवीय मूल्यों का सर्जन करती है।
6. शिक्षा से उपयोगी, जिम्मेदार और गतिशील नागरिक तैयार होने चाहिए। शिक्षा के द्वारा बच्चे की सभी छिपी हुई शक्तियों का विकास, उस समुदाय के अनुसार होना चाहिए, जिसका वह अभिन्न अंग है।
7. शिक्षा से बच्चे के शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास होना चाहिए।

8. शिक्षा किसी उत्पादक शिल्प या उद्योग के माध्यम से दी जानी चाहिए और उस उद्योग के साथ एक उपयोगी सह–संबंध स्थापित किया जाना चाहिए। उद्योग ऐसा होना चाहिए कि बच्चा व्यावहारिक कार्य के माध्यम से लाभदायक कार्य अनुभव प्राप्त करने में सक्षम हो।

बुनियादी शिक्षा के ध्येय

इस प्रकार, शिक्षा का उद्देश्य बालक के एकीकृत व्यक्तित्व का विकास करना होना चाहिए। गांधीजी के अनुसार शिक्षा का एक मूल सिद्धांत यह है कि कार्य और ज्ञान को कभी अलग नहीं किया जाना चाहिए। श्रम से सीखने को अलग करने से सामाजिक अन्याय होता है। यह युवाओं में निराशा, अवसाद, चिंता और आत्महत्या करने की भावना, जैसी समस्याओं को हल करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। गांधीजी के अनुसार शिक्षा के माध्यम से एक बच्चे को किसी उद्यम या व्यवसाय को अपनाकर अपने जीवन की भविष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक उत्पादक शिल्प सीखने में सक्षम होना चाहिए। इसलिए, उन्होंने शिक्षा के मुख्य उद्देश्य के रूप में आत्मनिर्भरता और आजीविका कमाने की क्षमता के लिए शिक्षा की वकालत की। उनकी इच्छा थी कि प्रत्येक बच्चा सीखने में व्यस्त रहते हुए कमाए और कमाने में व्यस्त रहते हुए कुछ सीखे। व्यावसायिक शिक्षा के साथ–साथ सांस्कृतिक उन्नति भी हासिल की जानी चाहिए। विकास के दोनों पहलू साथ–साथ चलने चाहिए।

बुनियादी शिक्षा की पाठ्यचर्या

गांधीजी की 'बुनियादी शिक्षा' रोजगार केन्द्रित, मूल्य आधारित तथा जनोन्मुखी विषय सामग्री से जुड़ी हुई थी। उनकी शिक्षा योजना में ज्ञान का संबंध क्रियाकलाप तथा व्यावहारिक अनुभवों से था। इसलिए उनका पाठ्यक्रम क्रियाकलाप केन्द्रित है। इसका उद्देश्य बालक को व्यावहारिक कार्य, प्रयोग तथा शोध के लिए तैयार करना है, ताकि वह शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से स्वयं का विकास कर सके तथा समाज का उपयोगी सदस्य बन सके। इस पाठ्यक्रम में गांधीजी ने मातृभाषा, बुनियादी शिल्प, चित्रकला, अंकगणित, समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान, कला, संगीत इत्यादि विषयों को शामिल किया है। इसके साथ ही कक्षा 1 से 5 तक बालक तथा बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम और उसके बाद बालकों को कुछ शिल्प तथा बालिकाओं को गृहविज्ञान पढ़ाया जाना चाहिए। गांधी ने धार्मिक शिक्षा[21] पर भी बल दिया है।

ज्योतिबा फुले का शैक्षणिक चिंतन

महात्मा ज्योतिबा फुले जिन्हें भारत में सामाजिक–धार्मिक व शैक्षणिक क्रांति का पुरोंधा कहा जाता है। फुले ने अपनी रचना 'तृतीय रत्न' नाटक में शिक्षा को मानव के तीसरे नेत्र की संज्ञा दी है।[22] उनके शिक्षा के बारे में क्या विचार है? शिक्षा कैसी हो? प्रणाली कैसी हो? शिक्षा किनके लिए जरूरी है? किस भाषा में आवश्यक है, और फुले ने स्वयं ने शिक्षा कैसे व कौनसी भाषा में प्राप्त की और अपने निजी विद्यालयों में शिक्षा व्यवस्था कैसी रखी? और ब्रिटिश भारत में उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में क्यों सम्मानित किया गया? इन्हीं सवालों के केन्द्र में फुले के शिक्षा दर्शन का अध्ययन किया गया है।

शिक्षा क्या है और क्यों आवश्यक है

महात्मा फुले ने स्वयं ने शिक्षा प्राप्ति के लिए जो संघर्ष किया, उसी संघर्ष ने उन्हें भारत में शैक्षणिक क्रांति का महानायक बनने की प्रेरणा प्रदान की है। वे लिखते है कि किस तरह से जब उन्हें मिशनरी से अलग कर दिया गया और उनकों द्विजजन[23] अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य द्वारा उसका विद्यालय छुड़वा दिया गया और अंततः फुले ने थॉमस पेन की रचना 'राईट ऑफ मेन,1793[24]' का अध्ययन करने के बाद शिक्षा के महत्व को समझा और जीवन में शिक्षा के महत्व को अनुभव करते हुए, सर्वप्रथम अपनी पत्नी को साक्षर किया, उसे भारत की प्रथम महिला शिक्षिका होने का गौरव दिलाया और सावित्री बाई फुले, फातिमा शेख व उस्मान शेख के साथ मिलकर शूद्र–अतिशूद्र बालिकाओं व बालकों के लिए औपचारिक शिक्षा, महिलाओं–पुरूषों के लिए प्रौढ़ शिक्षा, हेतु रात्रिकाल में संचालित अनौपचारिक शैक्षणिक अभियान चलाया। फुले दम्पती ने ही पहली बार शिक्षा के महत्व को समझाने के लिए 'पैरेण्टस–टीचर मीट' के आयोजन की पहल आरंभ की थी। आज भारत में इसका व्यापक प्रचार–प्रसार है। भारत में सामाजिक क्रांति की धरती महाराष्ट्र में फुले दम्पती के द्वारा 100 से अधिक शिक्षण संस्थाओं[25] की स्थापना की गई और बहुजनों के लिए शिक्षा की अलख जगाई गई।[26] इतना ही नहीं अपितु शिक्षा का प्रसार कर, उस समय हिन्दू धर्म में विद्यमान अनेकानेक धार्मिक व सामाजिक बुराईयों जैसे कि विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, विधवाओं का पालन–पोषण, विधवाओं के बच्चों के वध का निषेध, छुआछूत का विरोध, विधवा मुण्डन पृथा प्रतिरोध, सत्य शोधक समाज[27] द्वारा विवाह के कर्मकाण्ड़ों से मुक्ति, अंतर्जातीय विवाह का समर्थन इत्यादि के लिए साहसपूर्ण कार्य किया। फुले ने अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी'1873 में संवाद शैली के माध्यम से हिंदूईज्म में शूद्रों को किस तरह से गुलाम बनाया गया है, उन तरीकों व साधनों का विस्तार से उल्लेख किया है।[28] 2 मार्च, 1888 को पूणे में डयूक ऑफ केनेट के सामुहिक भोज के अवसर पर बताया कि भारत का बहुजन समुदाय अधिकांशतया ग्रामीण होने की वजह से आदिम व अज्ञानी है। शिक्षा ही उनके उद्धार व कल्याण का एकमात्र माध्यम है। इस वर्ग को शिक्षित किये बिना भारत राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता है। राष्ट्रवाद उस देश में जन्म नहीं ले सकता है, जिसमें आबादी का एक बड़ा तबका सामाजिक व आर्थिक गुलामी से उत्पीड़ित हो। इसलिए सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।[29] फुले के चिंतन में शिक्षा गुलामी के बोध और उससे मुक्ति का सबसे बड़ा माध्यम है। शिक्षा वह है, जो समता, स्वतंत्रता, न्याय, प्रेम, अहिंसा, मित्रता, बंधुत्व, मानवीयता को विकसित करती है। यह मानव और मानव के बीच का भेद मिटाती है। मानव द्वारा मानव के शोषण का अंत करती है। यह मानव को धार्मिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक आज़ादी का मार्ग सीखाती है। शिक्षा इसलिए आवश्यक है, क्योंकि यह मानव को गुलामी से मुक्ति दिलाती है।

शिक्षा कैसी हो व किस भाषा में हो

शिक्षा मातृभाषा के साथ ही अंग्रेजी भाषा में भी होनी चाहिए और यह विज्ञान, साहित्य, कला, कौशल, मानवीय मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षा ऐसी हो जो बच्चों में सहिष्णुता, समरसता, समता, स्वतंत्रता, न्याय, प्रेम व अहिंसा का भाव सर्जित करती हो। गांधी ने जहाँ अंग्रेजी भाषा का विरोध किया है और उसे बुरा बताया है, वही फुले ने उसका पूर्ण समर्थन किया

है और उसे मानवता के उत्थान एवं विकास में सहयोगी बताया है। फुले ने बताया है कि इस अंग्रेजी भाषा के सहारे ही द्विजजनों ने अंग्रेजों के शासन में किस तरह से किसानों का अमानवीय शोषण किया है। कुलकर्णी से लेकर जिलाद्यीश तक और पुलिस स्टेशन से लेकर न्यायालय तक भट्टजी–सेठजी समूह ने शूद्रों–अतिशूद्रों पर अंग्रेजी के ज्ञान के सहारे अनगनित जूल्म ढ़ायें है। फुले ने अंग्रेजी को विशेष महत्व दिया है। वे कहते है कि वर्णधर्म के पैरोकारों ने भाषा के माध्यम से शूद्र–अतिशूद्रों का सदियों से शोषण किया है अर्थात् संस्कृत भाषा के माध्यम से धार्मिक, सामाजिक–सांस्कृतिक शोषण, मनुस्मृति[30] की रचना से लेकर आज, रामायण पाठ अथवा भागवद्कथा तक और गणेश पुराण से लेकर गरूड़ पुराण तक, शोषण का यह सिलसिला जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद तक अविरल जारी है और यदि अभी भी निम्न वर्ण के लोग राज करने की भाषा से दूर रहे, तो उनका शोषण आगे भी इसी तरह से जारी रहेगा। जैसा कि बौद्ध साहित्य में लिखा है कि ''कोई बुराई स्वयं के द्वारा ही की जा सकती है, कोई स्वयं के द्वारा ही शुद्ध होता है, कोई स्वयं ही बुराई से बच सकता है, कोई अपने ही द्वारा शुद्ध हो सकता है। पवित्रता या शुद्धता स्वयं व्यक्ति पर ही निर्भर करती है।''[31] जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष, शुद्धिकरण, अवतारवाद इत्यादि धारणाएँ एक मानव द्वारा दूसरे मानव के शोषण की सांस्कृतिक शैलियाँ या तौर–तरीकों के अलावा कुछ भी तो नहीं है।

शिक्षा की सर्वव्यापकता के लिए संघर्ष

महात्मा फुले ने भारत की धार्मिक, सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और तार्किक विश्लेषण करते हुए बताया है कि किस तरह से इतिहास में शूद्र–अतिशूद्रजनों को शिक्षा से एक शोषणकारी व अन्यायपूर्ण वर्णधर्मनीति के तहत, सदियों तक वंचित रखा गया है। पेरियार के शब्दों में 'महिलाओं को शिक्षा से इसलिए वंचित रखा गया, ताकि वे पितृसता की गुलामी से मुक्ति प्राप्त न कर सकें।[32] वे इसी परम्परा को आगे भी बरकरार रखना चाहते है। अतः फुले दम्पती ने स्वयं ने 19वीं सदी में पहली बार वंचितों के लिए अपने स्तर पर अंग्रेजों के सहयोग से शिक्षा के प्रचार–प्रसार का बेड़ा उठाया। उनका विचार था, कि शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। यही कारण है कि गांधी से लगभग 100 साल पहले, फुले ने निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा के सार्वभौमिक स्वरूप की धारणा का प्रतिपादन किया था, लेकिन द्विजजनों के कुत्सित प्रयासों और सरकारी संसाधनों के दुरूपयोग के माध्यम से गांधी के चिंतन का तो अतिश्योक्तिपूर्ण प्रचार–प्रसार किया गया और फुले के चिंतन को आमजन तक पहुँचने से रोकने के लिए, हाशिए पर धकेला गया है। जैसा महात्मा फुले ने अपनी रचना 'ब्राह्मणों की चालाकी' में लिखा है कि यह उच्च वर्ण की सदियों से चली आ रही धूर्ततापूर्ण फितरत है कि वे शूद्र–अतिशूद्रजन के उत्थान को सहन नहीं कर सकते है। इसके लिए वे तरह–तरह के स्वांग रचते है। इसी के समानांतर बाबा साहेब अम्बेडकर के शब्दों में ''विद्वता का पूरा ठेका सिर्फ ब्राह्मणों को मिला हुआ है, और वे दूसरों की विद्वता, जो ब्राह्मण साहित्य की पोल खोलने का कार्य करती है, उसे वे अजीबों–गरीब ढ़ंग से खारिज कर देते है। मैं इन नीच हरकतों का शिकार हो चुका हूँ।''[33]

इतना ही नहीं अपितु भट्टजी–सेठजी[34] कोम्बों ने फुले दम्पती के शिक्षा प्रचार का हरसंभव तरीके से प्रतिरोध किया। सावित्री बाई फुले जब विद्यालय में महार–मांग जाति की बालिकाओं को पढ़ाने जाती थी, तो द्विज महिलाओं के द्वारा उन पर गोबर फैंका जाता था और

निरक्षर लोगों को इसाई धर्म के प्रचार के नाम पर बहला–फुसलाकर फुले दम्पती के खिलाफ खडा किया जाता था। विद्यालय के आरंभिक दिनों में कुछ ब्राह्मण शिक्षकों ने सहयोग किया परंतु बाद में पूर्ण असहयोग की नीति का पालन किया। यही कारण है कि फुले ने इन लोगों को 'कलम कसाईयों' की संज्ञा देकर पुकारा है। फुले ने अपनी पुस्तक 'किसान का कोड़ा' में इन कलम कसाईयों की तत्कालीन दौर की सभी करतूतों का विस्तार से उल्लेख किया है। अतः फुले ने शिक्षा के सार्वभौमिकरण के सिद्धांत पर बल दिया है।

गांधी व फुले की शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक विश्लेषण

गांधी व फुले के उक्त शैक्षणिक विचारों के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि–

1. फुले व गांधी, दोनों ने ही निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के चिंतन का समर्थन किया है।
2. दोनों ही नायकों ने शिक्षा के माध्यम से मानवीय मूल्यों के सर्जन पर बल दिया है।
3. दोनों के द्वारा कौशल अथवा दक्षता आधारित रोजगारोन्मुखी शिक्षा पाठ्यचर्या का समर्थन किया गया है।
4. दोनों के चिंतन में शिक्षा का विशेष महत्व है, जो कि मानव को जीवन जीने के योग्य बनाती है।
5. दोनों ही नायकों ने मातृभाषा का समर्थन किया है।

उपर्युक्त समताओं के बावजूद भी दोनों के चिंतन में अनेक भिन्नताएं भी है, जो निम्न है–

1. फुले ने अंग्रेजी भाषा के साथ त्रिभाषा सूत्र का समर्थन किया है जबकि गांधी ने इसका प्रतिरोध किया है।
2. फुले ने 'शिक्षा सबके लिए' के दृष्टिकोण पर बल दिया है जबकि गांधी ने 'बुनियादी शिक्षा सबके लिए' और 'अंग्रेजी शिक्षा कुछ लोगों के लिए' के चिंतन का समर्थन किया है।
3. गांधी ने धार्मिक शिक्षा को विशिष्ट महत्व दिया है परंतु फुले ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने वाली शिक्षा का समर्थन परंतु धार्मिक अंधविश्वास व कर्मकाण्ड व कुरूतियों की आत्मिक शिक्षा का प्रतिरोध किया है।
4. गांधी ने वर्णधर्म आधारित द्विज शिक्षा प्रणाली के सिद्धांत को अपनाया है जबकि फुले ने सर्वजन शिक्षा प्रणाली के सिद्धांत को अपने शैक्षणिक दर्शन का केन्द्र बनाया है।
5. फुले ने शिक्षा में नारीवाद के सिद्धांत का समर्थन करते हुए बालक–बालिकाओं के लिए एक समान शिक्षा पाठ्यचर्या और बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बतायी है, लेकिन गांधी ने कक्षा 1 से 5वीं तक दोनों के लिए समान शिक्षा परन्तु उसके बाद बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान की शिक्षा देने पर बल दिया है। इस तरह से गांधी ने पितृशाही शिक्षा सिद्धात का समर्थन किया है।

6. गांधी ने शिक्षा के क्षेत्र में असहिष्णुता का जबकि फुले ने सहिष्णुता के दृष्टिकोण का समर्थन किया है।

7. फुले ने महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है लेकिन गांधी पितृसता शैक्षणिक दर्शन के समर्थक है।

8. फुले ने कृषि एवं उद्योग संबंधी ग्रेड स्तर की शिक्षा का समर्थन किया है, जिससे किसानों की समस्याओं के निदान में शिक्षा का उपयोग हो सके।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर तुलनात्मक पद्धति के अनुप्रयोग एवं विश्लेषण के बाद निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत की ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि और भविष्य को ध्यान में रखते हुए गांधी की तुलना में फुले का शिक्षा दर्शन अधिक वैज्ञानिक, समतावादी, मानवतावादी, दक्षतावादी है। अतः इसी दर्शन के सहारे भारत अपने बौद्धकालीन ऐतिहासिक गौरव को पुनः प्राप्त कर सकता है। जैसा कि बाबा साहेब ने अपनी रचनाओं में साफ़ तौर पर लिखा है कि उनके चिंतन के तीन शिक्षक 'तथागत बुद्ध, संत कबीर और ज्योतिबा फुले' है। अंततः फुले के चिंतन की शिक्षा पद्धति को और उनके शिक्षा दर्शन को, जब तक भारत की आधुनिक शिक्षा प्रणाली का आधार नहीं बनाया जाएगा, तब तक आम भारतीयों के जीवन में कोई विशेष बदलाव आने की संभावना नहीं है। नवीन राष्ट्रीय नीति, 2020 की तरह, वह केवल मिथ्या परिवर्तन का कागजी शेर बनकर रह जायेगा। 2020 से 2024 तक इस नवीन शिक्षा की दुर्दशा किसी से छिपी हुई नहीं है। हम इसके साक्षात मूकदर्शक है। पूरे देशभर में मातृभाषा के साथ ही अंग्रेजी भाषा में एक समान वैज्ञानिक दृष्टिकोणयुक्त, दक्षतायुक्त, मानवीय मूल्यों से निर्देषित पाठ्यचर्या को शामिल किया जाना चाहिए।

❐

सन्दर्भ –

1. *सिंह, राजेन्द्र प्रसाद, (2022), इतिहास का मुआयना, नई दिल्लीः सम्यक प्रकाशन, पृ. 33*
2. *https://www.amarujala.com/uttar-pradesh/varanasi/bhimrao-ambedkar-came-to-banaras-in-1956-told-the-students-education-is-the-milk-of-a-lioness-whoever-dri-2023-04-14?pageId=1 देखा, दिनांक–01 सितंबर, 2024*
3. *https://velivada.com/quotations-of-dr-b-r-ambedkar/ देखा, दिनांक–01 सितंबर, 2024*
4. *द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद, (अनु. 1917), मनुस्मृति, लखनउः एम एल भार्गव नवल किशोर प्रेस, पृ. 07*
5. *https://www.un.org/millenniumgoals/2015_MDG_Report/pdf/MDG%202015% 20rev% 20 (July%201). pdf देखा, दिनांक– 10 अगस्त, 2024*
6. *https://dsel.education.gov.in/rte देखा, दिनांक– 10 अगस्त, 2024*
7. *सामोता, के सी (2024), भारतीय राजनीतिक चिंतन, जयपुरः आर बी एस ए पब्लिशर्स, पृ.146*
8. *फुले, महात्मा जोतिराव (2022), गुलामी, (अनु. वेदालंकार), महाराष्ट्रः महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति 1994, प्रस्तावना से उद्धृत, पृ.10*
9. *गांधी, महात्मा, हिन्द स्वराज्य, अनु. श्रीकालिकाप्रसाद, नई दिल्लीः सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ. 83*
10. *हरिजन, 31 जुलाई, 1937*
11. *गांधी, मोहनदास करमचंद, (2022), सत्य के प्रयोग, नई दिल्लीः लेक्सिकन बुक्स, पृ. 287*
12. *हरिजन, 11 सितंबर, 1937*

13. गांधी, मोहनदास करमचंद, (2022), सत्य के प्रयोग, नई दिल्लीः लेक्सिकन बुक्स, पृ. 284–285
14. यंग इण्डिया, 1 सितंबर, 1921
15. गांधी, महात्मा, हिन्द स्वराज्य, अनु. श्रीकालिकाप्रसाद, नई दिल्लीः सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ. 86
16. गुप्त वि प्र और गुप्त मो (1996), महात्मा गांधीः व्यक्ति और विचार, नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन, पृ. 192–193
17. गांधी, मोहनदास करमचंद, (2022), सत्य के प्रयोग, नई दिल्लीः लेक्सिकन बुक्स, पृ. 77–79
18. श्रीमाली, के एल (1984), दि वर्धा स्कीम, उदयपुरः विद्या भवन सोसायटी, पृ. 13
19. यंग इण्डिया, 28 मार्च, 1928
20. गांधी, मोहनदास करमचंद, (2022), सत्य के प्रयोग, नई दिल्लीः लेक्सिकन बुक्स, पृ. 284
21. हिंदी नवजीवन, 25 अगस्त, 1921
22. सामोता, के सी (2024), भारतीय राजनीतिक चिंतन, जयपुरः आर बी एस ए पब्लिशर्स, पृ. 148
23. कांचा अल्लैया शैफर्ड एण्ड कार्तिक राजा कारूपु स्वामी (सं.2021), शूद्राज विजन फॉर ए न्यू पाथ, पैंग्विन रैण्डम हाउस इण्डिया प्रा. लिमिटेड, पृ. 36
24. सामोता, के सी (2024), भारतीय राजनीतिक चिंतन, जयपुरः आर बी एस ए पब्लिशर्स, पृ. 130
25. कीर, धनंजय (2013), महात्मा ज्योतिराव फूले भारतीय सामाजिक क्रांति के पिता, बम्बईः लोकप्रिय प्रकाशन।
26. सामोता, के सी (2024), भारतीय राजनीतिक चिंतन, जयपुरः आर बी एस ए पब्लिशर्स, पृ. 147
27. कांचा अल्लैया शैफर्ड एण्ड कार्तिक राजा कारूपु स्वामी (सं.2021), शूद्राज विजन फॉर ए न्यू पाथ, पैंग्विन रैण्डम हाउस इण्डिया प्रा. लिमिटेड, पृ. 27
28. वही, पृ. 27
29. तिलक, रजनी (2017), सावित्री बाई फुले रचना समग्र, दिल्ली,:मार्जिन लाइव पब्लिकेशन।
30. कांचा अल्लैया शैफर्ड एण्ड कार्तिक राजा कारूपु स्वामी (सं.2021), शूद्राज विजन फॉर ए न्यू पाथ, पैंग्विन रैण्डम हाउस इण्डिया प्रा. लिमिटेड, पृ. 18
31. समोता, के सी (2024), भारतीय राजनीतिक चिंतन, जयपुरः आर बी एस ए पब्लिशर्स, पृ. 09
32. गीथा, वी, (2023), ई वी रामासामी पेरियार, नई दिल्लीः फारवर्ड प्रेस, पृ. 113
33. बाबा साहेब (2020), डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय, खण्ड–14, अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने, नई दिल्लीः डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 02
34. कांचा अल्लैया शैफर्ड एण्ड कार्तिक राजा कारूपु स्वामी (सं.2021), शूद्राज विजन फॉर ए न्यू पाथ, पैंग्विन रैण्डम हाउस इण्डिया प्रा. लिमिटेड।

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 25–35

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने का माध्यम महिला स्व–सहायता समूह : एक अध्ययन

डॉ. जी.डी.एस. बग्गा
सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य विभाग)
चन्दूलाल चन्द्राकर शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय धमधा, जिला–दुर्ग (छ.ग.)

अनामिका साहू
शोधार्थी, वाणिज्य विभाग,
चन्दूलाल चन्द्राकर शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, धमधा, जिला–दुर्ग (छ.ग.)
E-mail: anamika.sahu2306@gmail.com

सारांश

महिला स्व–सहायता समूह एक ऐसा समूह है, जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए अथक प्रयास किए जा रहे है। इस शोध पत्र में छत्तीसगढ़ राज्य के राजनांदगाँव जिले के डोंगरगाँव विकासखण्ड के अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में महिला स्व–सहायता समूह का एक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को स्व–सहायता समूह के माध्यम से सशक्त बनाना एवं उनके आर्थिक विकास में वृद्धि करना है। यह शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु यादृच्छिक दैव निदर्शन पद्धति से 100 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। स्व–सहायता समूह द्वारा ग्रामीण महिलाओं को छोटी–छोटी बचत कर कोष का निर्माण करने एवं अपनी जरूरतों को पूरी करने हेतु न्यूनतम ब्याज दर पर लेन–देन कर सहयोग प्रदान किया जाता है, जिससे वे आत्मनिर्भर बन सके। वर्तमान में डोंगरगाँव विकासखण्ड में स्व–सहायता समूहों की संख्या 1884 एवं समूह के सदस्यों की संख्या 20369 है। प्रदेश में ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए स्व–सहायता समूहों द्वारा स्कूलों में मध्यान्ह भोजन, आंगनबाड़ी में पूरक पोषण आहार कार्यक्रम, आंगनबाड़ी केन्द्र के हितग्राहियों के लिए रेडी टू–ईट एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत उचित मूल्य की दुकान के संचालन के साथ–साथ विभिन्न कार्य किए जा रहे है। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सी–मार्ट की स्थापना की गई है, जो महिला स्व–सहायता समूहों के सदस्यों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में मददगार साबित हो रहा है। वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य सरकार द्वारा महिला स्व–सहायता समूह को आगे बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास किया जा रहा है, जिससे ग्रामीण महिलाओं में स्व–सहायता समूह के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों का विकास कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जा सके। इस प्रकार राज्य शासन द्वारा ग्रामीण

महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए स्व–सहायता समूह के माध्यम से सतत् प्रयास किया जा रहा है। इस शोध पत्र से यह निष्कर्ष निकलता है कि महिला स्व–सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को एक नई दिशा प्रदान करती है, जिससे ग्रामीण महिलाएं अपनी आय, बचत आदि में वृद्धि कर अपने साथ–साथ अपने परिवार का भी भरण पोषण करती है। इस प्रकार अब ग्रामीण महिलाओं को दूसरों पर निर्भर नहीं होना पड़ता है।

मुख्य शब्दः ग्रामीण महिलाएं, महिला स्व–सहायता समूह, आर्थिक गतिविधियाँ, सशक्तिकरण।

प्रस्तावना

महिला स्व–सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं के छोटे–छोटे समूह होते है। ये समूह महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में मदद करते हैं। इन समूहों में महिलाएं एक–दूसरे का समर्थन करती हैं और एक साथ मिलकर काम करती है। इन समूहों के सदस्यों के पास एक समान उद्देश्य होता है, जो उन्हें एक साथ मिलकर काम करने के लिए प्रेरित करता है। ये समूह महिलाओं को बचत करने, ऋण लेने और व्यवसाय शुरू करने में मदद करते हैं।

स्व–सहायता समूह गरीब ग्रामीण लोगों का आर्थिक रूप से समरूप समूह है, जो नियमित आधार पर एक मामूली राशि बचाने के लिए स्वेच्छा से एक साथ आते है। जिसे सदस्यों की आपातकालीन जरूरतों को पूरा करने और समूह द्वारा निर्धारित जमानत–मुक्त ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से एक सामान्य कोष में रखा जाता है।

1989 में शुरू किए गए स्व सहायता समूह अक्सर 8–10 महिलाओं के समूह होते हैं, जो अपने सदस्यों से पैसे इकट्ठा करने, उन्हें बैंकों से जोड़ने और कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करने के लिए सप्ताह में एक बार इकट्ठा होते है। इन समूहों की महिलाएं अपना आर्थिक विकास करने के साथ–साथ देश के विकास में सशक्त सहयोग दे रहे है, जिसका एक उदाहरण कोविड–19 महामारी के समय हमे देखने को मिला। भारत के पिछड़े क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा संचालित स्व–सहायता समूहों ने कोविड–19 का बहादुरी से मुकाबला किया उन्होंने मास्क, सैनिटाइजर और सुरक्षात्मक उपकरण जैसे महत्वपूर्ण चिकित्सा सामान का उत्पादन किया, सामुदायिक रसोई का संचालन किया और वंचितों और समुदायों को वित्तीय सहायता प्रदान की। सरकारी कार्यक्रमों ने महिलाओं को बैंक खाते खोलने के लिए प्रेरित किया है, जिससे स्व–सहायता समूहों के लिए ऋण प्राप्त करना आसान हो गया है।

हमारे देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का दावा है कि आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था विकसित करने और महिलाओं को वैश्विक बाजार में संभावनाएं तलाशने के लिए प्रोत्साहित करके सतत् विकास मॉडल में नए बदलाव शामिल किए गए है, जिससे अधिक महिलाएं ऐसे व्यवसायों में अपनी जगह बना रही है फिर भी कुछ बाधाओं को दूर करना बाकी है।

स्व–सहायता समूह का परिचय

स्व–सहायता समूह एक गैर–सरकारी संगठन है, जिसका व्यापक लक्ष्य गरीबी उन्मूलन है। स्व–सहायता समूह द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाने, गरीबों और जरूरतमंदों के बीच नेतृत्व

कौशल का निर्माण करने, स्कूल में नामांकन बढ़ाने और पोषण और जन्म नियंत्रण के उपयोग में सुधार जैसे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपकरण के रूप में देखा जाता है। स्व–सहायता समूह गरीब लोगों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो गरीबी कम करने के लिए महत्वपूर्ण है। स्व–सहायता समूह महिला सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि वे आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि की महिलाओं को सामाजिक पूँजी स्थापित करने में सक्षम बनाते है।

स्व–सहायता समूह लोगों के छोटे समूह है, मुख्य रूप से महिलाएं जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और पैसे बचाने और एक–दूसरे को ऋण प्रदान करने के लिए एक साथ आती है। वे बचत और ऋण गतिविधियों पर एक साथ निर्णय लेते है, जिसमें उद्देश्य, राशि, ब्याज दर और पुनर्भुगतान अनुसूची शामिल है। यदि कोई ऋण चुकाने में विफल रहता है, तो अन्य सदस्य इसे गंभीरता से लेते है और वसूली में मदद करते है। समूह में स्वास्थ्य, स्वच्छता, पोषण और घरेलू हिंसा जैसे विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर भी चर्चा की जाती है और सुधार हेतु प्रयास करते है।

स्व–सहायता समूह आर्थिक रूप से गरीब लोगों के स्वैच्छिक संगठन है, जो आमतौर पर एक ही सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से आते है और जो स्वयं की सहायता और सामुदायिक कार्यवाही के माध्यम से अपने मुद्दों और समस्याओं को हल करने के साझा उद्देश्य के लिए एक साथ आने का संकल्प लेते है।

शोध साहित्य की समीक्षा

1. **जतिन पाण्डे एवं रिनी रॉबर्टस (2012)**[1] ने अपने शोध पत्र में यह निष्कर्ष निकाला है कि स्व–सहायता समूह की अवधारणा ग्रामीण महिलाओं को माइक्रो क्रेडिट की आसान उपलब्धता के लिए एक बेहतर तंत्र है और उन्हें अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाने में मदद करती है। माइक्रो क्रेडिट सुविधा महिलाओं को अपने कौशल को उन्नत करने और अपने व्यवसाय को बेहतर बनाने के लिए उत्पादन के उपकरण और साधन रखने में सक्षम बनाती है। महिलाओं में बचत की आदत को बढ़ावा देने के बाद, विशिष्ट आर्थिक उद्देश्यों के लिए समूह ऋण प्रदान किए जाते है। अधिकांश गरीब महिलाएं पहले इस पैसे का इस्तेमाल घरेलू जरूरतों के लिए करती है ताकि अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकें। माइक्रो क्रेडिट की सहायता से महिलाएं अब कैंटीन, खानपान, स्कूलों के लिए खाना बनाना, सिलाई आदि चला रही है, जिससे महिलाओं की गतिशीलता और सामाजिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी में वृद्धि हुई है।(Pandey & Roberts, 2012)

2. **बदीउद्दीन अहमद एवं एस.नयामथ बाशा (2014)**[2] ने अपने शोध पत्र में यह निष्कर्ष निकाला है कि 21वीं सदी में महिलाएं अधिकारहीन थी। महिलाओं और लड़कियों के साथ भेदभाव जिसमें लिंग आधारित हिंसा, आर्थिक और शैक्षिक भेदभाव, प्रजनन स्वास्थ्य असमानताएं और हानिकारक पारंपरिक प्रथाएं शामिल है, समाज में असमानता का सबसे व्यापक रूप है। इसके परिणामस्वरूप उनका जीवन तनाव, आत्म–सम्मान में कमी और निर्भरता, आत्म–बोध और भविष्य की चिंता आदि से घिरा हुआ था। इस प्रकार स्वयं सहायता समूह महिलाओं की भागीदारी से इस परिदृश्य को बदलने की क्षमता रखता है। यह महिलाओं को आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, संबंधपरक, प्रबंधकीय और राजनीतिक जैसे आयामों पर सशक्त बनाता है, इसलिए सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका सराहनीय है। सामान्य रूप से महिलाएं और विशेष रूप से ग्रामीण महिलाएं जो खुद को सशक्त बनाना चाहती है, उन्हें सशक्त होने के लिए स्वयं सहायता समूहों से जुड़ना चाहिए। (Ahmed & Basha, 2014)

3. **राजा साहू (2016)**[3] ने अपने शोध पत्र में यह निष्कर्ष निकाला है कि एक समय में जो महिलाएं अशिक्षित तथा अज्ञानी थी, स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के पश्चात अपने स्वास्थ्य, बच्चों की शिक्षा, भोजन की पौष्टिकता तथा परिवार नियोजन के प्रति जागरूक हो गई है। इस अध्ययन में समाज के अति आवश्यक, अविभाज्य किंतु पिछड़े हुए अंग 'महिला' को सशक्त एवं स्वावलंबी बनाने हेतु प्रभावी उपकरण स्वयं सहायता समूहों की भूमिका पर दृष्टिपात करने का प्रयास किया गया है। इसी तारतम्य में महिलाओं का जीवन स्तर सुधारने व विकास कार्य में उनकी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास जारी है। स्वयं सहायता समूह ग्रामीण निर्धन महिलाओं द्वारा स्वेच्छा से गठित समूह है, जिससे समूह की सदस्य महिलाएं अपनी इच्छा से जितनी चाहे बचत आसानी से करती है। अतः सशक्तिकरण के लिए महिला स्वयं सहायता समूह इसीलिए आवश्यक है ताकि ग्रामीण महिलाएं संगठित होकर आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में स्वयं के प्रयासों से कुछ कर सकें। (साहू, 2016)

4. **पोली सेकिया (2016)**[4] ने अपने शोध पत्र में बताया है कि पहले भारतीय महिलाएं पुरूष प्रधान समाज के शोषण का शिकार हो रही थी, जो समाज के विकास में एक बड़ी

बाधा बन गई थी लेकिन अब महिलाओं को सशक्त होने के रूप में देखा जा सकता है। अब महिलाएं शिक्षण संस्थान, बैंक, कंपनियों, अंतरिक्ष, चिकित्सा विज्ञान, इंजीनियरिंग, घरेलू और यहाँ तक कि छोटे–मोटे व्यापार में भी लगी हुई है। अब महिलाएँ पुरूषों के बराबर कमाती है, महिलाएँ अपने साथ–साथ पारिवारिक निर्णय भी खुद लेती है, महिलाएँ हर काम में शामिल होती है। इस प्रकार उन्होंने खुद को सशक्त बनाया है। (Saikia, 2016)

5. **नागेशा बी एवं अजेय जी.(2018)**[5] ने अपने शोध पत्र में निष्कर्ष निकाला है कि स्वयं सहायता समूहों ने सामाजिक–आर्थिक स्थिति के विकास के लिए, गरीबी को कम करने और ग्रामीण लोगों को अधिकार देने के लिए राष्ट्र में अच्छा काम किया है। छोटे उद्यमों एवं इसकी गतिविधियों ने समाज में ग्रामीण गरीबों के सामाजिक–आर्थिक विकास में काफी योगदान दिया है। भारत सरकार द्वारा ग्रामीण भारत के आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूहों के महत्व को समझते हुए देश में 2.25 मिलियन से अधिक स्वयं सहायता समूह को मान्यता दी गई है। (B & G, 2018)

6. **उमा जोशी एवं कंचन पाण्डे (2019)**[6] ने अपने शोध पत्र में निष्कर्ष निकाला है कि महिलाएं समूह की क्रियाओं में भाग लेकर विभिन्न कार्यों से जुड़कर विकास के नये आयाम से जुड़ गयी है तथा समूह के स्तर पर नेतृत्व करने के साथ–साथ परिवार एवं समुदाय के स्तर पर नेतृत्व करने की क्षमता भी उनमें उभरी है। इस प्रकार ग्रामीण महिलाओं को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है, जिसके अंतर्गत स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन्होंने बताया है कि समूहों के माध्यम से महिलाओं पर किये गये घरेलू हिंसा तथा शोषण पर प्रभावशाली ढंग से रोक लगायी गई है, जिससे समाज में महिलाओं की स्थिति में कुछ हद तक सुधार भी आया है। अतः स्वयं सहायता समूह ने महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़कर उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सशक्तिकरण की दिशा की ओर उन्मुख किया है, जिससे ग्रामीण महिलाएँ अपनी एक विशेष पहचान तो बना ही रही है साथ ही साथ गाँव के विकास में अहम भूमिका निभा रही है, जो कि सराहनीय है। (Joshi & Pandey, 2019)

7. **सुनीता श्रीवास्तव (2020)**[7] ने अपने शोध पत्र में बताया है कि स्वयं सहायता समूह देश के विभिन्न राज्यों में अनेक गतिविधियों द्वारा न केवल महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है अपितु समाज में सकारात्मक व रचनात्मक वातावरण को विकसित करने में भी सहायक है। अतः स्वयं सहायता समूह के द्वारा देश के निर्माण में तथा विभिन्न सामाजिक विषमताओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, भेदभाव, भ्रष्टाचार एवं महिला व बाल उत्पीड़न इत्यादि को जन–आन्दोलन एवं भागीदारी से दूर करने में सरकार व समाज को अपना बहुमूल्य योगदान दे सकती है। साथ ही महिलाओं के द्वारा परिवार, समाज व देश की प्रगति की नींव रखी जा सकती है। (श्रीवास्तव, 2020)

8. **विमला देवी (2020)**[8] ने अपने शोध पत्र में सुझाव देते हुए बताया है कि शिक्षा से महिलाओं में आत्मविश्वास, अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता तथा अन्याय से लड़ने की नैतिक शक्ति पैदा होती है। समाज में अनगिनत कुरीतियों में बाल–विवाह, पर्दाप्रथा, विधवाओं के साथ अमानवीय व्यवहार, मृत्युभोज, भ्रूणहत्या इत्यादि सामाजिक कुरीतियां है, जो बदली जानी चाहिए। स्वयं सहायता समूह में महिलाओं में कौशल क्षमता बढ़ाने के लिए उन्हें

समय–समय पर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी मिल सके। महिलाओं को सबल बनाने हेतु उनके स्वास्थ्य पर ध्यान देने की जरूरत है। स्वयं सहायता समूह की प्रगति व उन्नति में संवाहक बनने के लिए उनसे जुड़े अधिकारियों व कर्मचारियों की जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिए। बैंकों से महिलाओं को वित्तीय लाभ प्राप्त करने में सबसे बड़ी रूकावटें रही है, इसलिए महिलाओं को साख उपलब्ध कराने की प्रक्रिया को और अधिक आसान व सरल बनाना चाहिये। (देवी, 2020)

9. **अनुपमा दीक्षित (2021)**[9] ने अपने शोध पत्र में यह निष्कर्ष निकाला है कि महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाकर उनका सशक्तिकरण करने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इन समूहों के माध्यम से महिलाएं घरेलू हिंसा, शोषण से मुक्त हुई है। समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार आया है। आर्थिक तत्व जीवन का सबसे प्रमुख अंग है और इन समूहों से महिलाओं को आर्थिक आजादी प्राप्त हुई है। इस प्रकार स्वयं सहायता समूहों को महिला स्वावलंबन का प्रमुख आधार माना गया है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में इन समूहों के द्वारा ही महिला सशक्तिकरण सम्भव हो पाया है। (दीक्षित, 2021)

10. रवि प्रकाश पाण्डेय एवं रामजी बंशकार (2024)[10] ने अपने शोध पत्र में सुझाव देते हुए बताया है कि सभी आयु वर्ग की ग्रामीण महिलाओं को स्व–सहायता समूह में सहभागिता हेतु प्रेरित करना आवश्यक है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति की ग्रामीण महिलाओं को भी स्व–सहायता समूह हेतु जोड़ने के प्रयास करने की जरूरत है। स्व–सहायता समूह के अतिरिक्त भी अन्य आर्थिक गतिविधियों में गरीब ग्रामीण महिलाओं को जोड़ने की आवश्यकता है। जिससे उनका आवश्यक आर्थिक सशक्तिकरण हो सके। स्व–सहायता समूह में जुड़ने वाली सभी ग्रामीण महिलाओं के साक्षर होने की व्यवस्था करना उचित होगा। (पाण्डेय एवं बंशकार, 2024)

समस्या का विवरण

ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए स्व–सहायता समूह का गठन किया गया है लेकिन इसके लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है, जिसके बिना भविष्य में ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में महिला स्व–सहायता समूह का अध्ययन करना।
2. महिला स्व–सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन करना।
3. ग्रामीण महिलाओं की जनसांख्यिकीय आँकड़ों का अध्ययन करना।
4. महिला स्व–सहायता समूह के गठन के पश्चात् ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

शून्य परिकल्पना (H0) :– महिला स्व–सहायता समूह से जुड़ने के बाद ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ है।

वैकल्पिक परिकल्पना (H1) :– महिला स्व–सहायता समूह से जुड़ने के बाद ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक समंकों के रूप में प्रश्नावली एवं साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से समंकों का संग्रहण किया गया है। द्वितीयक संमकों का संकलन प्रकाशित लेख एवं शोध पत्र, शासकीय प्रतिवेदन, शासकीय वेबसाइट, इंटरनेट आदि के माध्यम से किया गया है। शोध अध्ययन का क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के राजनांदगाँव जिले के विकासखण्ड डोंगरगाँव तक सीमित है। इस अध्ययन में न्यादर्श हेतु दैव निदर्शन पद्धति से 100 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है।

समंकों का संग्रहण

1 महिलाओं की जनसांख्यिकीय आंकड़ों का अध्ययन

तालिका क्रमांक 01

उत्तरदाताओं की आयु वर्ग का विवरण

क्र.	आयु वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	18–28	8	8
2.	28–38	50	50
3.	38–48	29	29
4.	48 से अधिक	13	13
	कुल	**100**	**100**

स्त्रोत– *प्राथमिक समंक*

तालिका क्रमांक 01 से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से 18–28 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 8 है जिसका प्रतिशत 8 है, 28–38 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 50 है जिसका प्रतिशत 50 है, 38–48 आयु वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 29 है जिसका प्रतिशत 29 है, 48 से अधिक आयु वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 13 है जिसका प्रतिशत 13 है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि 28–38 आयु वर्ग की सबसे ज्यादा महिलाएं समूह से जुड़ी हुई है जबकि सबसे कम 18–28 आयु वर्ग की महिलाएं जुड़ी हुई है।

तालिका क्रमांक 02

उत्तरदाताओं की वर्ग का विवरण

क्र.	वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	6	6
2.	अन्य पिछड़ा वर्ग	58	58
3.	अनुसूचित जाति	26	26
4.	अनुसूचित जनजाति	10	10
	कुल	**100**	**100**

स्त्रोत– *प्राथमिक समंक*

तालिका क्रमांक 02 से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से सामान्य वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 6 है जिसका प्रतिशत 6 है, अन्य पिछड़ा वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 58 है जिसका प्रतिशत 58 है, अनुसूचित जाति वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 26 है जिसका प्रतिशत 26 है, अनुसूचित जनजाति वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या 10 है जिसका प्रतिशत 10 है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि अन्य पिछड़ा वर्ग की सबसे ज्यादा महिलाएं समूह से जुड़ी हुई है जबकि सबसे कम अनुसूचित जनजाति वर्ग की महिलाएं जुड़ी हुई है।

तालिका क्रमांक 03

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति का विवरण

क्र.	वैवाहिक स्थिति	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	विवाहित	89	89
2.	अविवाहित	5	5
3.	विधवा	6	6
	कुल	**100**	**100**

स्त्रोत– *प्राथमिक समंक*

तालिका क्रमांक 03 से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से वैवाहिक स्थिति के आधार पर विवाहित उत्तरदाताओं की संख्या 89 है जिसका प्रतिशत 89 है, अविवाहित उत्तरदाताओं की संख्या 5 है जिसका प्रतिशत 5 है, विधवा उत्तरदाताओं की संख्या 6 है जिसका प्रतिशत 6 है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि वैवाहिक स्थिति के आधार पर सबसे ज्यादा विवाहित महिलाएं समूह से जुड़ी हुई है।

तालिका क्रमांक 04

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक अर्हता का विवरण

क्र.	शैक्षणिक अर्हता	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	प्राथमिक	7	7
2.	माध्यमिक	25	25
3.	हाई स्कूल	22	22
4.	हायर सेकेण्डरी	30	30
5.	स्नातक	8	8
6.	स्नातकोत्तर	8	8
	कुल	**100**	**100**

स्त्रोत– प्राथमिक समंक

तालिका क्रमांक 04 से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से शैक्षणिक अर्हता के आधार पर प्राथमिक शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या 7 है जिसका प्रतिशत 7 है, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या 25 है जिसका प्रतिशत 25 है, हाई स्कूल शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं

की संख्या 22 है जिसका प्रतिशत 22 है, हायर सेकेण्डरी शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या 30 है जिसका प्रतिशत 30 है, स्नातक शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या 8 है जिसका प्रतिशत 8 है, स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या 8 है जिसका प्रतिशत 8 है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है शैक्षणिक अर्हता के आधार पर सबसे ज्यादा हायर सेकेण्डरी तक शिक्षित महिलाएं समूह में शामिल है जबकि सबसे कम संख्या प्रथामिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं की है।

तालिका क्रमांक 05

स्व–सहायता समूह द्वारा संपादित आर्थिक गतिविधियों का विवरण

क्र.	विवरण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	मध्यान्ह भोजन	21	21
2.	रेडी–टू–ईट	10	10
3.	उचित मूल्य दुकान	1	1
4.	कृषि	42	42
5.	पशुपालन	1	1
6.	मत्स्य पालन	3	3
7.	कुटीर उद्योग	11	11
8.	लघु उद्योग	10	10
9.	हथकरघा उद्योग	1	1
	कुल	**100**	**100**

स्त्रोत– *प्राथमिक समंक*

तालिका क्रमांक 05 से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से स्व–सहायता समूह द्वारा संपादित आर्थिक गतिविधियों में मध्यान्ह भोजन में कार्यरत उत्तरदाताओं की संख्या 21 है जिसका प्रतिशत 21 है, रेडी–टू–ईट में कार्यरत उत्तरदाताओं की संख्या 10 है जिसका प्रतिशत 10 है, उचित मूल्य दुकान संचालित करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 1 है जिसका प्रतिशत 1 है, कृषि करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 42 है जिसका प्रतिशत 42 है, पशुपालन करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 1 है जिसका प्रतिशत 1 है, मत्स्यपालन करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 3 है जिसका प्रतिशत 3 है, कुटीर उद्योग वाले उत्तरदाताओं की संख्या 11 है जिसका प्रतिशत 11 है, लघु उद्योग वाले उत्तरदाताओं की संख्या 10 है जिसका प्रतिशत 10 है, हथकरघा उद्योग वाले उत्तरदाताओं की संख्या 1 है जिसका प्रतिशत 1 है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है स्व–सहायता समूह द्वारा संपादित आर्थिक गतिविधियों में सबसे ज्यादा महिलाएं कृषि का कार्य करती है।

2 परिकल्पना का परीक्षण

शून्य परिकल्पना (H0) :– महिला स्व–सहायता समूह से जुड़ने के बाद ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ है।

वैकल्पिक परिकल्पना (H1) :– महिला स्व–सहायता समूह से जुड़ने के बाद ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

तालिका क्रमांक 06

महिलाओं की आर्थिक स्थिति का विवरण

क्र.	विवरण	समूह सदस्य बनने के पूर्व की आर्थिक स्थिति		समूह सदस्य बनने के पश्चात् की आर्थिक स्थिति	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	बहुत खराब	5	5	0	0
2.	खराब	54	54	0	0
3.	सामान्य	31	31	30	30
4.	अच्छी	10	10	55	55
5.	बहुत अच्छी	0	0	15	15
	योग	**100**	**100**	**100**	**100**

स्त्रोत– *प्राथमिक समंक*

तालिका क्रमांक 06 में महिला स्व–सहायता समूह के ग्रामीण महिलाओं की समूह से जुड़ने के पूर्व व पश्चात् की आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर तुलना की गई है। इससे स्पष्ट है कि समूह से जुड़ने के पूर्व इन 100 महिलाओं में से बहुत खराब आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 5 है जिनका प्रतिशत 5 है, खराब आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 54 है जिनका प्रतिशत 54 है, सामान्य आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 31 है जिनका प्रतिशत 31 है, अच्छी आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 10 है जिनका प्रतिशत 10 है एवं एक भी महिला बहुत अच्छी आर्थिक स्थिति में नहीं थी।

जब महिलाओं की आर्थिक स्थिति की तुलना की गई तब पाया गया कि समूह से जुड़ने के पश्चात् महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। वर्तमान में बहुत खराब एवं खराब आर्थिक स्थिति में एक भी महिलाएं नहीं है, सामान्य आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 30 है जिसका प्रतिशत 30 है, अच्छी आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 55 है जिसका प्रतिशत 55 है, बहुत अच्छी आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं की संख्या 15 है जिसका प्रतिशत 15 है।

निष्कर्ष :

इस शोध पत्र से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में महिला स्व–सहायता समूह का विशेष योगदान है। इस अध्ययन से पता चलता है कि महिला स्व–सहायता समूह से सबसे ज्यादा 28–38 आयु वर्ग की महिलाएं जुड़ी हुई, जिसमें से ज्यादातर महिलाएं अन्य पिछड़ा वर्ग की है, स्व–सहायता समूह की ज्यादातर महिलाएं विवाहित है एवं सबसे ज्यादा हायर सेकेण्डरी तक शिक्षित महिलाएं इसमें शामिल है। स्व–सहायता समूह की ज्यादातर महिलाएं आर्थिक गतिविधि के रूप में कृषि का कार्य करती है। जिसमें सब्जी उत्पादन, फूल की खेती, गैर–कीटनाशक एवं जैविक खाद का निर्माण एवं विक्रय प्रमुख है।

इस अध्ययन में शोध परिकल्पना के आधार पर महिलाओं की आर्थिक स्थिति की तुलना की गई। जिससे यह ज्ञात हुआ है कि महिला स्व–सहायता समूह से जुड़ने के बाद महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। जिसका प्रमुख श्रेय महिला स्वसहायता समूह को जाता है क्योंकि समूह से जुड़ने के पश्चात् महिलाओं को रोजगार प्राप्त हुआ, जिससे वे आर्थिकोपार्जन करते हुए अपने जीवन स्तर में सुधार कर पाई।

❐

सन्दर्भ –

1. *Pandey, J., & Roberts, R. (2012). A STUDY ON EMPOWERMENT OF RURAL WOMEN THROUGH SELE HELP GROUPS. NATIONAL MONTHLY REFEREED JOURNAL OF REASEARCH IN COMMERCE & MANAGEMENT , 1 (8), 1-10. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/259868179_A_study_o_empowerment_of_rural_women_through_self_help_groups*
2. *Ahmed, B., & Basha, S. N. (2014). ROLE OF SELF HELP GROUPS IN WOMEN EMPOWER MENT. International Journal of Research in Management & Social Science , 2 (3 (III)), 40-45. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/342899465_Role_of_Self_Help_Groups_in_Women_Empowerment*
3. *साहू राजा (2016). ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक–सामाजिक विकास में महिला स्वयं सहायता समूह का योगदान : मधुबनी जिला के संदर्भ में. International Journal of Multidisciplinary education and Re search , 1 (6), 17-20. Retrieved from https://www.multidisciplinaryjournals.in/assets/archives/2016/vol1issue6/1-8-25-348.pdf*
4. *Saikia, P. (2016). Self-Help Group of Rural Assam and Its Role in Women Empowerment. IRA-International Journal of Management & Social Sciences , 05 (01), 187-193.https://dx.doi.org/10.21013/jmss.v5.n1.p18*
5. *B, N., & G, A. (2018). Role of Self Help Groups in Rural Development-A Study. International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD) , 2 (4), 1454-1459. Retrieved fromhttps://www.researchgate.net/publication/339426835_Role_of_Self_Help_Groups_in_Rural_Development-A_Study*
6. *Joshi, U., & Pandey, K. (2019). Lo;a lgk;rk lewg vkSj efgyk l'kfDrdj.k. Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education , 16 (9), 1418-1424. Retrieved from https://ignited.in/index.php/jasrae/article/download/12411/24625/61527*
7. *श्रीवास्तव सुनीता (2020). ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने का माध्यम स्वयं सहायता समूह. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research , 7 (2), 14-20. Retrieved from https://www.jetir.org/papers/JETIRDK06006.pdf*
8. *देवी विमला (2020). ग्रामीण महिलाओं के सशक्त विकास में स्वयं सहायता समूह का योगदान व समूह का राजनीतिक महत्व. INDIAN JOURNAL OF RESEARCH , 9 (11), 40-42. Retrieved from https://www.worldwidejournals.com/paripex/recent_issues_pdf/2020/November/gramin-mahilao-ke-sashakta-vikas-me-swayam-sahayata-samuh-ka-yogdan-v-samuh-ka-rajneetik-mahatva_November_2020_4550633291_7408857.pdf*
9. *दीक्षित अनुपमा (2021). महिला सशक्तिकरण और स्वयं सहायता समूह. Innovation The Research Concept , 6 (5), H- 27-H-31. Retrieved from http://www.socialresearchfoundation.com/upoadreserchpapers/6/438/2107150825271st%20anupama%20dixit%2014381.pdf*
10. *पाण्डेय रवि प्रकाश एवं बंशकार रामजी (2024). भारतीय ग्रामीण विकास में स्व–सहायता समूह का योगदान – आर्थिक अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में). International Journal of Reviews and Research in Social Sciences , 12 (1), 57-66. https://doi.org/10.52711/2454-2687.2024.00011*
11. *https://unacademy.com/content/cbse-class-11/study-material/introduction-to-small-industry/womens-self-help-groups-and-their-importance/*
12. *https://www.nextias.com/blog/self-help-groups-shgs/*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 36–43

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

चम्बा क्षेत्र में नाग परम्परा व संस्कृति : एक अवलोकन

लकेश कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश,
धर्मशाला, जिला काँगड़ा (हि.प्र.)–176213
E-mail: chauhanseri89@gmail.com

डॉ.राजीव कुमार
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश,
धर्मशाला, जिला काँगड़ा (हि.प्र.)–176213
E-mail: rajeev6jnu@gmail.com

सारांश

भारत प्राचीन काल से ही एक विशाल देश रहा है, परन्तु विशालता से अधिक महत्वपूर्ण इस देश की विविधता रही है। यह विविधता हमें सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, राजनीतिक नीतियों तथा आर्थिक संसाधन इत्यादि क्षेत्रों में तो दिखायी पड़ती ही है, पर धार्मिक जीवन में इसका स्वरूप अधिक विकसित और व्यापक रहता है। भारत के हर क्षेत्र में नाग–पूजा का अपना विशिष्ट स्थान रहा है, वहीं हिमाचल के चम्बा क्षेत्र में नाग परम्परा व संस्कृति का अनुठा रूप देखने को मिलता है। नाग परम्परा व संस्कृति का उद्भव भारत या विश्व में सम्भवतः सर्वप्रथम आदिम जनजातियों में हुआ है, तथा कालान्तर में इसका प्रभाव समाज के सभी वर्गों एवं धार्मिक रीति–रिवाजों पर भी पड़ा है। नाग–पूजा का उद्भव सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ सम्भवतः संसार के सभी भागों में हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक व द्वितीय आधार पर चम्बा क्षेत्र में नाग परम्परा व संस्कृति का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द– नागपूजा, परम्परा, संस्कृति, सर्प, चम्बा

प्रस्तावना

हिमाचल प्रदेश 25 अप्रैल 1947 को अस्तित्व में आया। 30 छोटी–बड़ी रियासतों को मिलाकर 25 जनवरी 1971 को इसका गठन करके इसे पूर्ण राज्यत्व प्रदान किया गया और यह देश का 18वाँ राज्य बना तथा इसी समय चम्बा रियासत का भारतीय गणतंत्र के साथ विलय किया गया था। चम्बा को जिले का दर्जा प्रदान किया गया।[1] चम्बा जिला विविधताओं का संगम है। यहाँ का इतिहास, जीवन–पद्धतियाँ, नृत्य, संगीत–शैलियाँ, कला और हस्त कलाएँ, स्मारक और राजमहल, किले, देवालय, खान–पान, पहनावा और बोलियाँ यहाँ की गौरवमयी संस्कृति और विरासत की विहंगम झलक प्रस्तुत करती हैं। यहाँ की अनुपम सुन्दरता बहुत ही मनमोहक है।[2]

हिमाचल में नाग परंपरा बहुत समृद्ध रही है। निचले हिमालय में घरों के बाहर तुलसी के बिरवे के पास नाग प्रतिमाएं स्थापित की जाती हैं। नाग पंचमी को नागों का पूजन एक महत्त्वपूर्ण त्योहार है। ऊपरी हिमाचल विशेषकर कुल्लू के मन्दिरों के द्वारों पर नाग प्रतिमाएं उकेरी जाती हैं। हिमाचल में नागों के स्वतन्त्र मंदिरों के अलावा कुल्लू, चंबा, पांगी, मण्डी, आदि स्थानों पर मन्दिरों के बाहर नाग आकृक्तियां बनी हुई हैं।[3]

नाग परंपरा में यहां अठारह नाग प्रसिद्ध हैं। नाग, किन्नर–किरातों के सजातीय थे। ऋग्वेद में इन्द्र–वृत्र युद्ध में वृत्र को अहिश्या नाग माना गया है। इनका नाम नारायण के साथ लिया जाता है। ये पुशधन के स्वामी भी माने गए हैं। जल स्रोतों पर आधिपत्य होने के कारण इनका पुरातन संघों व आर्यों से संघर्ष होता रहा। नाग उत्पत्ति की पौराणिक कथा की भांति यहां भी कई कथाएं प्रचलित रही हैं।[4]

हिमाचल प्रदेश में नागपूजा का बाहुल्य है। नाग को देवता के रूप में पूजा जाता है। सर्पों में नाग एक जाति भी है जो विषरहित होती है। अत्यंत भोले किस्म के ये नाग हिमाचल में पाए जाते हैं जिन्हें मारना पाप समझा जाता है।[5] इन नागों द्वारा कटोरी में दूध पीने तथा गाय के थनों से दूध चोरी से चट कर जाने की घटनाएं सुनाई जाती हैं। स्त्रियों द्वारा मनुष्यों की जगह नागों की उत्पत्ति के प्रसंग भी पौराणिक आख्यानों की भांति सुनाए जाते हैं। एक स्त्री द्वारा नागों की उत्पत्ति की कथा कुल्लू में प्रसिद्ध है। प्रदेश के निचले क्षेत्रों में नाग एक जाति भी है। नाग जाति ब्राह्मण मानी जाती है और ये लोग आज भी अपने नाम के साथ 'नाग' लगाते हैं। शैव मत के अनुयायी और शंकर के भक्त भी यहां बहुतेरे मिलते हैं।[6] मणिमहेश कैलाश, किन्नर कैलास के अतिरिक्त शिव के अनेकों छोटे–बड़े मंदिर यहां विद्यमान हैं। शिव के गले में शोभायमान नाग का अलग से अस्तित्व भी उतना ही है जितना कि स्वयं शिव का। जहां प्रदेश के निचले क्षेत्र में हर घर के आंगन में नाग की प्रतिमाएं बनी होती हैं, वहां ऊपरी क्षेत्रों में मंदिरों के द्वार के दोनों ओर लकड़ी में नागों को उत्कीर्ण किया जाता है। नाग पंचमी जैसा त्यौहार घर–घर मनाया जाता है तो गुग्गा के स्थानों में सर्पदंश को नाकाम किया जाता है। जन्माष्टमी के दिन गुग्गा के मंदिरों में लोग जादू–टोने के अतिरिक्त सर्पदंश का विष उतारने भी आते हैं। नाग एक ओर तो शिव के गले की शोभा बढ़ाते हैं तो दूसरी ओर शेषनाग विष्णु की शैया बने। शेषनाग ने ही पर्वत, वन, सागर, ग्राम, नगरों सहित समस्त पृथ्वी को धारण किया।[7]

उत्तर–पश्चिम हिमालय के आंचल में अवस्थित प्राकृतिक सौन्दर्य–सम्पन्न चम्बा जिला अपनी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के लिये विश्वविख्यात है। चम्बा की सभी तहसीलों की अपनी विशिष्ट संस्कृति रही है। विविधता से परिपूर्ण चम्बा क्षेत्र के जनजीवन, इतिहास, कला एवं संस्कृति से अभिभूत होकर चम्बा को अचम्भा विशेषण प्रदान करने वाले प्रसिद्ध पुरातत्वविशारद जॉन फिलिप वॉगल थे।[8] जिन्होंन राजा भूरि सिंह के आग्रह पर चम्बा के प्राचीन अभिलेखों को संग्रहीत कर एंटीक्यूटी ऑफ चम्बा स्टेट पार्ट 1 पुस्तक लिखकर चम्बा वासियों के इतिहास को बताया है। चम्बा के विपुल कला–भण्डारों, मन्दिरों, अभिलेखों, लोकशिल्प एवं परम्पराओं को शोधपरक दृष्टि से अवलोकित करके प्रकाश में लाने की दिशा में जनरल अलेक्जेन्डर कनिंघम,

जे. हचीसन, हरमन गोएटज, बहादुर चन्द छाबड़ा, विश्वचन्द्र औहरी, आदि के नाम अग्रगण्य रहे हैं। चम्बा का प्राचीन इतिहास ब्रह्मपुर (भरमौर) से प्रारम्भ होता है। जिला चम्बा के पूर्वी क्षेत्र में भरमौर तहसील है, पश्चिमोत्तर में तहसील पांगी और चम्बा के मध्य में तहसील चुराह और सलूणी हैं।[9] दक्षिण में तहसील भटियात है तथा चम्बा और भटियात के मध्य में तहसील डलहौजी स्थित है। प्रकृति के अनंत सौन्दर्य से अलंकृत चम्बा की धरा में शैव और शाक्त संस्कृति का प्रचलन प्राचीन है परन्तु लोक परम्परा में नाग संस्कृति भी पुरातन ही जान पड़ती है। चम्बा में जगह–जगह पर नाग व नागिन के मंदिर शिखर शैली व पहाड़ी शैली में विद्यमान हैं। परन्तु यहां पर नाग और नागिन की डल झील भी है। जहां पर नाग डल झील है, वहां पर नाग डल झील मेला लगता है और जहां पर नागिन डल झील है वहां नागिन मेले की परम्परा है तो कहीं पर नाग जात्र मेला की परम्परा प्राचीन समय से लेकर आजतक चलती आ रही है।[10]

चम्बा में नाग परम्परा व संस्कृति

चम्बा में अनगिनत नाग मंदिर हैं और कुछ नागनियों के मंदिर भी हैं। इन मंदिरों में मानवरूप के मुहरें हैं, जिनमें साँप लिपटे हुए हैं। या मुकुट के साथ नाग फन हैं। कई मंदिरों में पाषाण या लोहे के साँप बने हुए हैं साथ में त्रिशूल, दीपक, धूपस्थान, गुर्ज, शांगल भी रखे होते हैं। पानी के स्रोत इस नाग के नियंत्रण में समझे जाते हैं। ये नाग–मंदिर किसी वृक्ष के समीप बने होते हैं। मंदिरों के साथ वृक्षों को काटा नहीं जाता। मंदिर प्रायः लकड़ी और पत्थर के बने होते हैं। यह धारणा है कि नागों के अधिक मंदिरों का निर्माण चम्बा के राजा भूषावर्मा के समय हुआ, परन्तु कुछ मंदिर उससे भी पुराने हैं। तीन में से दो मंदिर महल नाग के और एक वैनी में जमुन नाग का बहुत पुराने हैं, जो बरनांटा परगना के राणा के समय निर्मित हुआ था।[11]

चम्बा में नाग के साथ गुग्गा (राणा मुण्डलीक) की मढ़ियां (मंदिर) भी विद्यमान हैं। जहां नाग व नागिनों के मंदिरों में काले पत्थर की मूर्तियां के साथ प्रतिष्ठित की गई है और वहीं गुग्गा मढ़ी में घोड़े पर सवार गूग्गा, मुण्डलीक, गुगड़ी, अजिया पाल, नीली घोडी, कैलू, गोरखनाथ, मच्छिन्द्रनाथ, हनुमान आदि की पत्थर की मूर्तियां घोड़े पर सवार प्रतिष्ठित हैं। लोगों का इन पर अटूट विश्वास, अगाध श्रद्धा व असीम आस्था है। इनकी कृपादृष्टि से इलाके में हर प्रकार की सुख समृद्धि होती है, विशेषकर जब कभी वर्षा की आवश्यकता पड़ती है तो उक्त नाग देवताओं और गूग्गा जी की कृपा और पूजा से अवश्यमेव वर्षा होती है।[12] चम्बा में लोक परम्परा अनुरूप गुग्गा (राणा मुंडलीक) की मढ़ियों में गुग्गा मेला (गूगाहल) का समायोजित मेला लगता है। वहां नाग डल झील मेला वा नागिन डल झील मेला उसी प्रकार होता है कि जिस प्रकार मणिमहेश डल झील स्नान मेला होता है तो कहीं पर नाग व नागिन जात्र मेला की परम्परा है। इस प्रकार चंबा में गुग्गा मेला (गूगाहल) नाग जात्र मेला, नागिन जात्र मेला, नाग पूजा और गुग्गा की पारम्परिक रीति रिवाजों से मन्नत व पूजा की जाती है। चम्बा में गुग्गा व नाग प्रथा के उद्‌गम के बारे में कई किंवदन्तियां पीढी दर पीढ़ी मौखिक रूप में चली आ रही हैं। शौर्य, वीरता तथा चमत्कारों की कई लोक धारणाएं अभी भी मौजूद है। गुग्गा या राणा मुण्डलीक के बारे में लोक विश्वास है कि गुग्गा पूजन की प्रथा राजपूताना के राजपूतों के इस क्षेत्र में आने के

साथ हुई है। इसी लोक धारणा के अनुसार इसे राजस्थान का देवता मानते हैं।[13] इसके अलावा गांव झरोली (डनून) में भी सिद्ध बाबा का मंदिर है जो वास्तव में गुग्गा का ही है। चम्बा में गुग्गा को सतवादी, सत्यवादी और सिद्ध बाबा के नाम से भी जानते हैं। झरोली में भी चौत्र मास को सिद्ध बाबा मेला यानी गुग्गा मेला लगता है। इस गांव में लगभग 80 परिवार है। हर परिवार का एक सदस्य आज भी गुग्गाल में शामिल होता है। मेला पारंपरिक ढंग से मनाया जाता है। राजनगर की भांति यह भी घर–घर डेरा लगाते गांव गांव में घूमते हैं। पुखरी के साथ छन्नी नामक गांव में छन्नी नाग मंदिर घर में ही विद्यमान है। यहां भी जातरू दूर–दूर से आकर अपनी मनौतियां मानते हैं तथा दुःख कष्टों व जादू टोने के निवारण हेतु यहां कई–कई दिन तक ठहरते हैं। इस प्रकार चम्बा में नाग–नागिन व गुग्गा का लोगों के ऊपर प्रभाव है तथा इसके इलावा और भी कई स्थानों पर नाग मंदिर विद्यमान है।[14]

चम्बा का कोई भी गॉव ऐसा खाली नहीं मिलेगा जिधर नाग देवता का अंश ना हो और कोई आख्यान न हो, कहने का तात्पर्य यह है कि चम्बा क्षेत्र के हर घर, हर स्थान पर नाग देवता का मंदिर या मूर्ति मिल जाएगी। यह चम्बा में नाग संस्कृति व परम्परा का गुणगान करवाती हैं। वर्तमान चम्बा क्षेत्र में पांच तहसीलें पड़ती हैं। जिसमे भरमौर,तिस्सा, डलहौजी, भटियात और चम्बा क्षेत्र में नाग का गुणगान देखने को मिल सकता हैं।[15]

चम्बा में एक अन्य लोकविश्वास अनुसार कहा जाता है कि शेषनाग के वश की किन्दरू और विन्दरू नामक दो सौकिने थीं। किन्दरू नामक नागिन ने गारडी (झाड़ फूक करने वाला गूर) को जन्म दिया और विन्दरू ने नाग को जन्म दिया। यह नाग चलता हुआ जम्मू में आ बसा और इसके सात नाग पुत्र हुए वे सातों नाग चम्बा में आकर बसे खज्जी नाम खज्जियार में, नाग चुराह में सुण्डल और विणतरू नाग चुआड़ी की धार में आकर बसे छतराहड नाग सिंहुता ने करगेड नाग सिढकुंड तथा मण्डौर नाग सुदली में आकर बसा सुदली के एक आदमी को नाग ने सपने में कहा कि मैं सुदली में पत्थर के रूप में प्रकट हुआ हूं, इस प्रकार सुबह सुदली में जाकर उसने देखा कि सचमुच पत्थर की मूर्ति के रूप में नाग प्रकट हुआ था।[16] यह बात सारी जगह फैली और लोग नाग की पूजा करके अपने मनोकामना को पूरा करने लगे। यह भी कहते है कि सुदली में पानी नहीं था और लोगों ने मण्डौर नाग से प्रार्थना की नाग मण्डौर ने अपने भाई खज्जी (खज्जियार) से बात की और फिर उन दोनों भाइयों ने रातों–रात पानी सुदली पहुंचाया था। लोग आज भी इस बात को सत्य मानते हैं, क्योंकि पानी के साथ चाहू और चीड़ के पत्ते बहते हुए आते हैं। चुआड़ी के आस–पास उक्त प्रकार के वृक्ष नहीं हैं, ये खज्जियार में ही है।[17]

एक और किवदंती के आनुसार चम्बा के एक राजा को भी नाग मण्डौर ने सपने में कहा था कि मेरा मन्दिर बनाया जाए। राजा ने दिल्ली से एक मूर्ति बनवाकर कहारों द्वारा पालकी में लाकर चुआड़ी के कुठेढ़ गांव में मंदिर बनवाकर उसकी विधिपूर्वक स्थापना की। आज भी नाग मण्डीर मन्दिर में सात दिन तक जात्र मेला लगता है।[18] लोगों का मानना है कि जब वर्षा नहीं होती तो नाग देवता पर दूध–लस्सी चढाई जाती है मूर्ति के पीछे नाली में जब दूध लस्सी

बहकर पहुंचे तो वर्षा जरूर होती है। इसके अलावा कुछ नाग व नागिन मंदिर ऐसे भी हैं जिनके बारे में लोगों की अलग–अलग धारणा है। उदाहरणार्थ सलूणी में चिनार की छांव तले गुलधन नाग का मंदिर है। सदियों से गुलधन नाग देवता की प्रतिमा चिनार के वृक्ष तले विद्यमान है। लगभग अस्सी वर्ष पूर्व एक साधु ने यहां अपनी धूणी रमाई और स्थानीय लोगों की सहायता से कच्चे मंदिर का निर्माण करवा कर नाग देवता, अन्य देवता काली माता और चहुंमुखी शिव की पिण्डी की अलग गर्भगृह में विधिपूर्वक स्थापना की थी यहाँ जात्र मेला शुरू करने के बारे लोगों का विश्वास है कि आठ दशक पहले जब गेहूं की कटाई के उपरान्त मक्की की बीजाई का समय बीत रहा था और वर्षा नहीं हो रही थी तो कुठेडी गांव के देवीदयाल ने, जो नाग देवता का पुजारी चेला (गुरू) था, देवता से मन्नत की कि वर्षा ठीक हुई तो भेडू की बलि देकर जात्र देंगे। परिणामस्वरूप वर्षा ठीक हुई और खेतों में पैदावर भी अच्छी हुई तब से यहां जात्र मेला शुरू हुआ जहां ज्येष्ठ के पहले और दूसरे प्रविष्टे को पारम्परिक वेशभूषा मे चुराही नृत्य भी किया जाता है।

इसी प्रकार जैश्री गांव के मध्य में पीपल के पेड़ की छाव तले नागनी का मंदिर है। लोगो का कहना है कि इस प्रतिमा को चम्बा का कोई राजा जम्मू–कश्मीर से चम्बा के लिए लाया था। पधरी जोत से होते हुए भंदलू–किहार से होकर जब जैश्री गांव में पहुंच कर विश्राम हेतु बैठे और राजा अपने सिपाहियों के साथ चम्बा मुख्यालय को प्रस्थान करने लगे तो माता की पालकी इतनी भारी हो गई कि खूब प्रयत्न करने पर भी उठाई नहीं गई। तब जैश्री के एक वृद्ध व्यक्ति ने राजा को समझाया कि नागनी माता चम्बा नहीं जाना चाहती है।[19] राजा को यहीं कच्चा मंदिर बनवाना पड़ा। यहां जैश्री नागनी माता के नाम पर आज भी मंदिर विद्यमान है। चम्बा में शैव और शाक्त संस्कृति का प्रचलन ती प्राचीन है परन्तु नाग संस्कृति व परम्परा का उदगम चम्बा के हर क्षेत्र से जुडा हैं। इसके अतिरिक्त नागों को चुराह घाटी परगना हिमगिरी से भी जोड़ा जाता हैं। किंवदन्ती है कि अंजनी नामक एक नागिन पाताल लोक से हिमगिरा धार क प्रकट हुई। जहां पर यह नागिन प्रकट हुई, उस स्थान पर एक मैदानी खेत था। कहते हैं कि सात कृषक सात जोड़ी बैलों से उस खेत की जुताई कर रहे थे तथा कुछ महिलाएं हाथों में कुदाल लिए जुताई से निकलने वाले मिट्टी के ढेलों को तोड़ रहीं थी। अकस्मात, वह पूरा खेत धरती में धंस गया और वह मैदान, एक विशाल झील में परिवर्तित हो गया। झील में से एक मन्दिर भी प्रकट हुआ जिसमें एक काले पत्थर की प्रतिमा सुशोभित थी।[20] वह चमत्कार था "अन्जनी नागिन" का, जो कि ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपने मन्दिर सहित पाताल लोक से अपनी (डल) झील बनाकर प्रकट हुई। उस स्थान को अन्जनी–तिर्थ कहते हैं। इन सभी मंदिरों का उल्लेख आगे भी हुआ हैं। हिमगिरी कोठी के उत्तर–पश्चिम में लगभग दस किलोमीटर की दूरी पर कोई 11000 फुट की ऊंचाई पर यह स्थान विद्यमान है, जोकि मैहल–नाग के लिए आकर्षक और दर्शनीय स्थल है। यह भी कहा जाता है कि हिमगिरी में अन्जनी ने चार नागों को जन्म दिया। सबसे बड़ा नाग वासुकी नाग, दूसरा और तीसरा खज्जी–नाग तथा चौथा जुम्हार–नाग था। आजतक भी इनकी गाथा को गायन के पारम्परिक कलाकार नागलीला की यह गाथा

गाकर सुनाते हैं। इन नागों का जन्म माघ महीने में हुआ। अन्जनी माता अपने नन्हें बालकों को सुलाने के लिए लोरी सुनाने लगी जिसे स्थानीय बोली में होलणी कहते हैं। परन्तु चारों बालक मां की लोरी को अनसुना करके जिद करने लगे कि वह उन्हें पहले जामुन नामक फल खिलाएं। यह वनफल लगभग दस हजार फुट की ऊंचाई पर अगस्त–सितम्बर के मांस में मिलते है। परन्तु माघ के महीने में जामुन–फल मिलना मुश्किल था। जब चारों बालकों ने, मां को विवश कर दिया तो कहते हैं, कि वह पुनः पाताल लोक में गई और अपने पिता तक्षक नाग से अपने बालकों के लिए जामुन फल मांग कर लाई। सायन विधा के कलाकार बताते हैं कि बालक जामुन–फल भी खाने लगे और अपनी बाल हठ विजय पर मां को चिढ़ाने भी लगे। इस पर अन्जनी माता को गुस्सा आ गया। अन्जनी ने दो नाग बालकों को उठाकर उत्तर की ओर फेंका और दो को दक्षिण की ओर फेंका। बड़ा नाग बालक वासुकी, भद्रवाह (जम्मू–कश्मीर) में पड़ा और वहीं पर स्थापित हो गया। दूसरा मैहल–नाग, चम्बा और भद्रवाह की सीमा पर स्थित, मैहलवार–धार पर पड़ा और वहीं पर स्थापित हो गया। मैहल नाग का वहां बहुत बड़ा डल हैं। उनसे छोटे दो नाग खज्जी और जुम्हार जो दक्षिण में फेंकें थे, खज्जियार– नाग और जुम्हार–नाग के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।[21]

खज्जियार नाग की भी डल झील है। एक जनश्रुति के अनुसार, किसी बात पर वासुकी नाग और मैहल–नाग की आपस में अनबन हो गई। वासुकी नाग परगना जून्ड के सरार नामक गांव में एक मैदान प्रकट हुआ। सरार के नाग मन्दिर में एक काले पत्थर की मानव कद की वासुकी–नाग की मूर्ति है तथा रैवन्यू रिकार्ड के अनुसार 12 बीघा जमीन की परिधि में नाग का डल है। परन्तु इस झील का काफी भाग मिटटी और घास से ढक गया है।[22] वहां के लोगों का कहना है कि इस मैदान को कहीं से भी दो–तीन फुट तक खोंदे तो पानी की फुहारें फूटने लगती हैं। यदि बन्दोबस्त के समय इस झील की परिधि 12 बीघा तक थी तो यदि इस ग्राउंड की खुदाई और सफाई करवाई जाए तो वहां भी बहुत विशाल डल झील निकल सकती है। सरार की झील के आस–पास का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त ही मनमोहक है। इसी प्रकार, पूर्व में स्थित हिमगिरी में अन्जनी–नागिन की डल झील है तथा पश्चिम में वासुकी की डल झील है। दक्षिण में खज्जी–नाग की खज्जियार डल झील है उत्तर में मैहलवार धार पर मैहल–नाग की डल झील है। यह सभी स्थान अन्जनी डल झील से दिखाई देते हैं। इससे इस विश्वास की प्रमाणिकता की पुष्टि होती है कि शैव और शाक्त संस्कृति के साथ, अन्जनी नागिन, के उदगम से, चम्बा में नाग संस्कृति भी प्रचिलत हुई। चम्बा में प्रत्येक स्थान पर नाग थल है लेकिन प्रसिद्ध कुछ मंदिर हैं। चम्बा में नाग परम्परा व संस्कृति का पता इस बात से लगया जाता हैं।[23]

चम्बा में शिव–शक्तियों मन्दिरों के अतिरिक्त कई स्थानों पर नाग मन्दिर हैं, जो कि लोक–गाथाओं के अनुसार, इन चारों नागों के वंशज हैं। खज्जी–नाग और जुम्हार–नाग के वंशज नाग, भटियात में नाग मुण्डौर और नाग भिन्तुरू भी हैं। वासुकी नाग और मैहल–नाग के प्रसिद्ध वंशज नाग भंजराडू में भुजगर–नाग, घुलेई बैरा में चलियसर–नाग, बाड़ा–धार जुंगरा पंचायत में गोय्या–नाग, चरड़ा चांजू में हिम–नाग, मुण्डोलू–नाग, सलूणी–नाग, देवगाह–नाग,

भलेई परगना में सुधार–नाग हैं। इन नागों के पहाड़ी शैली के मन्दिर हैं और कई स्थानों पर इन नागों की पूजा व जातरें होती हैं। इसके अतिरिक्त, अप्पर चुराह और भद्रवाह में कई स्थानों में मैहल–नाग के मन्दिर हैं। परगना में नाग यात्रा निकाली जाती है जिसे नागवाली कहते हैं। लोअर चुराह के तेलका गांव में भी मैहल–नाग का मन्दिर है, यह मन्दिर भी पहाड़ी शैली का है। परन्तु मन्दिर में जो मूर्ति स्थापित की गई है, वह काफी डरावनी है। यह आदम–कद की प्रतिमा भी काले पत्थर की बनी हुई है। ऐसे कई मंदिर है जो अभी भी अपनी संस्कृति व परम्परा को सिंजोय हुए हैं।[24]

निष्कर्ष

नाग–पूजा के उद्भव के सम्भवतः दो कारण माने जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि प्राचीन काल से ही प्राकृतिक प्रकोपों से मुक्ति हेतु विभिन देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना का समाज में प्रचलन रहा है तथा कुछ जीवों की पूजा के मूल में भय भी एक कारण माना जा सकता है। चूंकि नाग विषधर प्रजाति के जीव हैं, तथा ये मानव आवास के आस–पास अत्यधिक संख्या में पाये जाते हैं इसलिए समय के साथ इनकी पूजा–अर्चना की जाने लगी होगी। आज भी विश्व की अनेक आदिम जनजातियों में सामान्यतः भय निवारणार्थ पूजा–पाठ प्रचलित है, अतः भारत एवं विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में नाग–पूजा के मूल में भय एक प्रमुख कारण रहा है। चम्बा में भी नाग परम्परा का कारण भय तो हो सकता है लेकिन इसके अतिरिक्त नाग–पूजा के मूल में दूसरा प्रमुख कारण शक्तिशाली जीवों को देवत्व प्रदान किया जाना भी माना जा सकता है। हिमाचल प्रदेश में हमें जितने भी नाग मंदिर या थल मिलते हैं उनको देखकर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि इधर बासुकी नाग का एक समय राज रहा होगा। हिमाचल के कुछ मंदिरों को अगर अनदेखा भी किया जाये तब भी बाकी नाग मंदिर का संबंध शिव के साथ ही जोड़ा गया है। अपवाद स्परूप चम्बा और काँगड़ा के कुछ मंदिर हो सकते हैं जिनको कृष्ण या विष्णु से जोड़ा गया होगा बाकि सब थल शिव के साथ जुड़े लगते हैं। चम्बा के कुछ मंदिर की उत्पति का पता करें तो उनका अस्तित्व जम्मू के नागों से मिलता है। जम्मू को वासुकी नाग का क्षेत्र माना गया है। इस संदर्भ से यह कहा जा सकता है कि चम्बा क्षेत्र भी वासुकी का ही क्षेत्र रहा है।

❐

सन्दर्भ –

1. *शास्त्री, ओम प्रकाश, (2022), चम्बा जनपद के संस्कृतमुल्क ऐतिहासिक अभिलेख : एक अध्ययन, पृ. 24*
2. *जसवाल, बी.आर., (2010), हिमाचल प्रदेश में गुग्गा परम्परा, पृ. 11*
3. *वही, पृ. 12*
4. *सांकृत्यान, राहुल, (1953) हिमालय परिचय 1, पृ. 50*
5. *हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर, भाग–1, (2024), सम्पादक, ठाकुर, बरुराम, कर्म सिंह. पृ. 67*
6. *आहलूवालिया, एम. एस., (1998), हिमाचल प्रदेश का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ. 66*
7. *वैद्य ,किशोरीलाल, (1969), पहाड़ी चित्रा, नेशनल पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली, पृ.123*
8. *रन्धावा, महिन्द्रसिंह, (1970), काँगड़ा (कला,देश और गीत), साहित्य अकादमी नई दिल्ली, पृ. 66*
9. *उपाध्याय, वासुदेव, (1972), प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मंदिर, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी पटना, पृ. 75*
10. *भीम सिंह, आयु, 81, गाँव सेरी, चम्बा, 22 मार्च. 2023.*

11. वर्मा, सांवलिया बिहारी लाल, (1975), भारत में प्रतीक–पूजा का आरम्भ और विकास, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी पटना, पृ. 165
12. हरनोट, एस. आर, (1991), हिमाचल के मंदिर और उनसे जुड़ी लोक–कथाएं, पृ.15
13. सिंह, मियां गोबर्धन, (2020), हिमाचल प्रदेश का इतिहास, पृ. 33
14. कपूर, बीव एलव, (1976), हिमाचल इतिहास और परम्परा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 113
15. लाल, मोहन, (2007), गद्दियार क्षेत्र का इतिहास, पांगी–भरमौर, जीवन और संस्कृति, सम्पादक–तुलसी रमण, पृ. 20–21.
16. घिन्दर सिंह शर्मा, आयु, 66 , गाँव सरार, लिग्गा सलूणी चम्बा–176320, 22 जुलाई, 2023.
17. पाण्ड्य,एलव पीव, (1981), प्राचीन हिमाचल इतिहास, धर्म एवं संस्कृति, इंडियन क्लासिक्स, राम नगर नई दिल्ली–110055, पृ. 66
18. हंडा, ओमचंद, 1988), पश्चिमी हिमालय की लोक कलाएं, इंडस पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 87
19. रणपतिया, अमर सिंह, (1988), हिमाचली इतिहास और संस्कृति के अंश, संन्मार्ग प्रकाशन, 16–यूव बीव बेंग्लो रोड, दिल्ली–11007, पृ. 156
20. पवन शास्त्री, आयु, 42, गाँव बलवास, सलूणी चम्बा, जुलाई, 2023.
21. लोक जीवन और परम्परा (लोकसाहित्य तथा जनजातियाँ संस्कृति से सम्बन्धित लेख) (1987), सम्पादक मण्डल, शर्मा, बंशीराम, मौलूराम ठाकुर, सरोज संख्यान, हिमाचल कला संस्कृति और भाषा आकादमी शिमला.
22. सरोलवी, चंचल, (2010), चम्बा में नाग परम्परा एवं गुग्गा परम्परा,(हिमाचल प्रदेश में गुग्गा परम्परा), ऐडीटड बुक, पृ. 231
23. आंगिरस, अमर देव, (2021), हिमाचली धर्म एवं संस्कृति के विविध आयाम, पृ. 84
24. देवल, डी.एस., चुरहा घाटी के ऐतिहासिक मंदिर, सोमसी, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी की त्रेमासिक पत्रिका, दिसम्बर 2008, अंक 129–130, पृ. 16

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 44–55

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक दलों का वित्तपोषण

शिखा ओझा
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.) –226025
E-mail: shikha0210ojha@gmail.com

प्रो. रिपु सूदन सिंह
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.) –226025
E-mail: ripusudans@gmail.com

सारांश

राजनीतिक दलों का वित्तपोषण लोकतांत्रिक शासन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है क्योंकि यह राजनीतिक परिदृश्य और चुनाव प्रणाली के काम करने के तरीके को प्रभावित करता है। राजनीतिक समर्थन की अभिव्यक्ति के साथ–साथ चुनावों में प्रतिस्पर्द्धा को भी सक्षम बनाता है। वित्तीय सहायता के कई स्रोत शामिल है जिनका उपयोग राजनीतिक दल चुनावी अभियान करने, जन संपर्क स्थापित करने, अपनी नीतियों को जन–जन तक संप्रेषित करने हेतु करते है। जिसमें निजी स्रोतों (व्यक्ति, संस्था, कम्पनी) के साथ–साथ सार्वजनिक स्रोत भी शामिल होते है। विश्व के विभिन्न देशों में राजनीतिक दलों के वित्तपोषण का स्रोत (निजी, सार्वजनिक, मिश्रित) पृथक–पृथक है। इन योगदानों को नियंत्रित करने वाली प्रक्रियाएं और कानून राष्ट्रों के बीच बहुत भिन्न है, जो अलग–अलग राजनीतिक संस्कृतियों और कानूनी प्रणालियों को दर्शाते है। भारत में राजनीतिक दलों के वित्तपोषण का स्रोत निजी है। 2018 तक भारत में राजनीतिक दलों का वित्तपोषण व्यक्ति, संस्था, कंपनी और इलेक्टोरल ट्रस्ट के माध्यम से होता था। 2 जनवरी 2018 को इलेक्टोरल बॉन्ड भारत के चुनावी प्रणाली में पारदर्शिता लाने, कैशलेश सिस्टम को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लाया गया था, परिणामस्वरूप यह अपने उद्देश्य में विफल रहा। 15 फरवरी 2024 को एक ऐतिहासिक सर्वसम्मत फैसले में चुनावी बॉन्ड योजना को असंवैधानिक घोषित किया गया, जो राजनीतिक दानदाताओं को पूर्ण गुमनामी, संविधान के अनुच्छेद 19(1) के तहत राजनीतिक वित्तपोषण के बारे में सूचना के मतदाताओं के अधिकार का उल्लंघन, चुनावी प्रक्रिया में कॉर्पोरेट्स के अनियंत्रित प्रभाव को अधिकृत किया है। इलेक्टोरल बॉन्ड के रद्द होने के बाद राजनीतिक दलों के चुनावी वित्तपोषण में निम्न उपायों, राजनीतिक दलों के खातों की लेखा परीक्षा, राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्रीकरण, चुनावी राज्य वित्तपोषण, राष्ट्रीय चुनावी कोष की स्थापना, योगदान

की निश्चित सीमा, सख्त नियम–विनियम के माध्यम से निष्पक्ष, पारदर्शी चुनावी प्रणाली को बल मिलेगा, एक मजबूत लोकतन्त्र स्थापित होगा। प्रस्तुत शोध पत्र राजनीतिक दलों का वित्तपोषण : भारतीय लोकतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में विद्दमान भारतीय राजनीतिक वित्त व्यवस्था का गहन विश्लेषण कर पारदर्शी वित्तपोषण प्रणाली स्थापित करने हेतु महत्त्वपूर्ण सुझाव के साथ लोकतन्त्र की मजबूती पर बल देना है।

मुख्य शब्द– राजनीतिक दल, लोकतंत्र, वित्तपोषण, इलेक्टोरल बॉन्ड, पारदर्शिता

प्रस्तावना

किसी भी लोकतंत्र में चुनाव का वहीं स्थान है, जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए वित्तीय बाजार का होता है। चुनाव, राजनीतिक शक्ति को गतिशीलता प्रदान करने और राजनीतिक दलों के जरिए लोगों को सरकार तक ले जानें का माध्यम है, जो वित्तीय बाजार में वित्तीय प्रबंधन कंपनियों की तरह काम करते है, जो बाजार की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाते है और स्थिरता सुनिश्चित करते है। भारत में चुनावों और राजनीतिक दलों को नियंत्रित करने के लिए एक सर्वव्यापी कानून की कमी है और इस विधायी अंतर को भरे जाने की जरूरत है, विश्वभर में राजनीतिक दलों को निर्वाचकों तक पहुंचने, अपनी नीतियों की व्याख्या करने और लोगों से जानकारी प्राप्त करने के लिए धन की आवश्यकता होती हैं। और इस धन तक पहुंचने के लिए राजनीतिक दल राजनीतिक वित्तपोषण का सहारा लेते है। राजनीतिक दल के वित्तपोषण का स्रोत व्यक्ति, संस्था, कंपनी, कॉरपोरेट द्वारा भारी मात्रा में चंदा देते है।

राजनीतिक दलों का वित्तपोषण : भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में

राजनीतिक वित्तपोषण ऐसी पद्धति है जिसका प्रयोग राजनीतिक दल अपने चुनाव अभियानों और सामान्य गतिविधियों के संचालन हेतु कोष जुटाने के लिए करता है। किसी भी राजनीतिक दल को स्वयं को तथा अपने उद्देश्यों को स्थापित करने और वोट प्राप्त करने, अपने इच्छित कार्यों को करने और अपने इच्छित कार्यों को कार्य रूप देने के लिए धन की आवश्यकता होती है।[1]

राजनीतिक दलों को चुनावों में भाग लेने प्रचार आदि कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति कॉरपोरेट एवं व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले चंदे से होती है। भारत में राजनीतिक दलों के कॉरपोरेट फंडिंग का इतिहास स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। बिड़ला आईएनसी (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) के प्रमुख दानदाताओं में से एक थे। स्वतंत्रता के बाद यह स्पष्ट है कि कांग्रेस सरकार की आर्थिक नीति को आकार देने में समग्र रुप से व्यापारी वर्ग का कुछ लाभ था। 1960 के दशक में कांग्रेस और स्वतन्त्र पार्टी टाटा और बिड़ला जैसी बड़ी व्यावसायिक कंपनियों से दान के मुख्य लाभार्थी थे जो 1962 और 1968 के बीच कुल कंपनी योगदान का लगभग 34 प्रतिशत हिस्सा थे। 1969, इंदिरा गांधी सरकार ने राजनीति और व्यवसायों के बीच सांठगांठ को तोड़ने के लिए कॉरपोरेट फंडिंग (कंपनी अधिनियम की धारा 29 को हटाकर) कॉरपोरेट फंडिंग पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया।[2]

कम्पनी अधिनियम, 1956 में कंपनियों या व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक दलों को दिए जाने वाले चंदे के सम्बंध में कोई प्रावधान नहीं था।[3] 1960 के संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 293ए को

शामिल किया गया, जिसके तहत कंपनियों द्वारा प्रति वित्तीय वर्ष राजनीतिक अंशदान को पच्चीस हजार रूपए या विगत 3 वर्षों के उनके शुद्ध लाभ के 5 प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया। 1969 के संशोधन अधिनियम ने धारा 293ए के प्रावधानों में संशोधन किया तथा पुनः राजनीतिक दलों या राजनीतिक उद्देश्यों के लिए दान पर प्रतिबंध लगा दिया। 1985 के संशोधन अधिनियम ने कंपनियों को राजनीतिक दलों या राजनीतिक उद्देश्यों के लिए चंदा देने की अनुमति दी, जिसमें विज्ञापनों या प्रकाशनों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष व्यय शामिल है। हालाकि प्रतिबंध जैसे कि कम्पनी (जो सरकारी कम्पनी नहीं है) तीन वर्ष से ज्यादा समय से आस्तित्व में होनी चाहिए, उल्लंघन के लिए दंड को और भी कड़ा कर दिया गया। कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 182 में राजनीतिक दलों को दिए जाने वाले योगदान की सीमा को पिछले तीन वित्तीय वर्षों के औसत शुद्ध लाभ के 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 7.5 प्रतिशत करने का प्रावधान करके इसमें और संशोधन किए गए। इस संशोधन के तहत कंपनियों को अपने वार्षिक वित्तीय विवरणों में अपने राजनीतिक योगदान का खुलासा करना आवश्यक था। इसने उल्लंघन के लिए सख्त परिणामों का प्रावधान किया और जुर्माने को योगदान के पांच गुना तक बढ़ा दिया।[4]

अनियमित और अनियंत्रित योगदान

कम्पनी अधिनियम, 2013 की असंशोधित धारा 182 में राजनीतिक योगदान के सम्बंध में निषेध और प्रतिबंध का प्रावधान है, जिसमें शामिल है 7.5 प्रतिशत की सीमा औसत का मूल्य लाभ पिछले तीन वित्तीय वर्षों में कारपोरेट के अत्याधिक प्रभाव को रोकना इसका उद्देश्य है, साथ ही यह सुनिश्चित करना है कि राजनीतिक फंडिग पारदर्शी और जवाबदेह बनी रहे।[5]

इलेक्टोरल बॉन्ड योजना को लाने के दौरान, वित्त अधिनियम 2017, की धारा 154 ने कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 182 में संशोधन किया और 7.5 प्रतिशत फंडिग सीमा को हटा दिया और शुद्ध लाभ से इसके लिए आवश्यकता को समाप्त कर दिया। संशोधन ने ऐसे राजनीतिक योगदानों से संबंधित विवरणों का खुलासा करने की आवश्यकता को भी समाप्त कर दिया। 7.5 प्रतिशत की सीमा हटाने से अनियमित और अनियंत्रित योगदान हुआ। पहले भागीदारी केवल लाभ कमाने वाली कंपनियों तक ही सीमित थी। हालाकि बिना किसी सीमा के लागू होने से शेल कॉर्पोरेशन के लिए पर्याप्त योगदान करना सम्भव हो गया, जिससे लेन देन (क्विड प्रो को) के लिए और अधिक रास्ते खुल गए।

2017 के संशोधन के साथ, कॉरपोरेट संस्थाओं के लिए राजनीतिक योगदान के प्रति विधायी दृष्टिकोण में पूर्ण बदलाव आया, जो अधिक उदार और कम प्रकटीकरण वाला था।[6]

यह फंडिंग संवैधानिक सिद्धांतों से गहराई से जुड़ी हुई है , जिसमें लोकतांत्रिक शासन के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव शामिल हैं। फंडिंग से यह विनियमित करने में मदद मिलती है कि चुनाव प्रतिस्पर्धी हों और किसी एक पार्टी को दूसरे पर अनुचित लाभ न मिले। संविधान में चुनावों के संचालन के बारे में अलग–अलग प्रावधान हैं, जिनका उल्लेख भाग XV में अनुच्छेद 324 से 329 तक किया गया है। अनुच्छेद 19 में संघ बनाने की स्वतंत्रता का भी उल्लेख है जो राजनीतिक दल बनाने की स्वतंत्रता देता है।

राजनीतिक दलों के वित्तपोषण के बारे में निम्न प्रावधान

वर्ष	कम्पनी अधिनियम–प्रावधान	मुख्य तथ्य
1956	कम्पनी अधिनियम,1956	राजनीतिक योगदान को विनियमित नहीं किया गया।
1960	कम्पनी संशोधन अधिनियम–1960	राजनीतिक योगदान एक वित्तीय वर्ष में 25,000 रूपए या उसके औसत शुद्ध लाभ का 5 प्रतिशत जो भी अधिक हो, तक किया जा सकता है। कंपनियों को लाभ – हानि, अंशदान की गई कुल राशि का विवरण, पार्टी, और व्यक्ति का नाम भी प्रस्तुत करना आवश्यक था।
1969	कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 1969	चंदे पर प्रतिबंध लगाने के लिए धारा 293ए में संशोधन किया
2013	कम्पनी संशोधन अधिनियम 1985	इसने निदेशक मंडल की स्वीकृति के साथ अपने शुद्ध औसत लाभ के 5 प्रतिशत तक राजनीतिक अंशदान की अनुमति दे दी
	नया कम्पनी अधिनियम 2013	इसने निदेशक मंडल की स्वीकृति के साथ अपने औसत शुद्ध लाभ के 7.5: तक राजनीतिक अंशदान की अनुमति दे दी। इसमें लाभ – हानि, अंशदान की गई कुल राशि का विवरण, व्यक्ति का नाम प्रस्तुत करने को अनिवार्य बनाया गया।
2017	वित्त अधिनियम, 2017	कम्पनी अधिनियम में परिवर्तन, 7.5 : की सीमा हटा दी गई, घाटे में चल रही कंपनी भी राजनीतिक योगदान दे सकती है। , चुनावी बॉन्ड की शुरूआत।

Sources - Indian Kanoon, Section 293A in The Companies Act, 1956[7]

भारत सरकार ने इलेक्टोरल बॉन्ड योजना की घोषणा 2017 में की थी। इस योजना को सरकार ने 29 जनवरी 2018 को विधिक रुप से लागू कर दिया गया था। इलेक्टोरल बॉन्ड राजनीतिक दलों को चंदा देने का एक वित्तीय जरिया है, यह एक वचन पत्र की तरह है जिसे भारत का कोई भी नागरिक या कंपनी भारतीय स्टेट बैंक की शाखाओं से खरीद सकता है और अपनी पसंद के किसी भी राजनीतिक दल को गुमनाम तरीके से दान कर सकता है।[8]

नियामक प्राधिकरणों के परस्पर विरोधी विचार

इस योजना को चुनौती देते हुए सुप्रीम कोर्ट में दो याचिकाएं दायर की गई है, पहली याचिका वर्ष 2017 में एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, और गैर लाभकारी संगठन कॉमन

काज द्वारा संयुक्त रूप से दायर की गई थी, दूसरी याचिका वर्ष 2018 में भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने दायर की थी। सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में कहा गया कि इस योजना की वजह से भारतीय और विदेशी कम्पनियों द्वारा असीमित राजनीतिक दान के बाढ़ के द्वार खोल देते है। जिससे बड़े पैमाने पर चुनावी भ्रष्टाचार को वैध बना दिया जाता है।

वर्ष 2019 में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दायर एक हलफनामे में चुनाव आयोग ने कहा था कि इलेक्टोरल बॉन्ड राजनीतिक फंडिग में पारदर्शिता को खत्म कर देंगे, और इनका इस्तेमाल भारतीय राजनीति को प्रभावित करने के लिए विदेशी कारपोरेट शक्तियों को आमंत्रण देने जैसा होगा। और कई प्रमुख कानूनों में किए गए संशोधन की वजह से ऐसी शेल कम्पनियों के खुल जाने की संभावना बढ़ जाएगी, जिन्हें सिर्फ राजनीतिक पार्टियों को चंदा देने के एकमात्र मकसद से बनाया जायेगा।

भारतीय रिजर्व बैंक ने विविध बार चेतावनी दी की कि इलेक्टोरल बांड का इस्तेमाल काले धन का प्रसार, मनी लांड्रिंग और सीमा पार जालसाजी को बढ़ाने के लिए हो सकता है।[9]

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इलेक्टोरल बॉन्ड को असंवैधानिक घोषित किया गया

सर्वोच्च न्यायालय ने 15 फरवरी 2024 को एक ऐतिहासिक सर्वसम्मत फैसले में चुनावी बांड योजना को ''असंवैधानिक और स्पष्ट रूप से मनमाना'' करार देते हुए खारिज कर दिया, जो राजनीतिक दानदाताओं को पूर्ण गुमनामी प्रदान करता है, साथ ही महत्वपूर्ण कानूनी संशोधनों के माध्यम से अमीर निगमों को असीमित राजनीतिक दान करने की अनुमति देता है।

भारत के मुख्य न्यायाधीश डी.वाई. चंद्रचूड़ की अध्यक्षता में पांच न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि केन्द्र सरकार की योजना (इलेक्टोरल बॉन्ड), जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, कंपनी अधिनियम, और आयकर अधिनियम में किए गए पूर्ववर्ती संशोधनों ने संविधान के अनुच्छेद 19(1)(A), के तहत राजनीतिक वित्तपोषण के बारे में सूचना के मतदाताओं के अधिकार का उल्लंघन माना। इसमें कहा गया, चुनावी बॉन्ड के माध्यम से राजनीतिक फंडिग के स्रोत का पूर्ण रूप से खुलासा न करने पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है, तथा नीति परिर्वतन करने या लाइसेंस प्राप्त करने के लिए सत्तारूढ़ पार्टी के साथ लेन–देन की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है। चुनावी प्रक्रिया में कॉर्पोरेट्स के अनियंत्रित प्रभाव को अधिकृत किया है।[10]

निगम बनाम नागरिक

इस फैसले में पैसे और राजनीति के बीच गहरे गठजोड़ पर कहा गया कि 'कंपनियों द्वारा किया गया योगदान विशुद्ध रूप से व्यापारिक लेनदेन है।, जिसका उद्देश्य बदले में लाभ प्राप्त करना है।' इस योजना ने देश में प्रमुख व्यापारिक हिस्सेदारी वाली कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा 'भारी योगदान' के प्रवाह की अनुमति दी, जिससे आम भारतीय – छात्र, दिहाड़ी मजदूर, कलाकार या शिक्षक– के अपेक्षाकृत छोटे वित्तीय योगदान को दबा दिया गया। जो बदले में किसी भी बड़े उपकार की उम्मीद किए बिना किसी राजनीतिक दल की विचारधाराओं में विश्वास करते हैं।

क्या निर्वाचित लोग वास्तव में मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होंगे ? यदि कंपनियां जो अपने साथ बहुत सारा पैसा लेकर आती हैं और लेन–देन में संलग्न होती हैं। मुख्य न्यायाधीश

डी.वाई. चंद्रचूड़ ने कहा, ''पक्षकारों के साथ व्यवस्था में असीमित मात्रा में योगदान करने की अनुमति है।'' इस योजना और संशोधनों ने वित्तीय शक्ति वाले निगमों को चुनावी प्रक्रिया और राजनीतिक भागीदारी में आम नागरिकों पर एक अप्रतिम लाभ देकर ''आर्थिक असमानता'' को बढ़ावा दिया है। **मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने कहा**, ''यह 'एक व्यक्ति, एक वोट' के मूल्य में निहित स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव और राजनीतिक समानता के सिद्धांत का उल्लंघन है।''[11]

मतदाताओं के अधिकार बनाम दाताओं के अधिकार

न्यायालय ने केंद्र सरकार की इस दलील को खारिज कर दिया कि चुनावी बांड के माध्यम से राजनीतिक दानदाताओं की गुमनामी बैंकिंग चौनलों के माध्यम से वित्तीय योगदान को प्रोत्साहित करती है। निजता के मौलिक अधिकार में व्यक्ति की राजनीतिक संबद्धता भी शामिल है। हालांकि, न्यायालय ने कहा कि सूचनात्मक निजता और मतदाताओं के सूचना के अधिकार के बीच संतुलन होना चाहिए। मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने कॉरपोरेट द्वारा एहसान के लिए दिए जाने वाले दान और व्यक्तियों द्वारा अपनी राजनीतिक मान्यताओं के प्रतीक के रूप में दिए जाने वाले योगदान के बीच स्पष्ट अंतर बताया। ''सभी योगदान सार्वजनिक नीति को बदलने के लिए नहीं किए जाते हैं। राजनीतिक दलों को लोगों द्वारा भी योगदान दिया जाता है, जिसका प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप से नहीं किया जाता है, केवल समर्थन बढ़ाने के इरादे से बदले में दिया जाने वाला योगदान समर्थन की अभिव्यक्ति नहीं है।[12]

चुनावी बॉन्ड काले धन पर अंकुश लगाने का एकमात्र तरीका नही

सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के इस दावे को खारिज कर दिया कि इस योजना का उद्देश्य चुनावी प्रक्रिया में काले धन के प्रवेश को रोकना है। न्यायालय ने फैसला सुनाया कि ''काले धन पर अंकुश लगाना'' अनुच्छेद 19(1)(ए) में निहित राजनीतिक फंडिंग के बारे में जानकारी के मतदाताओं के मौलिक अधिकार के प्रयोग पर उचित प्रतिबंध नहीं है। मुख्य न्यायाधीश ने केंद्र सरकार से प्रश्न किया कि चुनावी बॉन्ड योजना में पेश किए गए राजनीतिक फंडिंग के स्रोतों का "पूर्ण" खुलासा न करना काले धन पर अंकुश लगाने में कैसे तर्कसंगत रूप से मदद कर सकता है। "योजना का खंड 7(4) चुनावी बॉन्ड के खरीदारों की जानकारी को पूरी तरह से छूट देता है। यह जानकारी मतदाताओं को नही होती। राजनीतिक फंडिंग के बारे में जानकारी हासिल करने का उद्देश्य इससे पूरा नहीं हो सकता। मुख्य न्यायाधीश के अनुसार, ''यह पूर्णतः गैर–प्रकटीकरण है।''[13]

गोपनीयता पर आधारित

''दोहरे आनुपातिकता मानकों'' को लागू करते हुए, अदालत ने कहा कि यह खंड असंवैधानिक है क्योंकि यह मतदाताओं के सूचना के अधिकार और योगदानकर्ताओं के राजनीतिक जुड़ाव के संबंध में गोपनीयता के अधिकार के बीच संतुलन नहीं बिठाता। पूरी चुनावी बॉन्ड योजना धारा 7(4) के तहत दी गई गुमनामी पर टिकी हुई थी।[14]

संशोधनों से गोपनीयता को राह मिली

निर्णय में इस बात का उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार धन विधेयक के रूप में प्रस्तुत वित्त अधिनियम 2017 के माध्यम से जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 29 सी, आयकर

अधिनियम की धारा 13(ए) तथा कंपनी अधिनियम की धारा 182 में संशोधन किए गए, ताकि जनवरी 2018 में अधिसूचित चुनावी बांड के माध्यम से वित्तीय योगदान में पूर्णतः गुमनामी का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। अदालत ने कहा कि संशोधनों से पहले, इन प्रावधानों में दानदाताओं की गोपनीयता और मतदाताओं के जानने के अधिकार के बीच आवश्यक संतुलन बनाए रखा गया था। संशोधन से पहले, धारा 182 में यह अनिवार्य किया गया था कि कंपनियाँ अपनी कुल शुद्ध आय के तीन वर्ष के 7.5 प्रतिशत तक ही दान कर सकती हैं। संशोधन ने इस सीमा को हटा दिया और राजनीतिक दलों को असीमित और गुमनाम कॉर्पोरेट दान के लिए जगह बना दी।[15]

अंतिम निर्णय

आनुपातिकता मानक और व्यापक सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए, जो गोपनीयता से असंगत है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि चुनावी बांड के प्रावधान संविधान के सही पक्ष में नहीं थे। चुनावी बॉन्ड योजना, कंपनी अधिनियम की धारा 182(3) (जैसा कि वित्त अधिनियम 2017 की धारा 154 द्वारा संशोधित), अनुच्छेद 19(1)(ए) का उल्लंघन है और असंवैधानिक हैय कंपनी अधिनियम की धारा 182(1) के प्रावधान को हटाना, जो राजनीतिक दलों को असीमित कॉर्पोरेट योगदान की अनुमति देता है, मनमाना है और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। संक्षेप में, यह पाया गया कि किसी राजनीतिक दल को मिलने वाले वित्तपोषण के बारे में जानकारी मतदाता के लिए अपने मताधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने के लिए आवश्यक है, जो गोपनीयता के अधिकार से भी बड़ा सार्वजनिक हित है।

हाल ही में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया को (एसबीआई) को आदेश दिया गया कि वह चुनावी बॉन्ड को जारी करने पर तुरंत रोक लगाए और 12 अप्रैल 2019 से राजनीतिक दलों द्वारा खरीदे गए ऐसे सभी बांडों का विवरण 6 मार्च 2024 तक निर्वाचन आयोग को प्रस्तुत करे। जिसमें इस तरह के विवरण में प्रत्येक बॉन्ड की खरीद की तिथि, बॉन्ड के खरीदार का नाम और खरीदे गए बॉन्ड का मूल्य शामिल हो साथ ही भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा सभी सूचनाओं को 13 मार्च 2024 तक अपनी आधिकारिक वेबसाइट पर प्रकाशित करे, परिणामस्वरूप, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा निर्वाचन आयोग को 12 अप्रैल 2019 से 6 मार्च 2024 तक के सारे इलेक्टोरल बॉन्ड डाटा रिकार्ड जमा किए। इस अवधि में भारतीय जनता पार्टी द्वारा कुल 60 अरब रुपए से अधिक के इलेक्टोरल बॉन्ड को भुनाया है। दूसरे नंबर पर तृणमूल कांग्रेस है, जिसने 16 अरब रुपए से अधिक के इलेक्टोरल बॉन्ड को इनकैश किया है। वही सर्वाधिक इलेक्टोरल बॉन्ड खरीदने वाली कंपनी फ्यूचर गेमिंग एंड होटल सर्विसेज है। इस कंपनी ने कुल 1368 बॉन्ड खरीदे, जिसकी कीमत 13.6 अरब रुपए से अधिक रही।[16]

इलेक्टोरल बॉन्ड से सबसे अधिक चंदा लेने वाली राजनीतिक पार्टियां

चुनाव आयोग की ओर से जारी चुनावी बॉन्ड इनकैश करवाने वालों की लिस्ट में भारतीय जनता पार्टी पहले, ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस दूसरे, तीसरे नंबर पर कांग्रेस है।

इलेक्टोरल बॉन्ड खरीदने वाली शीर्ष कंपनियां

सबसे अधिक कीमत के इलेक्टोरल बॉन्ड खरीदने वाली कंपनियों में फ्यूचर गेमिंग एंड होटल सर्विसेज के बाद मेघा इंजीनियरिंग एंड इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड दूसरे नंबर पर है, फ्यूचर गेमिंग ने कुल 1368 बॉन्ड खरीदे, जिनकी कीमत 1368 करोड़ रुपए थी. वही 966 करोड़ रुपए के कुल 966 बॉन्ड खरीदे। इनके बाद जिन कंपनियों ने सबसे अधिक बॉन्ड खरीदे उनमें क्विक सप्लायर्स चेन प्राइवेट लिमिटेड, हल्दिया एनर्जी लिमिटेड, वेदांता लिमिटेड, एसेल माइनिंग एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड, वेस्टर्न यूपी पावर ट्रांसमिशन कंपनी लिमिटेड, केवेंटर फूडपार्क इंफ्रा लिमिटेड, मदनलाल लिमिटेड, भारती एयरटेल लिमिटेड, यशोदा सुपर स्पेशलिटी हॉस्पिटल, आदि शामिल है।

भारत में चुनावी वित्तपोषण के संबंध में प्रमुख सुझाव तथा दान का विनियमन : –

कुछ व्यक्तियों या संगठनों, उदाहरण के लिए विदेशी नागरिकों या कंपनियों के दान पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। दान की सीमाएं भी निर्धारित की जा सकती है। जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना हो कि किसी दल पर कुछ बड़े दानकर्ताओं चाहे वे व्यक्ति हो, निगम हो, या नागरिक समाज संगठन हो, का अतिशय प्रभाव न हो। कुछ देश राजनीति में धन के प्रभाव को विनियमित करने के लिए योगदान सीमा पर भरोसा करते है। कुछ अन्य देश, जैसे कि यूके, योगदान सीमा तो आरोपित नहीं करते, लेकिन व्यय पर एक सीमा रखते है।

व्यय की सीमा

व्यय पर नियत सीमाएं राजनीति को वित्तीय होड़ से बचाती है। वे मतों के लिए प्रतिस्पर्धा करने के दबाव से राजनीतिक दलों को मुक्त कर देती है। इसलिए, कुछ देश राजनीतिक दलों पर व्यय सीमा आरोपित करते है। उदाहरण के लिए, यूके में राजनीतिक दलों को प्रति सीट 30,000 यूरो (लगभग 30 लाख रूपए) से अधिक खर्च करने की अनुमति नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रथम संशोधन (अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता) की व्यापक व्याख्या से व्यय सीमा आरोपित करने के विधायी प्रयासों को बाधा पहुंची है।

राजनीतिक दलों को सार्वजनिक धन उपलब्ध कराना

सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली विधि है पूर्व निर्धारित मानदंड निर्धारित करना। उदाहरण के लिए, जर्मनी में राजनीतिक दलों को राजनीतिक व्यवस्था में उनके महत्व के आधार पर सार्वजनिक धन प्रदान किया जाता है। आम तौर पर इसे पिछले चुनावों में उन्हें प्राप्त मतों, सदस्यता शुल्क और निजी स्रोतों से प्राप्त दान के आधार पर मापा जाता है। जर्मन पॉलिटिकल पार्टी फाउंडेशन को दल संबद्ध पॉलिसी थिंक टैंक के रूप में अपने कार्य के लिए समर्पित विशेष राज्य निधि प्राप्त होती है।

सार्वजनिक वित्तपोषण में एक अपेक्षाकृत नवीन प्रयोग ' **डेमोक्रेसी वाउचर्स** ' का है, जिसका उपयोग सिएटल (अमेरिका) में स्थानीय चुनावों में किया जाता है। सरकार पात्र मतदाताओं को एक निश्चित संख्या में वाउचर्स वितरित करती है, जिनमें से प्रत्येक एक निश्चित राशि का मूल्य रखता है। मतदाता इन वाउचर्स का उपयोग अपनी पसंद के उम्मीदवार को दान देने के लिए कर सकते है। ये वाउचर्स सार्वजनिक रूप से वित्तपोषित है। लेकिन धन आवंटित करने का निर्णय व्यक्तिगत मतदाता का होता है। सरल शब्दों में कहें तो मतदाता बैलेट के रूप में वोट देने से पहले अपने धन के रूप में 'वोट' देते है।

प्रकटीकरण आवश्यकताएं :

विनियमन उपाय के रूप में प्रकटीकरण इस धारणा पर आधारित है कि सूचना आपूर्ति एवं सार्वजनिक संवीक्षा राजनेताओं के निर्णयों और मतदाताओं के मतों को प्रभावित कर सकती है। हालाँकि, दलों को दिए गए दान का अनिवार्य प्रकटीकरण हमेशा वांक्षनीय नहीं होता है। कई बार दानकर्ता गुमनामी उनकी सुरक्षा के उपयोगी उद्देश्य को पूरा करती है। उदाहरण के लिए, दानकर्ताओं को सत्तारूढ़ दलों द्वारा प्रतिशोध या जबरन वसूली के भय का सामना करना पड़ सकता है। कई देशों को पारदर्शिता और गुमनामी की इन दो वैध चिंताओं के बीच उचित संतुलन बनाने में संघर्ष का सामना करना पड़ा है। इस मुद्दे को भी भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय को संबोधित किया है।

राजनीतिक दलों के वित्तपोषण का वैश्विक परिदृश्य

आरक्षित योगदान की चिली की प्रणाली के तहत, दानकर्ता राजनीतिक दलों को दान हेतु इच्छित धनराशि को चिली इलेक्टोरल सर्विस को हस्तांतरित कर सकते है। जो दाता की पहचान का खुलासा किए बिना दल को वह राशि अग्रेषित कर देता है। यदि यह पूरी गुमनामी प्रणाली सुचारू रूप से कार्य करे तो राजनीतिक दल किसी विशिष्ट दाता द्वारा दान की गई राशि का पता लगाने में सक्षम नहीं होंगे और फिर प्रतिदान व्यवस्था का निर्माण करना अत्यंत कठिन होगा। हालाँकि, यह दानकर्ताओं (जो सरकारी सरंक्षण चाहते है।) और राजनीतिक दलों (जिन्हें धन की आवश्यकता है) के हित में होगा कि वे उन दानकर्ताओं द्वारा दान की गई राशि का पता लगाने के लिए अनौपचारिक रूप से पहले से ही समन्वय करें। वस्तुतः जैसा कि वर्ष 2014–15 में हुए विभिन्न घोटालों से खुलासा हुआ, चिली के राजनेताओं और दानकर्ताओं ने पूर्ण गुमनामी की व्यवस्था को प्रभावी ढंग से अप्रभावी करने के लिए एक दृ दूसरे के साथ समन्वय किया था।[19]

संयुक्त राज्य अमेरिका– उम्मीदवार और पार्टी समितियां केवल व्यक्तिगत अमेरिकी नागरिकों और ग्रीन कार्ड धारकों से ही धन स्वीकर कर सकती है, बशर्ते कि वे संघीय चुनाव आयोग के समक्ष एक सीमा से अधिक का खुलासा करे। निगम–कारपोरेट संघीय अभियानों और उम्मीद्वारों को सीधे योगदान नहीं दे सकते है, लेकिन राजनीतिक कार्यवाई समितियों (पीएसी) (संघीय सीमाओं के अधीन) और सुपर पीएसी (कोई सीमा नहीं) के माध्यम से योगदान दे सकते है।[20]

यूनाइटेड किंगडम– निगम शेयरधारकों की मंजूरी सहित व्यापक रिपोर्टिंग और प्रकटीकरण आवश्यकताओ के साथ दान कर सकते हैं। कोई सीमा नहीं है, लेकिन एक सीमा से अधिक दान स्वीकार्य स्रोत से होना चाहिए और एक सीमा से अधिक गुमनाम दान की अनुमति नहीं है।[21]

जर्मनी– कारपोरेट दान पर कर से छूट नहीं मिलती और प्रकटीकरण कानून केवल बड़े दानदाताओं तक सीमित है। व्यक्तिगत और कारपोरेट दान पर कोई सीमा नहीं है, लेकिन एक सीमा से अधिक दान की जानकारी बुंदेस्टांग (जर्मन संघीय संसद) के अध्यक्ष द्वारा सार्वजनिक की जाती है।[22]

फ्रांस– कारपोरेट राजनीतिक दलों को दान नहीं दे सकते है, लेकिन कारपोरेट मालिक एक वर्ष में सीमा के अधीन व्यक्तिगत योगदान दे सकते है। एक सीमा से अधिक दान चेक द्वारा किया जाना चाहिए और लॉबिस्ट की भागीदारी प्रतिबंधित है। राजनीतिक दलों को संसदीय चुनावों

में उनके चुनावी प्रदर्शन के आधार पर राज्य अनुदान मिलता है और राष्ट्रपति चुनावों में राज्य प्रतिपूर्ति मिलती है।[23]

पारदर्शिता और गुमनामी को संतुलित करना :

सबसे प्रमुख प्रतिक्रियाओं में से यह होगा कि पारदर्शिता और गुमनामी में वैध सार्वजनिक हितों को संतुलित किया जाए। कई देश छोटे दानकर्ताओं को गुमनाम बने रहने की अनुमति देकर इस संतुलन को कायम रखते है, जबकि बड़े दान के खुलासे की आवश्यकता होती है। यूके में, किसी राजनीतिक दल को एक कैलेंडर वर्ष में एक ही स्रोत से प्राप्त कुल 7,500 पाउंड से अधिक के दान की रिपोर्ट करने की आवश्यकता होती है।[24] जर्मनी में यह सीमा 10,000 यूरो है।

इस दृष्टिकोण के पक्ष में तर्क यह है कि छोटे दानकर्ताओं की सरकार में सबसे कम प्रभावशाली होने और पक्षपातपूर्ण उत्पीड़न के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होने की संभावना होती है, जबकि बड़े दानकर्ताओं द्वारा राजनीतिक दलों के साथ प्रतिदान व्यवस्था का निर्माण करने की अधिक संभावना होती है।

राष्ट्रीय निर्वाचन कोष की स्थापना करना

एक अन्य विकल्प यह है कि एक **राष्ट्रीय निर्वाचन कोष** की स्थापना की जाए जिसमें सभी दानकर्ता दान दे सकें। राजनीतिक दलों को उनके चुनावी प्रदर्शन के आधार पर धन आवंटित किया जा सकता है। इससे दानकर्ताओं से प्रतिशोध के बारे में तथाकथित चिंता समाप्त हो जायेगी। सर्वोच्च न्यायालय ने सुनवाई के दौरान एक नए मुद्दे को भी चिन्हित किया जो था आतंक या हिंसक विरोध प्रदर्शन जैसी गतिविधियों के लिए राजनीतिक दलों द्वारा प्राप्त धन के दुरुपयोग की संभावना और उसने केन्द्र से पूछा कि क्या धन के अंतिम उपयोग पर उसका कोई नियंत्रण है।

राजनीतिक दलों के वित्तपोषण पर प्रमुख अनुशंसाये

चुनाव के राज्य वित्तपोषण पर इंद्रजीत गुप्ता समिति, 1998 – कम वित्तीय संसाधनों वाले दलों के लिए निष्पक्ष अवसर के निर्माण के लिए राज्य द्वारा चुनावों के वित्तपोषण का समर्थन किया गया। इसमें– राज्य वित्त केवल राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय दलों को आवंटित किया जाएगा, स्वतन्त्र उम्मीदवारों को नहीं।

आरंभ में राज्य वित्तपोषण को साधन के रूप में प्रदान किया जाए जहां मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों और उनके उम्मीदवारों को कुछ सुविधाएं प्रदान की जा सकती है। समिति ने आर्थिक बाधाओं को स्वीकार किया और पूर्ण राज्य वित्तपोषण के बजाए आंशिक वित्तपोषण की वकालत की।[25]

निर्वाचन आयोग की अनुशंसाओं में शामिल– निर्वाचन आयोग की वर्ष 2004 की रिपोर्ट में राजनीतिक दलों के लिए अपने खातों को वार्षिक रूप से प्रकाशित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया ताकि आम जनता और संबंधित संस्थाओं द्वारा इसकी संवीक्षा की अनुमति मिल सके।[26]

नियंत्रक और महालेखा परीक्षक द्वारा अनुमोदित फर्मों द्वारा ऑडिट किए जाने के साथ, परिशुद्धता सुनिश्चित करते हुए ऑडिट किए गए खातों को सार्वजनिक किया जाना चाहिए। विधि आयोग, (1999) इसने चुनावों के लिए कुल राज्य वित्तपोषण को इस शर्त के तहत वांछनीय बताया कि राजनीतिक दलों को अन्य स्रोतों से धन प्राप्त करने से प्रतिबंधित किया जाए। विधि आयोग की वर्ष 1999 की रिपोर्ट में राजनीतिक दल के खातों के रखरखाव, ऑडिट एवं प्रकाशन

के लिए और गैर अनुपालन के लिए दंड के साथ जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया (धारा 78A का प्रवेश कराते हुए)[27]

निष्कर्ष

इलेक्टोरल बॉन्ड योजना को असंवैधानिक ठहराने का सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय ऐतिहासिक है, क्योंकि यह सूचना के मूल्यवान अधिकार को मान्यता देता है। यह चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता के महत्व को पुष्ट करता है इसके अलावा, न्यायालय का निर्णय सरकार के लिए चुनावी फंडिंग के प्रति अपने दृष्टिकोण का पुनर्मूल्यांकन करने का अवसर प्रस्तुत करता है। योजनाओं या कार्यकारी निर्देशों पर निर्भर रहने के बजाय, सरकार को लोकतांत्रिक शासन के इस महत्वपूर्ण पहलू में पारदर्शिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विशिष्ट कानून बनाने पर विचार करना चाहिए। ऐसे कानून राजनीतिक योगदान के प्रकटीकरण के लिए स्पष्ट दिशा–निर्देशों की रूपरेखा तैयार कर सकते हैं, चुनावी वित्त की सार्वजनिक जांच को अनिवार्य बना सकते हैं, और जवाबदेही के लिए तंत्र स्थापित कर सकते हैं। न्यायालय के फैसले को स्वीकार करके और चुनावी फंडिंग में सुधार के लिए सक्रिय कदम उठाकर, सरकार लोकतांत्रिक सिद्धांतों को कायम रखने और चुनावी प्रक्रिया में जनता का भरोसा बहाल करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित कर सकती है। राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता न केवल लोकतांत्रिक ताने–बाने को मजबूत करती है, बल्कि अधिक सूचित और सक्रिय मतदाताओं को भी बढ़ावा देती है।

राजनीतिक दलों के वित्तपोषण में पूर्ण पारदर्शिता की आवश्यकता को कायम रखते हुए स्वतन्त्र एवं राज्य वित्तपोषण निजी दान की आवश्यकता को समाप्त कर सकता है, और राजनीतिक दलों को समान वित्तीय सहायता देकर भ्रष्टाचार, अपारदर्शिता कम कर सकता है। हालांकि, इस नीति सुझाव के लाभों को अधिकतम करने के लिए ऐसे प्रश्नों पर ध्यान देने की आवश्यकता है जैसे– भारत में अधिक राजनीतिक दल हैं, क्या उन सभी को राज्य से धन मिलेगा? राज्य और राष्ट्रीय दलों के लिए धन की रूपरेखा किस प्रकार भिन्न होगी? और, स्वतंत्र उम्मीदवारों को विनियमन में कैसे शामिल किया जाएगा? कई राज्य और निजी समितियों द्वारा वकालत की गई और पारदर्शिता पर सुप्रीम कोर्ट के जोर द्वारा समर्थित, भारत में राज्य वित्त पोषण यह गारंटी देकर लोकतंत्र में सुधार कर सकता है। एक स्वस्थ लोकतंत्र को बढ़ावा देते हुए, राज्य वित्त पोषण भारत की चुनावी वित्त पोषण संरचना को अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के साथ संरेखित करेगा। राजनीतिक दान पर कर रियायतों के ढाँचे पर पुनर्विचार करने से यह सुनिश्चित करने में मदद मिल सकती है कि वे व्यापक राजकोषीय नीतियों के साथ संरेखित हों और सरकारी राजस्व पर अनुचित प्रभाव न डालें। कटौतियों पर उचित सीमाएँ निर्धारित करना और राजनीतिक वित्तपोषण के लिये वैकल्पिक तंत्रों की खोज करना वित्तपोषण प्रणाली की स्थिरता को बढ़ा सकता है। कई देश पिछले चुनाव प्रदर्शन, सदस्यता शुल्क और निजी दान जैसे विभिन्न मानदंडों के आधार पर राजनीतिक दलों को सार्वजनिक वित्तपोषण प्रदान करते है।

सार्वजनिक वित्तपोषण राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को चुनावी प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को सुविधाजनक बनाने के लिये सरकारी वित्तीय सहायता को संदर्भित करता है, जिससे निजी दान पर निर्भरता एवं निहित स्वार्थों के संभावित प्रभाव को कम किया जा सके।

❐

सन्दर्भ –

1. *Ahluwalia Sanjeev (18 Nov. 2022) Political Parties and election finance: jktuhfrd nyksa vkSj mUgs feyus okys vLi"V pqukoh panks ij fu;a=.k dh pqukSrh Observer Research Foundation ORF*
2. *Chhokar, S. Jagdeep,(9 May, 2024), Corporate Business and the Financing of Political Parties, The India Forum. https://www.theindiaforum.in/politics/business-and-finance-political-parties-umbilical-chord*
3. *The Companies Act 1956, and It's Administration, Ministry Of Corporate Affairs.https://www.mca.gov.in*
4. *Section 182 of the Companies Act, 2013, Government Of India, Ministry OfCorporate Affairs. https://www.mca.gov.in*
5. *Section 182 of the Companies Act, 2013, Government Of India, Ministry Of Corporate Affairs. https://www.mca.gov.in*
6. *Electoral Bonds and Opacity in Political Funding, (6 July. 2022), Association for Democratic Reforms. https://adrindia.org*
7. *Indian Kanoon, Section 293A in The Companies Act, 1956 https://Indiankanoon.org*
8. *jko jk?kosaUæ ¼1 uoEcj] 2023½ bysDV¨jy ckW.M D;k gS] ftl ij g¨jgk Òkjh fookn lqÁhe d¨VZ ds QSlys ls D;k cnysxk&chchlh www.bbc.com*
9. *Ibid*
10. *In the Supreme Court Of India, Civil Original Jurisdiction (16 February,2024), writ Petitions (C) no. 880 Of 2017, 2024, INC , 113 https://main.sci.gov.in*
11. *Constitutionality of the Electoral Bond Scheme, Association for Democratic Reforms v Union of India, 2024 INSC 113, The Supreme Court held that the Electoral Bond Scheme was unconstitu tional To against the right toinformation Of voters. Supreme Court Observer. www.scobserver.in*
12. *Why did the Supreme Court strike down the electoral bonds scheme? | Explained, (15 February, 2024 , 5:30 PM First), The Hindu. www.thehindu.com*
13. *Electoral Bond not the only way to curb Black Money, There are alternative means which are less Restrictive – Supreme Court, (15-02-2024), Live Law. https://www.livelaw.in*
14. *In the Supreme Court Of India Civil Original Jurisdiction ,(16-02-2024), 2024, INCS,113. https://main.sci.gov.in*
15. *Electoral Bonds Explained : Transparency and Anonymity in Political Funding (20 March 2024) The Times Of India. https://timesofindia.indiatimes.com*
16. *Electoral Bonds - Supreme Court takes note of missing information in data Submitted by State Bank of India. (15 March 2024) Supreme Court Observer. www.scobserver.in*
17. *Disclosure Of Electoral Bonds - Details of Electoral Bonds Submitted by SBI, Election Commission Of India. https://www.eci.gov.in*
18. *Disclosure Of Electoral Bonds - Details of Electoral Bonds Submitted by SBI,Election Commission Of India. https://www.eci.gov.in*
19. *Jaraquemada, Maria, (5 February 2024), Political Finance in The Digital Age in Chili, An Anachronistic Regulation. International IDEA. https://www.idea.internationl*
20. *How Does Campaign Funding work? Caltech Science Exchange. https://scienceexchange.caltech.edu Public Campaign financing, Brennan Centre for justice https://www.brennancenter.org*
21. *Political Spending and Donations : What are the rules in UK ? (6 June 2024), The Guardian . www.theguardian.com*
22. *Party Funding – German Bundestag, Deutscher Bundestag. https://www.bundestag Schmitz, Thomas, (2019), Political Parties and their funding in Germany,Journal Of The Univer sity Of Latvia, law. https://www.journal.lu.lv*
23. *Jouan, Barbara , Financing of political parties and electoral campaigns in France ,The role of the French National Commission on campaign accounts and Political Party Financing (CNCCFP), Transparency International Magyaroszag. https://www.transparency.hu*
24. *Uberai, Elise (8 Jan,2016), Political Party Funding : Sources and Regulations, House Of Commons Liberary.*
25. *pquko®a ds jkT; foÙki®"k.k ij bUæthr xqIrk lfefr dh fji®VZ ¼1998½*
26. *Election Commission Of India, 2004 report. https://www.eci.gov.in*
27. *चुनावी कानूनों में सुधार पर विधि आयग की रिपोर्ट (1999)*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 56–63

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

वर्तमान परिदृश्य में थारू जनजाति के बदलते सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिमान

विनय कुमार विश्वकर्मा
शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail: vishwakarmacharya@bhu.ac.in Mobile No. 7499911169

सारांश

आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व के सभी समाजों में पाई जाती है। यह परिवर्तन कोई नई प्रक्रिया नहीं है अपितु सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए नवीन शब्द के रूप में प्रयोग की जाती रही है। थारू जनजाति भारत के तराई क्षेत्रों में रहने वाला एक स्वदेशी समूह है जिनकी एक अलग संस्कृति, भाषा और सामाजिक संरचना है। यह जनजाति पर्यावरण के नजदीक है एवं उसको संरक्षण प्रदान करती है। थारू जनजाति की जीवन शैली में परिवर्तन दृष्टिगोचर है। आधुनिक समाज के संपर्क में आने के बाद जो बदलाव होते हैं उसके परिणामस्वरूप उनके रीति–रिवाज और परंपराएं दबाव में आ गई हैं। उनकी भाषा, संस्कृति, सामाजिक संगठन, आदर्श, परंपराएं, वैवाहिक स्वरूप एवं मूल्यों में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है किंतु आधुनिकीरण के परिणामस्वरूप जो लाभ हुए हैं उन्हें नजर अंदाज भी नहीं किया जा सकता है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया ने थारू जनजाति को नए धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है। उनमें परम्परागत सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो रहे हैं और नए सांस्कृतिक प्रतिमानों को अपना रहे हैं। यह शोध पत्र थारू जनजाति की संस्कृति पर आधुनिकीकरण के प्रभाव से हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करता है।

मूल शब्द– आधुनिकीकरण, संस्कृति, परिवर्तन, प्रभाव।

प्रस्तावना

भारत एक बहु–जातीय समूहों का देश है और थारू जनजाति उनमें से एक है। वे इस क्षेत्र के सबसे बड़े और सबसे पुराने आदिवासी समुदाय में से एक हैं। वे आमतौर पर किसान और फेरीवाले होते हैं। वे अपनी थारू भाषा बोलते हैं जिसे ''थरुहाटी'' कहा जाता है और लिपि देवनागिरी है तथा संचार उद्देश्य के लिए वे हिंदी भी बोलते हैं। संविधान द्वारा (अनुसूचित जनजाति) (उत्तर प्रदेश) आदेश, 1967 के माध्यम से थारूओं को उत्तर प्रदेश में चार अन्य

जनजातियों (बोक्सा, भोटिया, जौनसारी और राजी) के साथ अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिला है। जनसंख्या के अनुसार, थारू सभी मौजूदा पांचों में सबसे अधिक आबादी वाला समूह है। उत्तर प्रदेश में जनजातीय समूह थारू समुदाय की अधिकांश आबादी भारत–नेपाल सीमा पर भाभर तराई क्षेत्र में मौजूद है।[1]

थारू मुख्य रूप से उत्तराखंड के उधम सिंह नगर जिले, लखीमपुर खीरी, बहराईच, बस्ती, गोंडा, बलरामपुर और गोरखपुर में निवास करते हैं। उत्तराखंड में थारू जनजाति की कुल जनसंख्या 91.342 और उत्तर प्रदेश में 1.05.291 है।[2] थारू लोग विभिन्न देवी–देवताओं को अपने स्थानीय देवता के रूप में पूजते हैं। वे मुख्य रूप से हिंदू धर्म के अनुयायी हैं, लेकिन इस्लामिक, एनिमिस्ट और बौद्ध मान्यताओं को भी मानते हैं। नेपाल में थारू अपने स्थानीय देवता को 'गोर–राजा' कहते हैं। वे अपने पारंपरिक स्थानीय देवता को खुश करने के लिए पशु बलि में भी विश्वास करते हैं। इस समुदाय का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना, शिकार करना और कृषि करना है। थारू लोग राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में भाग नहीं लेते हैं लेकिन वे स्थानीय राजनीति में 'प्रधान' और 'गुरुवा' (पारंपरिक पंचायत के प्रमुख) के रूप में सक्रिय हैं। यद्यपि वे हिंदू जाति समाज की पितृसत्तात्मक धारणा का अभ्यास कर रहे हैं। थारू समुदाय में महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है और उन्हें काफी मात्रा में स्वतंत्रता प्राप्त है। थारू महिलाएं निर्णय लेने और परिवार के मामलों में प्रबंधन में प्रभुत्व रखती हैं हालांकि वे शिक्षित नहीं है।[3]

महान सभ्यताओं और संस्कृतियों की उत्पत्ति का अध्ययन करते समय एक लेखक इस विषय पर उपलब्ध माध्यमिक साहित्य का सहारा ले सकता है। दुर्भाग्य से थारू जनजातियों के मामलें में ऐसा नहीं है; विद्वानों को जनजातियों के मनमाने ज्ञान स्रोतों, मुख्य रूप से मौखिक परम्पराओं से जूझना पड़ता है, जिससे समाज शास्त्रियों और सामाजिक मानवविज्ञानियों के लिए समुदाय का अध्ययन करना मुश्किल हो जाता है। कई विद्वानों ने बिना किसी ठोस सबूत के यह तर्क दिया कि थारू लोग 13वीं से 15वीं शताब्दी में थार रेगिस्तान से देश के अन्य क्षेत्रों में चले गए थे। एक लोक कथा के अनुसार, सुदूर अतीत में जब राजा थे, एक आक्रमणकारी की सेना से पराजित होने के बाद, शाही महल की महिलाएं दुश्मन के हाथों में पड़ने के बजाय महल से संबंधित रईस और चमारों (कर्मचारी जाति) के साथ जंगलों में भाग गई। इस दावे को और अधिक समर्थन मिलता है क्योंकि यह देखा गया है कि थारू समुदाय में महिलाओं का वर्चस्व है।[4]

थारू समुदाय में महिलाओं के प्रभुत्व को इस परंपरा से समझाया गया है कि थारू राजपूत महिलाओं और उनके नौकरों, सैसेस और चमारों के बीच मिश्रित विवाह के स्रोत हैं। डब्ल्यू क्रुक (1896) का मानना है कि थारूओं की उत्पत्ति का पता ''थारू'' शब्द से लगाया जा सकता है, जो 'वाइन बिबर' को दर्शाता है। ऐसा माना जाता है कि थारूओं को यह नाम खस्त्रियों में से एक द्वारा दिया गया है। मैदानी इलाकों के राजा थारूओं की शराब पीने की ललक और क्षमता को देख रहे थे। डी.एन. मजूमदार (1944) ने वर्णन किया कि थारूओं का मंगोल वंशीय संबंध है और वे रक्त समूह परीक्षण या सीरोलॉजी के आधार पर राजपूतों से अपनी उत्पत्ति का दावा नहीं कर सकते। उनके पास कोई ज्ञात विशिष्ट विशेषताएं नहीं है जो उन्हें उनकी सांस्कृतिक या नस्लीय प्रथाओं में राजस्थान के राजपूतों से जोड़ती है। श्रीवास्तव (1965)

थारूओं के बारे में बात करते हैं कि उनके पास मंगोलोइड शारीरिक उपस्थिति है, जो लाभप्रद रूप से गैर–मंगोलॉयड जाति के साथ भी विलय हो जाती है।[5]

इस प्रकार थारू जनजाति में सामाजिक परिवर्तन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा किसी भी समाज की मौजूदा व्यवस्था, वह भौतिक सभ्यता हो सकती है, और आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से दूसरे सांस्कृतिक समाज में बदल जाती है। मालिनोव्स्की के अनुसार ''सांस्कृतिक परिवर्तन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज की मौजूदा व्यवस्था, यानी उसकी सामाजिक, आध्यात्मिक और भौतिक सभ्यता एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित हो जाती है।'' नेसफील्ड, वी.के. कोचर, डी.एन. मजूमदार, टी.एन. मदन, आर.पी. श्रीवास्तव, समीरा मैती, आर.सी.वर्मा, नदीम हसनैन, नरेंद्र एस.बिस्ट और टी.एस. बनकोटी, मैरी एन मसलक, अमीर हसन, सी.टी.हू, एस.के. श्रीवास्तव, बी.एस. बिस्ट, जगदेव सिंह और कई अन्य लोगों ने थारू समुदाय के बीच सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के अध्ययन में योगदान दिया है। इन विद्वानों ने परिवर्तन के पीछे के कारणों पर भी विचार किया है; इसका मुख्य कारण गैर–आदिवासी समुदायों में संपर्क, विकासात्मक योजनाएं और शिक्षा है। उपरोक्त कारकों के कारण होने वाले परिवर्तनों को थारू समुदायों द्वारा अपनाना आधुनिकीकरण, सांस्कृतिककरण और हिंदूकरण जैसी प्रक्रियाओं से भिन्न है।[6]

भारत में थारू जनजातियों की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति

सामाजिक–सांस्कृतिक पहलू में कई कारक भाामिल हैं जैसे परंपराएं, रीति–रिवाज, शिक्षा स्तर, धार्मिक प्रथाएं आदि। थारू परंपराओं के अनुसार, संयुक्त परिवार प्रणाली आदर्श हुआ करती थी, लेकिन बदलती प्रथाओं के कारण उनमें से कुछ आगे बढ़ रही हैं। एकल परिवार प्रणाली के लिए थारू सामाजिक परंपरा में परिवार का प्रत्येक सदस्य आजीविका कमाने में योगदान देता है। यह देखा गया है कि, थारूओं में संयुक्त परिवार कृषि के अपने पारंपरिक कार्य को पूरा करने के लिए एकल परिवारों की तुलना में अधिक योगदान देने वाले और उत्पादक होते हैं। लेकिन अब थारू समाज में लगातार हो रहे प्रवासन के कारण कृषि भूमि विभाजित हो गई है और इसका असर थारूओं के बीच संयुक्त परिवार की कामकाजी परंपराओं पर पड़ रहा है। थारू लोगों के अन्य पेशेवर कौशल के संबंध में, वे मछली पकड़ने के जाल, घरेलू बर्तन और अन्य शिल्प बनाने में अत्यधिक कुशल हैं।[7] थारूओं की कोई एक भाषा नहीं है लेकिन थारूओं द्वारा बोली जाने वाली भाषा को थारुहाटी कहा जाता है, जो इंडो–आर्यन भाषा समूह से संबंधित है। लेकिन, वास्तव में, यह माना जाता है कि थारूओं की अपनी कोई विशिष्ट भाषा नहीं है। वे कई भाषाओं का मिश्रण बोलते हैं जो आमतौर पर उनके निवास क्षेत्र में उपयोग की जाती हैं। वे आमतौर पर भोजपुरी, अवधी, मैथली और अन्य क्षेत्रीय भाशाओं का मिश्रण बोलते हैं। थारूओं के बीच मान्यताएं, अंधविश्वास और अलौकिक प्रथाएं कुछ सामाजिक मान्यताओं और प्रथाओं से बंधी हुई हैं। वे पूजा या जादू–टोना करते हैं जैसा कि आमतौर पर आदिवासी लोगों के बीच जाना जाता है। विभिन्न मान्यताएँ, थारू समाज को सामाजिक समरसता से जोड़ती हैं और अद्वितीय बनाती हैं। ऐसे कई देवी–देवता हैं जिनकी थारू जनजाति पूजा करती है। यदि हम थारू जनजाति की मान्यताओं के बारे में बात करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ''थारू जातीय समुदाय टाइलर द्वारा परिभाषित जीववादी मान्यताओं के अनुयायी हैं, वे मृत्यु

के बाद के जीवन, अच्छी और बुरी आत्माओं के बारे में विश्वास करते हैं, वे आत्माओं के विश्वासी हैं।'' वैदिक युग की तरह पत्थरों, जानवरों, पेड़ों, भाप पर्वतों पर निवास करने में उनकी आम धारणा यह है कि यदि आत्माएं अप्रसन्न होती हैं तो प्राकृतिक आपदाओं, महामारी के रूप में बुराईयां उन पर आ पड़ती है और ऐसे देवताओं को प्रसन्न करने के उपाय किए जाते हैं।[8]

थारू क्षेत्र के दक्षिण–पश्चिम भाग में, भूमिया नामक एक देवता हैं या भुइयां भवानी, जिसके बारे में मान्यता है कि वह गांव में पीपल या नीम के पेड़ पर निवास करती हैं। थारू लोग वर्ष में केवल एक बार भारतीय माह आषाढ़ में इस देवता की पूजा करते हैं। भूइयां देवता को उस समय रक्षक माना जाता है जब गांव में महामारी या कोई प्राकृतिक आपदा आती है। कुछ महत्वपूर्ण थारू देवताओं में नागरहाई या नगरिया, निराधार, करियादेव, बिसिहर, पूर्वी, गुल्लादेवता, कालका, पर्वतिया, बनस्पति, भेरा बाबा, कौसम बाबा, तुर्किया आदि हैं। मुख्य धर्मों की निरंतर भागीदारी के कारण भाांति और समृद्धि बढ़ाने के लिए हिंदू, इस्लाम और सिख धर्म के थारू लोगों ने शिव, कृष्ण, हनुमान, सरस्वती, संतोषी, इमाम हुसैन, भाले मियां, गुरु नानक देव आदि देवी–देवताओं की पूजा शुरू कर दी। वे विभिन्न प्रकार के त्यौहार मनाते हैं और हर त्यौहार की अपनी विशिष्ट विशिष्टताएँ होती हैं। अन्य त्यौहारों में आषाढ़ी नामक एक त्यौहार है, जो एक ऐसा महीना है जब लोग बारिश के देवता को प्रसन्न करते हैं। बारिश के देवता की पूजा करने का उद्देश्य फसल बोने के बाद भगवान को प्रसन्न करना है क्योंकि फसल को उगाने के लिए बारिश के पानी की आवश्यकता होती है। ऐसे कई त्यौहार हैं, जो थारूओं के हिंदू परंपराओं के संपर्क में आने के कारण व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से मनाए जाते हैं। हिंदू त्यौहार दिवाली को बरसी के रूप में मनाया जाता है, एक ऐसा दिन जब थारू पूजा करते हैं और अपने पूर्वजों की आत्माओं को प्रसन्न करते हैं और भंडारा नामक दावत का आयोजन करते हैं। लेकिन पंरपरा में बदलाव के रूप में कई थारू परिवारों ने हिंदुओं की तरह रोशनी के साथ दिवाली मनाना शुरू कर दिया। होली थारू के लिए एक विशेष त्यौहार है और इसे एक महीने तक मनाया जाता है।[9]

थारू महिलाओं की स्थिति के मामले में यह परिदृश्य काफी दिलचस्प है कि थारू महिलाएं समाज में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। वे पुरुष समकक्ष की अनुमति के बिना कहीं भी जा सकती हैं। वे आर्थिक और सामाजिक मामलों में बराबर की हिस्सेदारी रखती हैं। थारू जनजाति में इनकी प्रतिष्ठा अन्य जनजातियों की तुलना में बहुत अधिक है। हालाँकि थारू पितृसत्ता का पालन करते हैं। महिलाओं को समान रूप से अपनी स्थिति बनाए रखने के सभी अधिकार हैं। थारू समुदाय में, थारू महिलाओं को एक बहुत ही प्रभावशाली और उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए जाना जाता है। डी.एन. मजूमदार, अमीर हसन और आर.पी. श्रीवास्तव सभी ने अपने कार्यों में इस तथ्य का समर्थन किया। थारू महिलाएं इस प्रभुत्व को राजपूत वंश से उनकी उत्पत्ति के आधार पर परिभाषित करती है।[10]

थारूओं में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन–

आजादी के बाद सरकार द्वारा उठाए गए निरंतर विकास कार्यक्रमों और क्षेत्र में गैर–आदिवासी समुदायों के साथ बढ़ते संपर्क के कारण थारूओं के बीच सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन आया है। सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन का विमर्श 19वीं सदी के अंत और 20वीं

सदी के आरंभिक काल में इस कल्पना के साथ उभरा कि समाज अपने प्रारंभिक आदिम जीवन से कैसे जुड़े। चार्ल्स डार्विन ने विकासवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया। यही वह समय था जब ऑगस्टे कॉम्टे, जॉन स्टुअर्ट मिल, कार्ल मैक्स और हर्बर्ट स्पेंसर आदि जैसे समाजशास्त्रियों द्वारा मानव समाज के परिवर्तन का विश्लेषण करने के कई तरीकों का सिद्धांत तैयार किया गया था। भारत में जनजातियाँ अपनी पारंपरिक संस्कृति और रीति–रिवाजों के मामले में बहुत समृद्ध हैं। वे अनोखी प्रकार की संस्कृति और परंपराओं का पालन करते हैं। उनकी संस्कृति उस क्षेत्र के प्राकृतिक वातावरण से काफी हद तक संबंधित है जहां वे रहते हैं। उनके अपने क्षेत्र हैं जिनमें आदिवासी समुदाय जीवित रहने की आम धारणा के साथ एक साथ रहते हैं। ए.सी. सिन्हा बताते हैं कि आदिवासी समुदाय पारिस्थितिकी, जनसांख्यिकी, अर्थव्यवस्था, राजनीति और अन्य जातीय समूहों में अलग–थलग हैं। ऐसी ऐतिहासिक छवि आदिवासी समुदायों को गैर–आदिवासी से अलग करती है और उन्हें आदिवासी पहचान प्रदान करती है। लेकिन तथाकथित सभ्य लोगों के निरंतर व्यवधान से ये विशिष्ट विशेषताएं बहुत प्रभावित हुई हैं। थारू संस्कृति में गैर–आदिवासियों के लगातार हस्तक्षेप के कारण परिवर्तन हुए हैं। समय बीतने के साथ–साथ आदिवासी लोगों के बीच उनकी अद्‌भुत संस्कृति और परंपराओं का महत्व कम होने लगा है। समुदाय के भीतर एक सामान्य बेचैनी महसूस की जा रही है क्योंकि वे इस संक्रमण से गुजर रहे है।[11]

शैक्षिक विकास

किसी भी समाज या जनजाति का शैक्षिक विकास शिक्षा की पहुंच से जुड़ा होता है, ताकि वे अन्य विकसित समाजों में बाकियों के साथ समान रूप से प्रतिस्पर्धा कर सकें। यह चिंता का विषय है कि थारू जनजातियाँ शिक्षा के प्रति कम जागरूक हैं। पिछले दशकों के दौरान, थारू लोगों को पढ़ने और लिखने का ज्ञान प्राप्त करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। माता–पिता द्वारा बच्चों को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के लिए पारिवारिक शिक्षा ही दी जाती थी, ताकि वे समाज में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सकें। बच्चे रोजमर्रा के कामों में अपने माता–पिता की मदद करते हैं और धीरे–धीरे आर्थिक कार्यों को संभालना सीख जाते हैं इसीलिए औपचारिक रूप से शिक्षा थारू जनजाति के लिए शून्य है। लेकिन अब थारूओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है और यह समझ बढ़ी है कि उज्जवल भविष्य के लिए शिक्षा जरूरी है। थारू उन कई भारतीय समुदायों में से एक है जिन्हें अपने निवास क्षेत्र के शैक्षणिक संस्थानों के बारे में भी जानकारी नहीं है। यहां कई शैक्षणिक संगठन और संस्थाएं हैं लेकिन समुदाय में शिक्षित लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। थारूओं में शिक्षित लोग जल्दी नौकरी चाहते हैं, यही एक कारण है कि वे उच्च शिक्षा का विकल्प नहीं चुनते हैं। इस धारणा के पीछे एक और कारण यह भी हो सकता है कि वे आर्थिक रूप से बहुत मजबूत नहीं हैं।[12]

आधुनिकीकरण

ब्रिटिश शासन से आजादी के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारत में आधुनिकीकरण एक विमर्श के रूप में उभरा। विनियामक और स्थापत्य आदर्श थे। देश को आर्थिक रूप से विकसित और सामाजिक रूप से समतावादी बनाने के लिए पुनर्निमाण करना था। इस विचार पर बहुत बहस हुई और अंततः इसे भारतीय संविधान द्वारा अपनाया गया। आधुनिकीकरण सिद्धांत का उपयोग पारंपरिक समाज से आधुनिक समाज में बदलाव को समझाने के लिए एक

उपकरण के रूप में किया गया था। यह अवधारणा 1950 के दशक के दौरान उत्पन्न हुई और पश्चिमी बुद्धिजीवियों में उभरी आधुनिकीकरण के सिद्धांत का उपयोग सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को दर्शाने के लिए किया गया है और परिवर्तन समूहों में होते हैं, अलगाव में नहीं। उदाहरण के लिए आर्थिक आधुनिकीकरण। ''आर्थिक आधुनिकीकरण (श्रम का बढ़ता विभाजन, वाणिज्यिक बाजारों के लिए निर्माण, बेहतर प्रौद्योगिकी, पेशेवर प्रबंधन) अपने साथ शहरीकरण, साक्षरता और पारंपरिक प्राधिकरण में गिरावट लाता है।'' आधुनिकीकरण के सामाजिक पहलुओं और आर्थिक पहलुओं के बीच एक अच्छे संबंध को स्वीकार किया गया है। विश्व मूल्य सर्वेक्षण के विभिन्न संस्करण, जो बढ़ते व्यक्तिवाद और बढ़ती समृद्धि के बीच एक सामान्य दृढ़ संबंध पाते हैं। थारू समाज के सामाजिक परिवर्तन के बारे में एस.सी. वर्मा कहते हैं कि, युवा किसी भी समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, वे समाज में किसी भी धारा के विकास के सभी क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। थारू युवा भी इस मामले में काफी प्रगति ील हैं, उनमें से कुछ स्कूल शिक्षक के रूप में, पुलिस सेवा में कार्यरत हैं और कुछ ग्रामीण स्तर पर राजनीति में रुचि रखते हैं। भले ही वे विकासात्मक परियोजना से जुड़े नहीं होते हैं। वर्मा के अनुसार, उनमें न तो उन्नति है और न ही अपनी परंपरा और संस्कृति के प्रति जागरूकता। थारू समुदाय से बड़ी संख्या में युवा बदलाव चाहते हैं, इसलिए वे अपने पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा कर रहे हैं। थारू समाज में परिवर्तन की इस प्रकार की धारणा आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण है।[13]

संस्कृतिकरण

एम.एन. श्रीनिवास ने भारत की हिंदू जातियों के बीच सामाजिक परिर्तन या संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के रूप में संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रस्ताव रखा है। उन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म में सामाजिक परिवर्तन की कुछ विशेषताओं को समझाने के लिए इस अवधारणा को सामने रखा। श्रीनिवास के अनुसार, भील और ओरॉव जैसे कुछ आदिवासी समुदायों में भी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया हो रही है। श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया (1966) में कहा है, ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा एक निम्न हिंदू जाति, या आदिवासी या अन्य समूह, अपने रीति–रिवाजों, अनुष्ठानों, विचारधारा और जीवन के तरीके को उच्च दिशा में और बार–बार बदलता है। मूल रूप से ये परिवर्तन क्षेत्र के स्थानीय समुदायों द्वारा ऐतिहासिक रूप से स्वीकृत दावेदार स्थिति या जाति की तुलना में सामाजिक पदानुक्रम में एक उच्च स्थान प्राप्त करने के दावे द्वारा पीछा किए जाते हैं। यह एक समय लेने वाली प्रक्रिया है, आम तौर पर प्रकटीकरण के समय को स्वीकार करने से पहले इसमें एक लंबी अवधि, वास्तव में, एक पीढ़ी या उससे भी अधिक समय लगता है। आममौर पर, दावेदार की स्थिति में यह बदलाव मौजूदा पड़ोसी जातियों द्वारा स्वीकार्य नहीं होता है, लेकिन समय के साथ एक या दो पीढ़ी के अंतर से, दावेदार की स्थिति पड़ोसी जातियों द्वारा स्वीकार कर ली जाती है। यह स्थापित ढांचे के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक गतिशीलता को दर्शाता है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया आमतौर पर उस समूह की स्थिति को प्रभावित करती है जो स्थानीय सामाजिक पदानुक्रम में उच्च स्थान प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है। श्रीनिवास ने यह भी पुष्टि की कि यह अवधारणा आदिवासियों और अर्ध आदिवासी समूहों के संबंध में भी प्रासंगिक है।

हिंदूकरण

उत्तर प्रदेश के साथ–साथ भारत के अन्य हिस्सों में लंबे समय से आदिवासी समुदायों में हिंदूकरण एक प्रमख घटना रही है। उत्तर प्रदेश की थारू जनजातियाँ भी इसका अपवाद नहीं है। वे उस राज्य में रह रहे हैं जहाँ संख्यात्मक रूप से हिंदू जातियाँ प्रमुख हैं और थारू हिंदू और मुस्लिम समुदायों से घिरे हुए हैं। यू.पी. की जनजातियों ने पड़ोसी गैर–आदिवासियों के साथ अपने नेटवर्क का विस्तार किया है। इस प्रकार, क्षेत्र में हिंदूकरण की प्रक्रिया अधिक प्रभावी है। हिंदू धर्म के प्रति आदिवासियों के आकर्षण का मुख्य कारण हिन्दू समारोह, रीति–रिवाज और मान्यताएं हो सकती हैं जो जनजातियों की संस्कृति और प्रथाओं से संशोधित हैं। जनजातीय क्षेत्रों में सबसे पहले अप्रवासी हिन्दू थे। आदिवासियों के बीच सामाजिक परिवर्तन बीसवीं सदी में शुरू हुआ, विशेषकर पहाड़ी जनजातियों के बीच। भारत की जनगणना, 1901, मद्रास में कहा गया है : ''जंगल और पहाड़ी जनजातियाँ, हालांकि, अपने पड़ोसियों के ब्राह्मण रीति–रिवाजों के साथ संपर्क के परिणामस्वरूप, हिंदूकरण या बल्कि ब्राह्मणीकरण की धीमी प्रक्रिया से गुजरने के लिए जानी जाती है। मैदानी इलाकों में, और अक्सर हिंदू देवताओं के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा व्यक्त करते हैं, जबकि वे एक साथ अपने मूल आध्यात्मिक देवताओं की पूजा करते हैं।[14]

निष्कर्ष

थारू जनजाति की संस्कृति अद्‌भुत है क्योंकि यह प्रकृति से बहुत जुड़ी हुई है और एक अच्छे प्रकार के सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। वे अपनी महिलाओं और परिवार का सम्मान करते हैं। उनके बीच घनिष्ठ संबंध है और अपने बड़ों के प्रति बहुत सम्मान है। वे प्रकृति की गोद में रहते हैं इसलिए उनकी धार्मिक प्रथाएँ प्रकृति से बहुत जुड़ी हुई हैं। वे प्रकृति, अलौकिक शक्ति, आत्माओं, आत्मा और पूर्वजों में दृढ़ता से विश्वास करते हैं। उनके त्यौहार पर्यावरण–अनुकूल हैं, लेकिन हिंदू संस्कृति के प्रभाव के कारण वे होली और दिवाली जैसे हिंदुओं के त्योहार भी मनाते हैं। वे मुख्य रूप से कृषक हैं और स्थायी गांवों में रहते हैं। थारू महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है। परिवार के पुरुष और महिलाएं कृशि कार्य में लगे हुए हैं। थारूओं की महिलाओं को गैर–आदिवासी समुदायों की महिलाओं की तुलना में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। लेकिन समय बीतने के साथ और जिस क्षेत्र में वे रहते हैं वहां आधुनिकीकरण, शैक्षिक विकास और गैर–आदिवासी पड़ोसियों के साथ निरंतर संपर्क के कारण, उन्होंने अपने मूल सामाजिक–सांस्कृतिक मानदंडो और मूल्यों को खोना भाुरू कर दिया है और उन्हें सामाजिक परिवर्तन की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। आधुनिकीकरण और हिंदूकरण के बढ़ते प्रभाव ने थारू जनजातियों की पारंपरिक संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि संस्कृति–संस्कार के इस तरह के प्रभाव ने थारू संस्कृति को प्रकृति में बहुत गतिशील बना दिया और समय के साथ यह हिंदुओं की प्रमुख संस्कृति से भी प्रभावित हुई। थारू प्रकृति से निकटता से जुड़े हुए हैं लेकिन हिंदू आबादी के प्रभाव के कारण उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं में व्यापक परिवर्तन आया है।

❐

सन्दर्भ –

1- *S.K. Shrivastava, The Tharu : A study in culture dynamics, 1958. Agra, Agra university press, 2001, Census, Government of India.*
2- *S.C. Verma, "The Eco-friendly Tharu Tribe : A Study in Socio-cultural Dynamics", 2010, Journal of Asia Pacific Studies (2010) Vol. 1, No. 2, 177-187.*
3- *Sameera Maiti, The Tharu : their arts and crafts, 2004, New Delhi, Northern Book Centre., p.52.*
4- *D.N. Majumdar, the Fortunes of Primitive Tribes, 1944, Lucknow, The Universal publishers Limited.*
5- *W. Crooke, The Tribes and Castes of the north-western provinces and oudh, 1896, Calcutta, Office of the superintendent of government prininting, volume 1.*
6- *D.N. Majumdar, " Tharus and their blood groups", 1942, Journal of Royal Asiatics Society of Bengal, Vol. VIII, No.1.*
7- *R.P. Srivastava, "Blood groups in the tharus of Uttar Pradesh and their bearing on ethnic and genetic relationships", 1965, http://www.jstor.org/stable/41448701.*
8- *Alochana Sahoo, "Traditionalism and Globalization : A Discourse on Tribal Transformation", op. cit., p. 92, opcit.*
9- *Narendra S. Bisht, & et al. (eds.). Encyclopedic Ethnography of the Himalayan Tribes : A.D. 2004, Delhi, Global vision publishing house.*
10- *Sameera Maiti, "Tribal Arts and Crafts : A Study among the Tharu of Uttar Praesh", 2001, Indian Anthropologist, Vol.31, No. 2, p. 46.*
11- *Alochana Sahoo, "Traditionalism and Globalization : A discourse on tribal transformation.*
12- *Yogendra Singh, "Modernization and Its Contradictions : Contemporary Social Changes in In dia", Polish Sociological Revieow, No. 178, 2012, pp.151-166, www.jstor.com.*
13- *M.N. Srinivas, Social Change in Modern India, 1995, New Delhi, Orient Blackswan. p.6.*
14- *S.C. Verma, "The Eco-friendly Tharu Tribe : A Study in Socio-cultural Dynamics", op.cit.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 64–77

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

लखनऊ शहर
रिक्शा चालकों के उत्पीड़न का समाजशास्त्रीय अध्ययन

मिलिन्द सेन
शोधार्थी, सामाजिक बहिष्कृत और समावेशी नीति अध्ययन केन्द्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद (तेलंगाना) 500032
Email: senmilindsen@gmail.com Mob- No 8858844921

सारांश

रिक्शा चालक भारतीय समाज का सबसे उत्पीडित समुदाय है, जिनमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, धार्मिक अल्पसंख्यक में मुख्य रूप से मुस्लिम और अन्य आर्थिक रूप से कमजोर लोग शामिल हैं। इस रोजगार में बड़े पैमाने पर अकुशल ग्रामीण प्रवासी, विशेष रूप से उत्तर भारत के राज्यों में पाए जाते हैं। जबकि, लखनऊ में नब्बे प्रतिशत से अधिक रिक्शा चालक अपने पड़ोसी जिलों उत्तर प्रदेश और बिहार से आते हैं, प्रस्तुत शोध–आलेख में लखनऊ शहर के विभिन्न स्थानों को शामिल किया गया जहाँ बहुतायत मात्रा में इनकी संख्या रोजगार की तलास में भटकती दिखाई पड़ती है जैसे लखनऊ का रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, व्यावसायिक क्षेत्र, आवासीय क्षेत्र और प्रशासनिक क्षेत्र इत्यादि।

अध्ययन की प्रमाणिकता को दृष्टि में रखते हुए इस आलेख में तीन सौ पचास रिक्शा चालक शामिल किये गए हैं। जिसमें अस्थायी या चक्रीय प्रवास के प्राथमिक कारणों की जांच की गई है और उनके पिछले व्यवसाय, भूमिहीनता, शिक्षा का स्तर, आयु, वैवाहिक स्थिति, जाति, धर्म, प्रमुख निवास स्थान, स्वास्थ्य की स्थिति, आवास की स्थिति और लखनऊ शहर में अन्य बुनियादी सुविधाएं शामिल किया गया है। इस क्रम में रिक्शा चालकों के सामने आने वाली कई समस्याओं का पता लगाया गया है, जैसे सामाजिक–आर्थिक स्थिति का खराब होना, अल्प आय, गरीबी और रोजगार की कमी का होना।

मूलशब्द– रिक्शा, पलायन, प्रवासन, हाशिए, उत्पीड़न, पर लोग, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, गरीबी

प्रस्तावना

1. रिक्शा उत्पत्ति – एक ऐतिहासिक अध्ययन

रिक्शा शब्द की उत्पत्ति जापानी शब्द जिनरिकिशा से हुई है, जहाँ "जिन" का अर्थ है मानव, जबकि "रिकी" का अर्थ है शक्ति या बल और अंतिम शब्द शाश्का अर्थ है वाहन जिसका शाब्दिक अर्थ है "मानव–चालित वाहन"।[1] रिक्शा, जिसे सबसे पहले 1860 के दशक के अंत में जापान में विकसित किया गया था, प्राथमिक या पूर्ववर्ती, सेडान कुर्सी।[2] पर एक स्पष्ट तकनीकि उन्नति का प्रतिनिधित्व करता था, इस तरह का तकनीकि विकास 1864 में शंघाई और हांगकांग, 1880 में सिंगापुर, 1886 में बीजिंग और दक्षिण–पूर्व एशिया और अफ्रीका में देखा जा सकता था। रिक्शा को सबसे पहले 1880 में भारत के शिमला शहर और बाद में कोलकाता में व्यवसाय के रूप में उपयोग में लिया गया था। 8वीं शताब्दी के अंत में, रिक्शा 1900 के दशक की शुरुआत में (छोटी दूरी के लिए एक व्यक्तिगत) परिवहन के प्रमुख साधनों में से एक बन गया था ।[3] इस समय, रिक्शा का उपयोग सामाजिक अभिजात वर्ग के लिए परिवहन के साधन के रूप में उपयोग किया गया, और अभी भी, यह शहरी परिवहन प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, खासकर तीसरी दुनिया के देशों के कस्बों, शहरों में, जहाँ सड़कें–जोड़ने वाली और बहुत सकरी हैं जिन पर मोटर वाहन आसानी से नहीं चल सकते। आज भी, रिक्शा एकमात्र परिवहन प्रणाली है जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा प्रदान करता है।[4] यहाँ तक कि, उत्तर प्रदेश बीमारू राज्यों में से एक है।[5], लेकिन वर्तमान विकास गतिविधियाँ और बेहतर शहरी सुविधाएँ जैसे परिवहन, बेहतर स्वास्थ्य सेवा, परिधि में बेहतर शैक्षणिक संस्थान और शहरों में बेहतर नौकरी के अवसर ग्रामीण निवासियों को आकर्षित करते हैं।[6] उत्तर प्रदेश के शहरों और कस्बों में लगभग 3 लाख पंजीकृत रिक्शा चालक हैं। लखनऊ में 56,832 रिक्शा चालक हैं, 37,445 पंजीकृत रिक्शा चालक हैं, और 19,487 पंजीकृत होने बाकी हैं।[7] रिक्शा चालक भारतीय समाज के हाशिए पर पड़े तबके से आते हैं, उनकी स्थिति दिन–प्रतिदिन खराब होती जा रही है, खासकर ग्रामीण इलाकों में, जहाँ 68 प्रतिशत से अधिक आबादी रहती है। इन में बेरोजगारी, अशिक्षा, अस्वास्थ्यकर स्वास्थ्य की स्थिति और संसाधनों और परिसंपत्तियों के वितरण के संबंध में भेदभाव आम बात है।[8] अधिकांश रिक्शा चालकों का जीवन कठिन है, काम की प्रकृति कठिन है और रहने की स्थिति खराब है।

रिक्शा चलाना भले ही कितना भी कष्टदायक क्यों न रहा हो, लेकिन इससे गांवों में मिलने वाली आय से बेहतर आय मिलती।[9] क्योंकि, रिक्शा चालक बहुत ही गरीब सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं जो पुरानी गरीबी।[10] की विशेषताओं के अनुरूप है, इस प्रकार, उनमें से अधिकांश बेहतर आजीविका के साधन प्राप्त करने के लिए रोजगार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन करते हैं।[11] लेकिन वास्तव में उनकी उम्मीदें शायद ही कभी पूरी होती हैं।[12] अगर हम इतिहास के पन्नों को पलटें, तो हम पाते हैं कि रिक्शा चलाने का काम औपनिवेशिक काल के दौरान भी भारतीय परंपरा का हिस्सा रहा है। उदाहरण के लिए, सिंगापुर के इतिहास में रिक्शा और रिक्शा चालकों द्वारा निभाई गई कुली (श्रम कार्य का एक और रूप) व्यवसाय की सामाजिक व्यवस्था और कुलियों द्वारा दिया जाने वाला हाशिए का जीवन।[13] यह

व्यवसाय ग्रामीण पुरानी गरीबों में से उन लोगों के लिए मामूली ऊपर की ओर गतिशीलता का मार्ग प्रदान करता है जो काम के लिए शहर आते हैं। रिक्शा चालकों को स्वास्थ्य संबंधी जोखिम होने का खतरा होता है। यह पेशा एक अस्थिर आजीविका का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि प्रारंभिक कल्याण लाभ इस पेशे में योगदान की लंबाई के साथ इंगित करता है। इस प्रकार, इस व्यवसाय मं् अंतर–पीढ़ीगत गतिशीलता ने उनके बच्चों के लिए अन्य काम के विकल्प सीमित कर दिए।[14] रिक्शा चालकों को कानून लागू करने वाली एजेंसियों, यात्रियों और मोटर चालित वाहनों के श्रमिकों और कुछ मामलों में रिक्शा मालिकों द्वारा उपेक्षित और परेशान किया जाता है। आम तौर पर, वे महीनों तक अपने परिवार से दूर शहर में एक घटिया जीवन जीते हैं। इस प्रकार, श्रमिक के रूप में उनका अधिकार एक बड़ा मुद्दा है। इसके अलावा, रिक्शा चालकों की ये बड़ी संख्या बुनियादी सुविधाओं और श्रमिक के रूप में बुनियादी अधिकारों से वंचित हो रही है।[15]

2. सर्वेक्षण विधि

यह अध्ययन क्षेत्र सर्वेक्षण पर आधारित है, जो अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022 तक प्रत्यक्ष प्रश्नावली, क्षेत्र अवलोकन और साक्षात्कार पद्धति के माध्यम से किया गया था। इस अध्ययन की प्रकृति को शोध समस्या की बेहतर समझ प्राप्त करने के लिए मात्रात्मक और गुणात्मक विधियों के साथ जोड़ा गया है। लखनऊ शहर के विभिन्न शहरी बिंदुओं जैसे रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, शॉपिंग मॉल, केंद्रीय व्यापार जिला (सीबीडी), प्रशासनिक क्षेत्रों और आवासीय क्षेत्रों से उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण विधि द्वारा 350 रिक्शा चालकों का साक्षात्कार लिया गया है।

सामग्री संकलन के दौरान उत्तरदाताओं के विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच सामाजिक–आर्थिक, जनसांख्यिकीय प्रोफाइल और प्रवास के कारणों को ध्यान में रखा गया है। सांख्यिकीय डेटा विश्लेषण SPSS सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर पैकेज 25 संस्करण के माध्यम से किया गया था और वर्णनात्मक सांख्यिकीय विश्लेषण, चार्ट, आवृत्ति, प्रतिशत, तालिकाओं, आंकड़ों और व्यक्तिगत केस अध्ययन विधियों पर विचार किया गया था।

3. लखनऊ शहर का भौगोलिक क्षेत्र और जन सांख्यिकीय ऑकड़ा

लखनऊ शहर का भौगोलिक विस्तार 26^0 30^0 और 27^0 10^0 उत्तरी अक्षांश और 80^0 30^0 और 81^0 13^0 पूर्वी देशांतर के बीच है। इसके पड़ोसी जिले उत्तर दिशा में सीतापुर जिला, पूर्व दिशा में बाराबंकी जिला, दक्षिण दिशा में रायबरेली जिला, उत्तर पश्चिम दिशा में हरदोई जिला और दक्षिण पश्चिम में उन्नाव जिला स्थित है। लखनऊ समुद्र तल से 125 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 2528 वर्ग किमी है और उत्तर से दक्षिण की लंबाई 73 किमी और पूर्व से पश्चिम की लंबाई 52 किमी है।[16] इस बीच, लखनऊ नगर निगम क्षेत्र 348.80 वर्ग़ किलोमीटर, शहरी जनसंख्या 28.17 लाख, पुरुष 14.60 लाख और महिला 13.56 लाख, और लखनऊ छावनी क्षेत्र 27.56 वर्ग किलोमीटर, जनसंख्या 630003, पुरुष 36586 और महिला 26417।[17]

आकड़ों का विश्लेषण और व्याख्या

4.लखनऊ शहर के रिक्शा चालकों की सामाजिक–आर्थिक और जनसांख्यिकीय ऑकड़ा

रिक्शा चालक भारतीय समाज का सबसे वंचित वर्ग है। वे कृषि संकट और स्थानीय नौकरी के अवसरों की कमी के कारण ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्र का निवासी है। रिक्शा चालक अशिक्षित, गरीब, कौशल बिहीन होते हैं । इसलिए असंगठित श्रम बाजार में कोई दूसरा रोजगार आसानी से न उपलब्ध होने के कारण इन्हें जीविका निर्वहन हेतु मजबूरी बस रिक्शा व्यवसाय करना पड़ता है। इस व्यवसाय में इन्हें आसानी से तुरंत आय सुलभ होता है जिसके लिए किसी प्रकार की शिक्षा और तकनीकि प्रशिक्षण की आवश्यकता भी नहीं होती है । जिससे वे अपने परिवार के सदस्यों का भरण–पोषण करते हैं। जबकि सर्वविदित है कि ज्यादातर रिक्शा चालक भूमिहीन मजदूर, कृषि मजदूर, दिहाड़ी मजदूर और अन्य छोटे–मोटे कामगार होते थे परन्तु निरंतर रोजगार न मिलने की वजह से रिक्शा जैसा पेशा चुनना पड़ा जबकि यह बेहद कठिन शरीरिक श्रम होता है। अधिकतर रिक्शा चालक उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों के विभिन्न जिलों से रोजगार की तलाश में आते हैं जिसे हम नीचे दी गयी (तालिका 1 में देख) सकते हैं।

तालिका 1– रिक्शाचालकों का मूल स्थान प्रतिशत

रिक्शा चालकों का मूल स्थान	**प्रतिशत**
प्रवासी	86.0
गैर–प्रवासी (स्थानीय)	14.0
कुल योग	100
राज्य	**प्रतिशत**
उत्तर प्रदेश	97.4
बिहार	2.0
पंजाब	0.3
तेलंगाना	0.3
कुल योग	**100**

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

जिसे उपरोक्त तालिका के समझ सकते हैं कि उनमें से 86 प्रतिशत प्रवासी विभिन्न पड़ोसी जिलों से लखनऊ शहर में रोजगार तलाश हेतु आया हुआ पाया गया और 14 प्रतिशत लखनऊ के स्थानीय क्षेत्र से आए हैं। उनमें से भी 97.4 प्रतिशत उत्तरदाता उत्तर प्रदेश से, 7 प्रतिशत बिहार से और न्यूनतम प्रतिशत अन्य राज्यों (पंजाब और तेलंगाना) से हैं।

पाई चार्ट 1– आयु अनुसार रिक्शाचालक

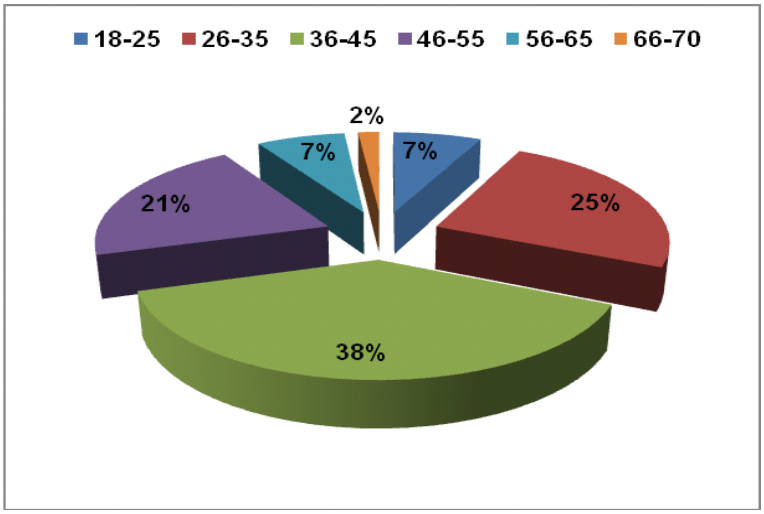

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

पाई चार्ट–1. से पता चलता है कि 63 प्रतिशत से अधिक आयु वर्ग 18–45 वर्ष, 32 प्रतिशत 46–65 वर्ष के बीच हैं जबकि (2 प्रतिशत) न्यूनतम संख्या 66 वर्ष से कम हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि रिक्शा खींचने के लिए शारीरिक फिटनेस की आवश्यकता होती है। यहां तक कि, ई–रिक्शा जैसे विभिन्न आधुनिक परिवाहन साधनों की वजह से पूर्व मानव चालक रिक्शा, चालकों का व्यवसाय खतरें में पड़ गया है क्योंकि ई–रिक्शा की वजह से वे बेरोजगार हो चुके और अपने को ठगे से महसूस कर रहे हैं। परन्तु आवश्यकतानुसार इन रिक्शा चालकों को उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, दिल्ली और बिहार शहरी क्षेत्रों में रोजगार के लिए जद्दोजहद करते दिखाई देते हैं।

5. भुक्तभोगी रिक्शा चालक और अध्येता आधारित साक्षात्कार

दलित समुदाय से ताल्लुक रखने वाले पप्पू 30 वर्षीय रिक्शा चालक हैं। वह लगभग 14 वर्ष की आयु में सीतापुर से लखनऊ आ गए थे। उन्होंने कहा, "मैंने प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा ली, लेकिन परिवार पर वित्तीय बोझ के कारण मुझे पढ़ाई छोड़नी पड़ी। फिर, मैंने एक स्थानीय भट्ठा (ईंट–भट्ठा) में ईंट बनाने वाले श्रमिक के रूप में काम करना शुरू किया। चर्चा के दौरान मुझे पता चला कि पप्पू बहुत कम मजदूरी पर कुछ दैनिक कार्य करता था जिससे वह अपनी परिवारिक आर्थिक जरूरत पूर्ण नहीं पाता था इसलिए वह लखनऊ शहर में आ पहुंचा। दिलचस्प बात यह है कि उसे शुरूआती समय में कोई अन्य कार्य नहीं मिला तो उसकी मुलाकात अपने एक पूर्व ग्रामीण दोस्त से हुई जो पहले से ही रिक्शा चला रहा था। इसलिए उसने अपने दोस्त को रिक्शा चलाने का सुझाव दिया और उसने प्रमाणिकता के रुप में किराये के रिक्शा दिलाने की गारंटी ली क्योंकि रिक्शा चलाने के लिए पहचान की भी जरूरत होती क्योंकि वह रिक्शा शहर में पहले से मौजूद किसी रिक्शा व्यापारी के पास किराए के लिए होता है। कुछ

दिन बाद ही पप्पू ने स्वयं रिक्शा मालिक के साथ अच्छा तालमेल बना लिया है इसलिए कुछ दिन बाद उसे किसी गारंटर की तलाश करने की जरूरत नहीं रही है। दिनभर रिक्शा चलाने के बाद उसे अक्सर थक हार कर रिक्शा पर ही सोना पड़ता है जिसका प्रमुख कारण मेहनत ज्यादा और आमदनी कम होना है। बात यहीं पर समाप्त नहीं हुई उन्होंने चर्चा में ही बताया की सोना,खाना और अन्य दैनिक क्रिया की भी समस्याओं का भी मुझे प्रतिदिन सामना करना पड़ता है जिसकी वजह से हम सभी रिक्शा चालक सदैव अस्वस्थ्य ही रहते हैं और दिनभर के मिले कमाई का अधिकतम हिस्सा इलाज में ही खतम हो जाता हो जिससे हमारी आर्थिक स्थिति खराब हो रही है।

चित्र 1– रिक्शाचालकों की प्रतिदिन औसत आय

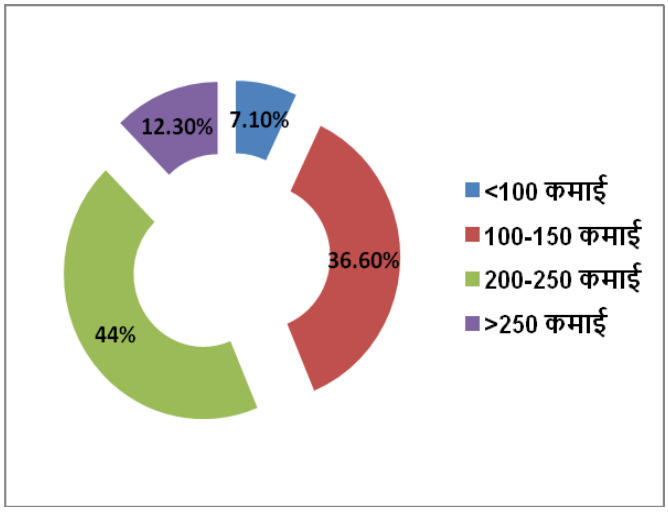

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

चित्र 1 से पता चलता है कि रिक्शा चालकों (87.7 प्रतिशत) की दैनिक औसत कमाई 250 रुपये है, जबकि केवल 12.3 प्रतिशत ही 250 रुपये से अधिक कमाते हैं।

6. रिक्शा मालिक और आर्थिक शोषण एक गंभीर समस्या

पाई–चार्ट 2 से पता चलता है कि 40 प्रतिशत रिक्शा चालक पुराने रिक्शा को किराए पर लेने के लिए प्रतिदिन 30 से 40 रुपये का भुगतान करते हैं, जबकि नया रिक्शा किराए पर लेने वाले 55 प्रतिशत रिक्शा चालक रिक्शा मालिकों को प्रतिदिन 50–60 रुपये का भुगतान करते हैं और केवल 5 प्रतिशत रिक्शा मालिक खुद का रिक्शा चलाते हैं। अध्ययन में पाया गया है कि रिक्शा चालक कभी–कभी इतना पैसा नहीं कमा पाते कि वे रिक्शा का किराया दे सकें और दो वक्त का खाना भी खा सके जिसका मुख्य कारण ई–रिक्शा जैसे संसाधनों का बाजार में उपलब्ध होना और नागरिकों द्वारा इस आधुनिक परिवहन संसाधनों का पसंद किया जाना और परम्परागत रिक्शा और रिक्शा चालकों को अहमियत न देना। इस क्रम में यह भी पाया गया कि रिक्शा मालिकों का एक छोटा हिस्सा ऐसा है जो स्वयं रिक्शा चलाता है। परन्तु सबसे बड़ी समस्या है कि रिक्शा चालक जब समय पर रिक्शा मालिकों को निर्धारित की हुई राशी

नहीं जमा कर पाते तब उन्हें रिक्शा मालिकों द्वारा डाट–फटकार के आलावा गलियों का सामना भी करना पड़ता है। साथ कभी–कभी दबंग मालिकों द्वारा इन गरीब रिक्शा चालकों से दुगुना रकम भी वसूली जाती है जो उनके शोषण का प्रमुख कारण है।

पाई–चार्ट. 2– प्रतिदिन नए–पुराने रिक्शा का किराया

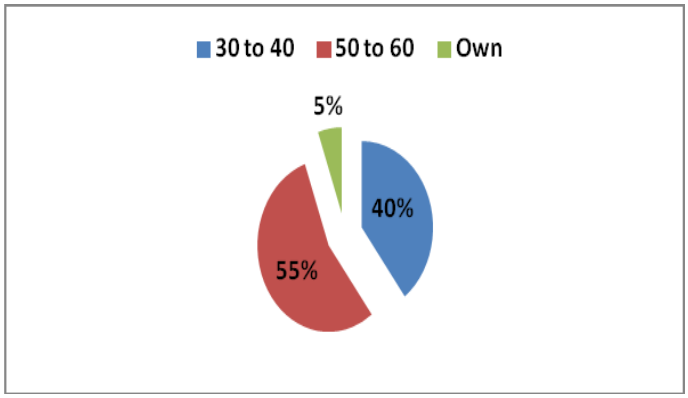

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

7. रिक्शा चालक रू कमाई और परिवारिक जिम्मेदारी का बोझ

चित्र 2 सर्वेक्षण डेटा दिखाता है कि 54.6 प्रतिशत के पास 4–7 परिवार के सदस्य हैं, 20 प्रतिशत के पास 8–9 प्रतिशत परिवार के सदस्य हैं, 4.3 प्रतिशत के पास 9 से अधिक आश्रित हैं जबकि 21.1 प्रतिशत या तो अकेले हैं या माता–पिता के साथ या कुछ दोनों के साथ रहते हैं। सर्वे में पाया गया कि ये सब गरीब सामाजिक–आर्थिक प भठभूमि होते हैं जिनकी खूबसूरती यह होती है कि ये आज भी परिवार में साथ–साथ रहते हैं और अधिकतर पूरे परिवार में एक कमाने और दस खाने वाले होते हैं। यही कारण है कि इन्हें प्रत्येक दिन आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जबकि सर्वविदित है कि इनके जीवन यापन के लिए 100–200 की प्रतिदिन की कमाई भरण–पो ाण के लिए अपर्याप्त है। रुपये बहुत कम राशि है। परन्तु बेवस और लाचार व्यक्ति जाये तो जाये कहा। इस सन्दर्भ में यह कहावत ठीक बैठती है कि 'मरता क्या न करता'।

चित्र.2– उत्तरदाताओं पर निर्भर परिवार के सदस्यों की संख्या

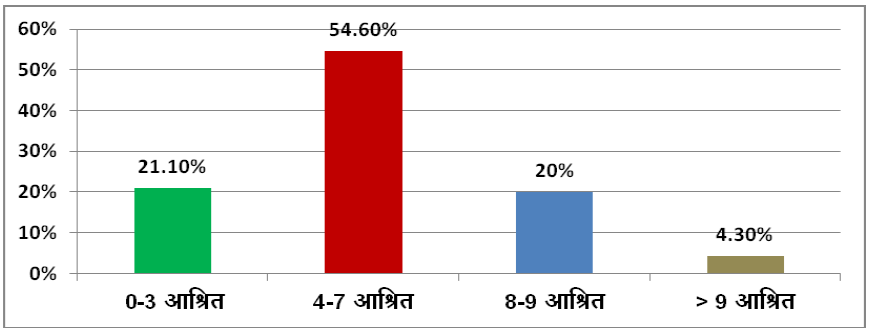

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

8. रिक्शा चालकों में पलायन की समस्या

पाई–चार्ट 3 से पता चलता है कि 86 प्रतिशत रिक्शा चालक नजदीकी शहरों से पलायन कर आये हैं जबकि केवल 14 प्रतिशत स्थानीय निवासी हैं। इसके अलावा, अधिकांश रिक्शा चालक अस्थायी प्रवासी हैं जो पैसे कमाने और अपने मूल स्थानों पर अपने परिवारों का भरण–पोषण करने के लिए लखनऊ आते हैं।

पाई–चार्ट.3– रिक्शा चालकों के मूल स्थान

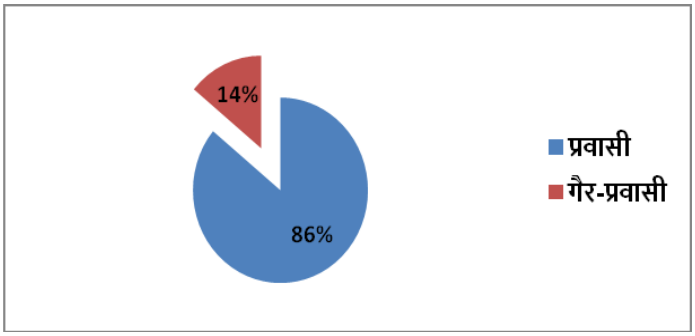

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

9.रिक्शा चालक पलायन और रोजगार

चित्र 3 से पता चलता है कि (55.1 प्रतिशत) अधिकांश रिक्शा चालक भूमिहीन श्रमिक हैं। जिनका आर्थिक संकट और चक्रीय गरीबी के कारण ग्रामीण क्षेत्रों से बाहर पलायन होता है। इसके अलावा, उत्तरदाताओं के पलायन के पीछे कई अन्य कारक भी हैं, 20 प्रतिशत बेरोजगारीध्स्थानीय रोजगार नहीं, 17.2 प्रतिशत कम मजदूरी, 5.4 प्रतिशत छोटे–मोटे काम, 1. 4 प्रतिशत पारिवारिक विवाद और 0.9 प्रतिशत मजबूरी में पलायन (प्राकृतिक आपदाएँ, सूखा, बाढ़, भूकंप, आग और राजनीतिक अस्थिरता)।

चित्र.3–रिक्शा चालकों के पलायन का मुख्य कारण

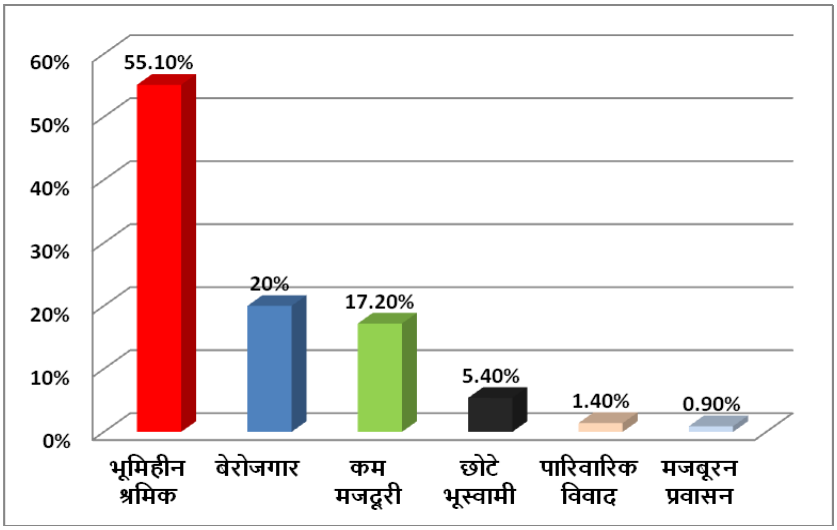

स्रोत– फील्ड सर्वे, अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

तालिका 2 से पता चलता है कि 57.1 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्व व्यवसाय दैनिक मजदूर थे, 9.7 प्रतिशत किसान, 7.4 प्रतिशत कृषि श्रमिक, 1.1 ईंट भट्ठा श्रमिक, 2.6 रिक्शा गैराज श्रमिक, 18 प्रतिशत बिना किसी काम के तथा शेष बढ़ई, जूता निर्माता, द्वारपाल या सड़क विक्रेता थे।

तालिका 2– रिक्शा चालकों का पिछला व्यवसाय

रिक्शा चालकों का पिछला व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
कृषि मजदूर	26	7.4
दिहाड़ी मजदूर'	200	57.1
ईंट भट्टा मजदूर	4	1.1
बढ़ई	3	0.9
किसान	34	9.7
रिक्शा गैराज मजदूर	9	2.6
जूता बनाने वाले	1	0.3
द्वारपाल	3	0.9
कुछ नहीं	66	18.9
स्ट्रीट वेंडर	4	1.1
कुल	**350**	**100.0**

स्रोत–क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022,'निर्माण श्रमिक शामिल

तालिका 2 से पता चलता है कि 57.1 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्व व्यवसाय दैनिक मजदूर थे, 9.7 प्रतिशत किसान, 7.4 प्रतिशत कृषि श्रमिक, 1.1 ईंट भट्ठा श्रमिक, 2.6 रिक्शा गैराज श्रमिक, 18 प्रतिशत बिना किसी काम के तथा शेष बढ़ई, जूता निर्माता, द्वारपाल या सड़क विक्रेता थे।

10. रिक्शा चालकों की धार्मिक और जातीय प्रतिशतता आधारित विवरण

चित्र 4 से पता चलता है कि 86.6 प्रतिशत उत्तरदाता हिंदू, 13.1 प्रतिशत मुस्लिम और न्यूनतम मात्रा में सिक्ख हैं। हालांकि, हिंदुओं में 42.3 प्रतिशत उत्तरदाता अनुसूचित जाति और 41.7 प्रतिशत : ओबीसी, 15.4 प्रतिशत : सामान्य और बहुत कम मात्रा (0.6 प्रतिशत) अनुसूचित जन जाति के रिक्शा चालक हैं। इस क्रम में लिए गए साक्षात्कार के मध्यम से रिक्शा चालक के यथार्थ से रूबरू हुआ जा सकता है जिसे जगतपाल के इस कथन से समझा जा सकताहै कि वे स्वयं एक रिक्शा चालक है। जगतपाल करीब 40 साल का है और वह गड़ेरिया समुदाय (ओबीसी) समुदाय से आता है । वह लगभग 16 साल की उम्र में रायबरेली से लखनऊ आकर बस गया था। उसने बताया कि उसके पास एक बीघा (0 .25 हेक्टेयर) उपजाऊ जमीन है, जिस पर उसके संयुक्त परिवार के सदस्य निर्भर हैं।

जगतपाल अपने मित्र मंडली की वजह से लखनऊ शहर में आसानी से पहुंचकर तुरंत कमाई के लिए रिक्शा चलाने के पेशे में प्रवेश किया। वह मुझे लखनऊ के पुराने शहर में मिला था और वह अपने पिता के साथ लंबे समय से लखनऊ में रह रहा है। अगर हम उसके सामाजिक प्रोफाइल को देखें तो पता चलता है कि वह अनपढ़, भूमिहीन तबके से है और पुराने लखनऊ शहर में उसका एक छोटा सा घर भी है। वह अपनी पत्नी, छह बच्चों, माता–पिता और भाई–बहनों के साथ संयुक्त रूप से यहाँ रहता है। चर्चा के दौरान उसने मुझे बताया, पहले मेरे पिता रिक्शा चलाते थे लेकिन अब मैं वही काम कर रहा हूँ। ऐसा लगता है कि उसके पास कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है जिससे वह आजीविका के लिए कोई अच्छी नौकरी पा सके। वह सुबह जल्दी उठता है और देर रात तक काम करता है लेकिन मुश्किल से 100–200 रुपये कमा पाता है।

चित्र.4– उत्तरदाताओं का धर्म व जाति

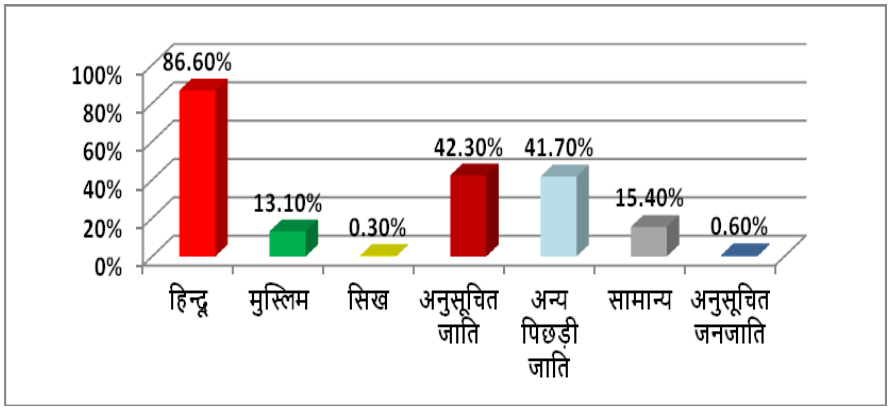

स्रोत– क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

11. रिक्शा चालक वैवाहिक स्थिति

पाई चार्ट 4 से पता चलता है कि 83 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं, 12 प्रतिशत अविवाहित हैं, और 4 प्रतिशत विधुर हैं जबकि केवल 1 प्रतिशत तलाकशुदा हैं। अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश उत्तरदाताओं ने अपने जीवन के शुरुआती चरण में ही शादी कर ली थी। वे गरीबी और खराब सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों से पीड़ित हैं।

पाई–चार्ट.4– उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

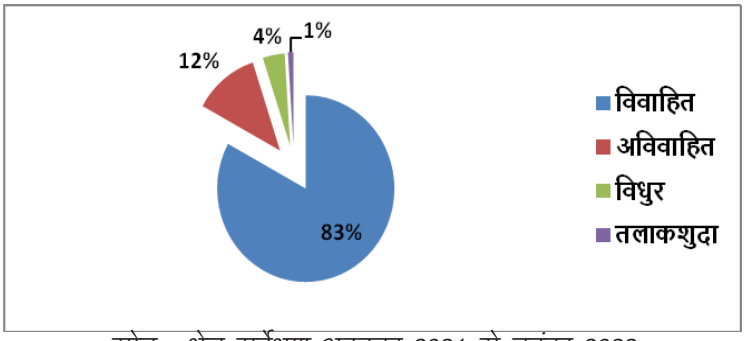

स्रोत– क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

12. रिक्शा चालक और शिक्षा का स्तर

चित्र 5 से पता चलता है कि 53.4 प्रतिशत उत्तरदाता निरक्षर थे, 20 प्रतिशत प्राथमिक, 12.9 प्रतिशत उच्च प्राथमिक, 12.0 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा स्तर के थे और केवल 1.4 प्रतिशत उत्तरदाता माध्यमिक शिक्षा योग्यता स्तर से ऊपर थे। खराब सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों और कम उम्र में पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण उन्हें उच्च शिक्षा से वंचित रखा

चित्र.5– उत्तरदाताओं का शैक्षिक स्तर

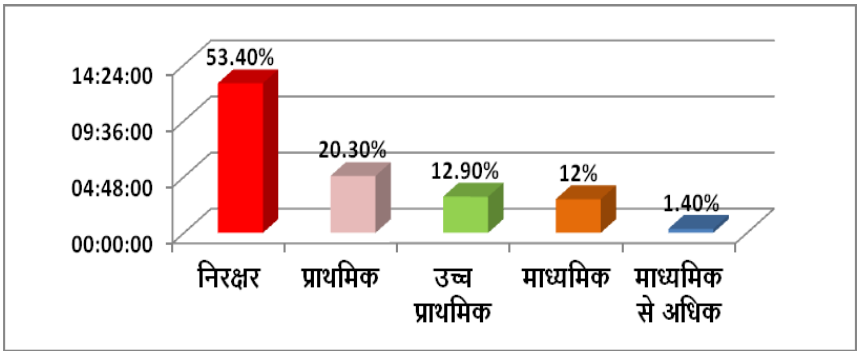

स्रोत– क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

13. रिक्शा चालकों की दैनीय आवासीय स्तर

चित्र 6 से पता चलता है कि 88 प्रतिशत रिक्शा चालक दैनीय परिस्थितियों में रहते हैं। वे फुटपाथ, झुग्गीझोपाड़ियों में रात गुजारते हैं या वे रात भर अपने रिक्शा पर ही सोते हैं। केवल 12 प्रतिशत उत्तरदाता किराए के मकानों में रहते हैं, जिसमें एक कमरा साझा किया जाता है। यह पाया गया कि 5 से 6 लोग झुग्गी–झोपड़ियों वाले इलाके में किराए पर कमरा लेते हैं। वे रसोई, शौचालय, बाथरूम और पीने के पानी को साझा करते हैं। इसके अधिकतर संख्या में ये शहर में मलिन बस्तियों में ही अपना जीवन यापन करते हैं।

चित्र.6– उत्तरदाताओं की जीवन स्थितियां

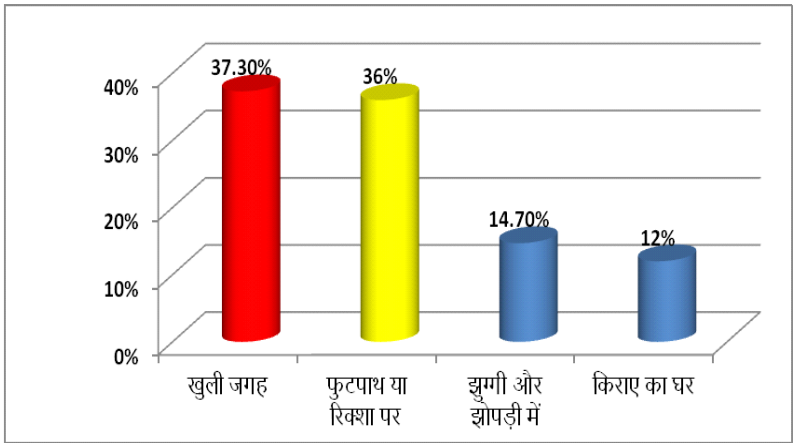

स्रोत– क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

14.रिक्शा चालकों में नशे की लत, स्वास्थ्य समस्याएं

चित्र 8 से पता चलता है कि 80 प्रतिशत से अधिक रिक्शा चालक तम्बाकू, धूम्रपान (73. 33 प्रतिशत), शराब (43.1 प्रतिशत) के आदी हैं, तथा 18.7 प्रतिशत कोई प्रतिक्रिया नहीं देते हैं। अधिकांश मेहनत कश अक्सर शरीर के दर्द से राहत पाने के लिए अपनी कमाई नशे की लत पर खर्च कर देते हैं जिससे इनके स्वास्थ्य और सामाजिक, आर्थिक स्तर में विपरीत असर पड़ता है।

चित्र. 8– रिक्शाचालकों की धूम्रपान, शराब पीने की पसंद

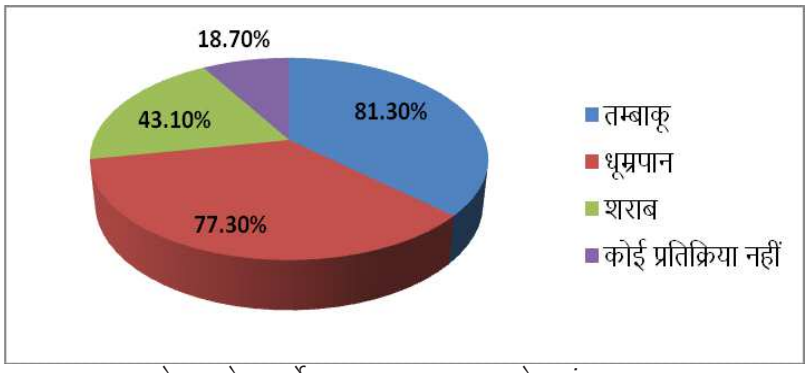

स्रोत– क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

चित्र. 9– रिक्शावालों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

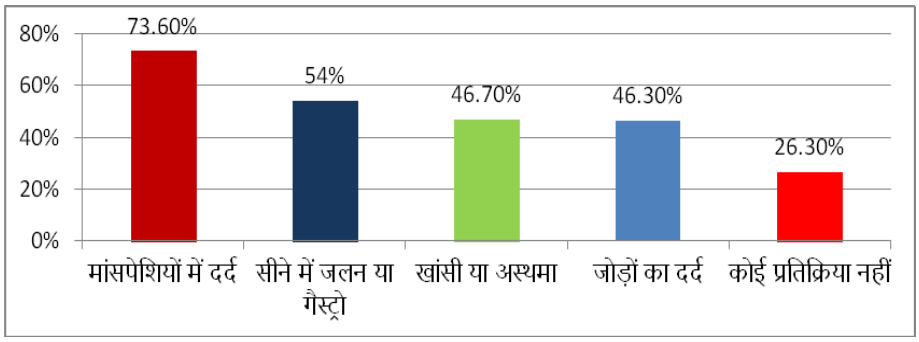

स्रोत– क्षेत्र सर्वेक्षण अक्टूबर 2021 से नवंबर 2022

ऊपर दिए गए चित्र 9 से पता चलता है कि वे कई बीमारियों से पीड़ित हैं। उदाहरण के लिए, 73 प्रतिशत रिक्शाचालकों को मांसपेशियों में दर्द महसूस होता है, 54 प्रतिशत को सीने में दर्द गैस्ट्रो की समस्या है, 46.66 प्रतिशत को अस्थमा, खांसी है, 46.34 प्रतिशत को जोड़ों में दर्द है और 26.34 प्रतिशत ने कोई प्रतिक्रिया दी। अकसर ये लोग स्ट्रीट फूड खाते हैं और कभी भी समय पर नहीं खाते हैं। यहां तक कि, वे कभी भी पर्याप्त पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है। रिक्शा चलाना एक कठिन काम है और इससे उनका स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः 86: रिक्शा चालक प्रवासी हैं। वर्तमान अध्ययन में बताया गया है कि रिक्शा

चालकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति अभी भी दयनीय स्थिति में है। रिक्शा चालक संकटग्रस्त कृषि और स्थानीय नौकरी के अवसरों के कारण अपना मूल स्थान छोड़ देते हैं। ये लोग असंगठित शहरी श्रम बाजार में प्रवेश करते हैं, वे बड़ी संख्या में रिक्शा चलाने को प्राथमिकता देते हैं।

यह व्यवसाय त्वरित रोजगार और तत्काल आय प्रदान करता है। 84.6 प्रतिशत रिक्शा चालक ऐतिहासिक रूप से समाज की मुख्यधारा से बाहर हैं। वे सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक पूंजी से वंचित हैं। अध्ययन से पता चलता है कि 83 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक दबाव के कारण कम उम्र में शादी हो जाती है। अध्ययन में पाया गया कि 97.4 प्रतिशत उत्तरदाता उत्तर प्रदेश के विभिन्न पड़ोसी जिलों से आते हैं। 2 प्रतिशत बिहार से और न्यूनतम पंजाब और तेलंगाना से बेहतर आजीविका की तलाश में लखनऊ शहर में प्रवास करते हैं। अध्ययन में बताया गया है कि 86.6 प्रतिशत उत्तरदाता हिंदू, 13.1 फीसदी मुस्लिम, 0.3 फीसदी सिक्ख और हिंदुओं में 42.3 प्रतिशत रिक्शा चालक अनुसूचित जाति, 41.7 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग, 0.6 फीसदी अनुसूचित जनजाति और 15.4 प्रतिशत सामान्य वर्ग से हैं। जबकि इन सामान्य वर्ग स्थिति अन्य उपेक्षित वर्ग से बेहतर पायी गई।

रिक्शा चलाने के लिए शारीरिक फिटनेस की जरूरत होती है क्योंकि एक रिक्शा चालक सुबह से देर रात तक काम करता है लेकिन मुश्किल से 100–200 रुपये रोजाना कमा पाता है। अध्ययन में पाया गया कि उनके बीच अत्यधिक प्रतिस्पर्धा है क्योंकि ई–रिक्शा और शहर की परिवहन प्रणाली के अन्य साधनों ने एक नई प्रतिस्पर्धा पैदा की है। वर्तमान अध्ययन यह भी बताता है कि उनकी अधिकांश मेहनत की कमाई नशे की लत, किराए, दवा, पारिवारिक आश्रितों, कर्ज और अन्य पर खर्च होता है।

रिक्शाचालकों को स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, चक्रीय गरीबी, कुपोषण और अपने बच्चों के भविष्य के लिए कोई विकल्प न होने का सामना करना पड़ता है। अध्ययन में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि रिक्शाचालकों को कार्यस्थल पर बुनियादी सुविधाएँ नहीं मिलती हैं, जैसे कि उचित आवास सुविधाएँ, अस्वस्थ रहने की स्थिति, राशन कार्ड, स्वास्थ्य सेवा और बैंक खाता। अध्ययन में पाया गया है कि रिक्शाचालकों के बीच पेंशन धारकों की संख्या न्यूनतम है। 90 प्रतिशत से अधिक रिक्शाचालक अकेले पलायन कर गए हैं और रिक्शा, रेलवे और बस स्टैंड पर रातें बिताते हैं और स्वस्थ्य रहने की स्थिति में रहते हैं।

अध्ययन में पाया गया है कि ई–रिक्शा/बैटरी रिक्शा के आने से आय में भारी कमी आई है। वर्तमान शोध में पाया गया है कि रिक्शाचालक फिर से नीचे की ओर पलायन में फंस गए हैं। अध्ययन ने सुझाव दिया है कि सरकार को रिक्शाचालकों या असंगठित श्रमिकों के लिए निजी उद्यमियों के सहयोग से एक उचित नीति रूपरेखा तैयार करनी चाहिए ताकि रिक्शाचालकों के लिए एक स्थायी आजीविका बनाई जा सके। सामाजिक सुरक्षा योजना न केवल व्यक्ति बल्कि उनके परिवार के सदस्यों को भी सुनिश्चित करती है। गैर सरकारी संगठन और नागरिक समाज कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से कमजोर समूहों को शामिल करने और वैकल्पिक रोजगार के अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

❐

सन्दर्भ –

1. अली, एम. (2013)। शहरी केंद्रों में रिक्शा चालकों का सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण : उत्तर प्रदेश, भारत का एक केस स्टडी। आईएसएसएनरू 2278–6236 शहरी केंद्रों में रिक्शा चालकों का सामाजिक–आर्थिक विश्लेषणरू उत्तर प्रदेश, भारत का एक केस स्टडी। आईजेएआरएमएसएस, खंड 2 (जनवरी), संख्या 1
2. बेगम, एस., और सेन, बी. (2012)। अस्थिर आजीविका, स्वास्थ्य झटके और शहरी पुरानी गरीबी– रिक्शा चालक एक केस स्टडी के रूप में। एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल, 2004 (नवंबर) https://doi-org/10-2139/ssrn.1754402
3. चौधरी, डी., दिल्ली, एन. ई. डब्ल्यू., और फैशन, एल. ओ. एफ. (2015)। भारत में रिक्शा का इतिहास और विकास
4. राजवंशी, ए. के. (2002)। भारत के लिए एक स्थायी परिवहन प्रणाली के रूप में इलेक्ट्रिक और बेहतर साइकिल रिक्शा। वर्तमान विज्ञान, 83(6), 703–707
5. सामंत, जी., और रॉय, एस. (2013)। मार्जिन में गतिशीलता। स्थानान्तरण, 3(3), 62–78 https://doi-org/10-3167/trans.2013.030305
6. वॉरेन, जे. (1985)। सिंगापुर रिक्शा चालकरू कुली व्यवसाय का सामाजिक संगठन, 1880– लेखक (लेखक) जिम वॉरेन द्वारा प्रकाशितरू कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, इतिहास विभाग की ओर से, नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर स्थिर RL: https://www.jstor- 16(1), 1–15.
7. एम. अली, शहरी और उसके आस–पास के क्षेत्रों में सबसे गरीब वर्ग–भिखारियों का सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण, भारत से एक केस स्टडी, संस्कृति, पर्यावरण और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत, इथियोपियारू मेकेले विश्वविद्यालय, 2012, 15 मार्च
8. मदन, जी.आर., भारत में सामाजिक परिवर्तन और विकास की समस्याएँ, एलाइड पब्लिशर्स, बॉम्बे, 1971
9. बेगम, एस., और सेन, बी. (2004)। अस्थिर आजीविका, स्वास्थ्य झटके और शहरी पुरानी गरीबीरू एक केस स्टडी के रूप में रिक्शा चालक। क्रॉनिक पॉवर्टी रिसर्च सेंटर वर्किंग पेपर, (46)
10. खान, जे.एच. (2010)– "आंतरिक प्रवास का सामाजिक–आर्थिक और संरचनात्मक विश्लेषणरू एक सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन", सीरियल्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 98–112.
11. स्ट्रैंड, डी. (1989)– "रिक्शा बीजिंगरू 1920 में शहर, लोग और राजनीति", बर्कलेरू यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
12. खान, जे.एच., हसन, टी., और शमसाद, एस. (2012), साइकिल रिक्शा चालकों की सामाजिक–आर्थिक प्रोफाइलरू एक केस स्टडी। यूरोपियन साइंटिफिक जर्नल, 8(1), 327
13. करीम, एम.आर., और सलाम, के.ए. (2019), अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के श्रमिकों को संगठित करना, ढाका शहर में रिक्शा चालकों का एक BILS अध्ययन। बांग्लादेश इंस्टीट्यूट ऑफ लेबर स्टडीज–BILS] 9
14. ब्रास, पी.आर. (2015)। उत्तर प्रदेश। भारत में राज्य की राजनीति, 61–124 https://doi.org/10.4324/9780203402900-40
15. .कुमारी, के. (2015)। शहरी फैलावरू लखनऊ शहर का एक केस स्टडी। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस इनवेंशन, 4(5), 11–20 http://www.ijhssi.org/papers/v4(5)/Version-2/B0452011020.pdf
16. Wikipedia. (n.d.). BIMARU states. Wikipedia. https://en.wikipedia.org/wiki/BIMARU_states #:~:text=In:20the:20mid:2D1980s%2C%20economic,GDP:20growth:20rate:20of%20India.
17. Giri Institute of Development Studies. (n.d.). Working papers. https://www.gids.org.in/Working_Papers.html.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 78–94

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं का इस्लाम में धर्मान्तरण व जनसंख्या वृद्वि : ट्रूथ एवं मिथ

रत्ना सिंह
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
E-mail: ratnasingraur@gmail.com
डॉ. हेमन्त कुमार मालवीय
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी–221005

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र ''मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं का इस्लाम में धर्मान्तरण एवं जनसंख्या वृद्धि : ट्रूथ एवं मिथ'' हिन्दू धर्म के अनुयायियों के धर्मान्तरण और जनसंख्या में बदलाव के विषय पर केंद्रित है। मध्यकालीन भारत में, विशेष रूप से मुस्लिम शासकों के शासन के दौरान, हिन्दू समुदायों के धर्मांतरण को लेकर कई कथायें और धारणायें प्रचलित हुयी। कुछ स्रोतों में यह दावा किया गया है कि बड़े पैमाने पर हिन्दू धर्मान्तरण हुआ। जबकि अन्य अध्ययन इसे अतिरंजित बताते है। अतः इस शोध पत्र के माध्यम से इस विषय पर विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों और आँकड़ों का विश्लेषण करके सही तथ्यों को उजागर किया गया है जिसमें यह भी सम्मिलित है कि धर्मान्तरण की प्रक्रिया किस हद तक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारकों से प्रेरित थी और क्या यह जनसंख्या वृद्धि के साथ जुड़ी हुयी थी।

मुख्य शब्द : हिन्दू, इस्लाम, धर्मान्तरण, जनसंख्या, मध्यकाल

परिचय

भारत का मध्यकालीन इतिहास 8वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक माना जाता है हालांकि मध्ययुग के समयावधि को लेकर विद्वानों में काफी मत–भिन्नता है। परन्तु फिर भी पाठकों की सुविधा के लिये इसे दो भागो में बांटा गया है। पहले भाग में भारत का प्रारम्भिक मध्यकालीन इतिहास (8वीं–11वीं शताब्दी तक है, कहीं कहीं 6वीं शताब्दी से ही मध्यकाल की शुरुआत मानी गयी है गुप्त वंश के पतन के बाद से ही) दूसरे भाग में भारत का गत मध्यकालीन युग (12वी–16वीं शताब्दी तक) है इसकी शुरूआत भारत में मुस्लिम आगमन अर्थात इस्लाम के उदय के साथ हुयी थी। इतिहासकारों के मुताबिक अरबों के आक्रमण का काल मध्यकाल की शुरूआत का था जिसके पश्चात कई मुस्लिम वंश का उदय हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म महासभा के उद्घाटन सत्र में कहा था–''हम लोग सब धर्मो के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नही करते वरन् समस्त धर्मो को सच्चा मानका रवीकार करते हैं। ''इसी भूमिका की व्याख्या करते हुये उन्होने समापन सत्र में अपना अभिप्राय व्यक्त किया था। ''इसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिये और न हिन्दु अथवा बौद्ध को इसाई'' पर हाँ, प्रत्येक को चाहिये वह दूसरों के सार–भाग को आत्मसात करके पुष्टि–लाभ करें और अपनी विशिष्टता की रक्षा करते हुये अपनी नीजि बुद्धि के अनुसार वृद्धि को प्राप्त करे।

भारतीय संस्कृति में पुराने जमाने में ज्ञानियों की सभाओं में शास्त्रार्थ हुआ करता था। सत्य की खोज के लिये, तत्व को अवगत करने के लिये वाद–विवाद हुआ करता था। उस मन्थन से निकले सत्य को लोग बौद्धिक प्रमाणिकता से स्वीकार भी करते। व्यक्ति की जीत हार नही होती, सर्वदा जीत होती सत्य की। इसको कभी धर्मान्तरण नही कहा गया। धर्मातरण आया **मजहबों** के प्रवेश के साथ अर्थात् मौलवी और मिशनरियों द्वारा भारत की माटी में धर्मान्तरण का बीज बोया गया।

ध्यान देने योग्य है कि सेमेटिक चिंतन का प्रथम उच्चार 'ही' है। 'मेरा ही ईश्वर सच्चा है', अन्य के ईश्वर झूठे है। मेरा मसीहा अथवा पैगम्बर ही प्रभु का चयनित इकलौता प्रिय है, मन्दिर–विहार–गुरुद्वारा शैतान का ठांव है। इस प्रकार 'ही' के जोर पर होता है समेटिक चलन–चालन। सेमेटिक धर्म में मानव समुदाय को दो हिस्सों ने बाट दिया है– विश्वासी और अविश्वासी। अविश्वासी के लिये ईसाई शब्द है 'हीथन' और इस्लामी शब्द है 'काफिर'। अविश्वासी जब तक प्रभु के संदेश–आदेश से वंचित रहेगा तब तक उसको स्वर्ग में जगह नही मिलेगी। अतः वे मानते है उनको विश्वासी बनाना, मूल विश्वासियों का कर्तव्य बन जाता है। अर्थात धर्मान्तरण कराना वे अपना मिशन मानते है।

वास्तव में धर्मान्तरण का मनोविज्ञान हिन्दु मूल चिन्तन से विसंगत है। वह सेमेटिक चिन्तन का ही उपज है। हम सुनते है कि माहिष्मती में यतिवर शंकर और गृहस्थ मंडनमिश्र के बीच लम्बी बहस चली थी और अन्त में मंडनमिश्र ने शंकर के पक्ष को स्वीकार किया था। फिर भी किसी ने दावा नही किया कि मिश्र धर्मान्तरित हुये।

बाद के शतकों में धर्मान्तरण की यह विलायती विकृत महामारी जैसे फैल गयी और उसके प्रतिरोध में यहाँ शुद्धिकरण की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुयी। पतित आदमी को सही रास्ते पर लाने के लिये सुधार की प्रक्रिया यहाँ जरूर प्राचीनकाल से थी। उसका नाम है **व्रात्यस्तोम**। उस व्रात्यस्तोम को आधार बनाकर यहाँ के समाज सुधारक प्रज्ञावानों ने शुद्धिकरण की युगावश्यक पद्धति बनायी।

लेकिन हिन्दु संस्कृति की भूमिका इससे पूर्णतः भिन्न है।. उसका मूल उच्चार 'ही' के बदले 'भी' है। अल्लाह भी मोक्ष देने वाला ईश्वर है, बाइबिल भी पवित्र ग्रन्थ है, मस्जिद भी देवालय है, ईसा भी भगवान के पुत्र हैं– यह है हिन्दु संस्कृति का चिंतन।

भारत में इस्लाम के प्रसार के संदर्भ में बहुत भ्रांतिया है। इस्लाम का प्रसार हिंसा से हुआ या शांतिपूर्ण मिशनरी गतिविधियो से यह विषय लम्बे समय से गहन विमर्श का विषय रहा है और बीते कुछ दशकों में यह विमर्श बहुत बढ़ा है। इस विषय पर इंटरनेट पर ढूंढने पर इस्लाम

समर्थक लेखकों की बहुत से लेख व टीकाये मिलती है। जिनमें इस्लाम के प्रसार में हिंसा के प्रयोग की बात को नकारा जाता है। यद्यपि, रसूल मुहम्मद द्वारा इस्लाम की स्थापना (मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन की मक्का की अवधि प्रत्यक्षतः पूर्णतः असफल थी इसलिये मदीना में मुहम्मद के पैगम्बरी मिशन के जिस हिंसक चरण ने उसे इस्लाम के जमाने योग्य बनाया, वही इस्लाम के प्रसार की प्रधान रीति बन गयी) और उसके बाद का इतिहास ऐसे ना जाने कितने असंख्य सघर्षों व जंगों से भरा पड़ा है। जिन्होंने करोड़ो की संख्या मे मानव जीवन को लील लिया है।

कहा जाता है कि भारत में इस्लाम के प्रवेश से पहले ही अरब तथा भारत में व्यापारिक संबंध थे। **के. दामोदरन** लिखते हैं कि इस्लाम के जन्म से बहुत पहले से ही अरब के निवासियों के भारत की जनता के साथ संपर्क थे। इनमें से कुछ अरब, भारत के पश्चिमी तट पर बस गये थे। ये लोग आक्रमणकारी के रूप में नही बल्कि तिजारत करने वाले लोगों के रूप में आये थे।' इसके लिये मूख्य कारण आर्थिक था। अरब नाव बनाने और व्यापार में बहुत प्रवीण थे। मालाबार के राजा चेरमान पेरूमल ने इनको बहुत संरक्षण दिया और वह खुद भी मुसलमान बन गया। लेकिन भारत में मुस्लिम धर्म के प्रवेश का महत्त्वपूर्ण दौर आठवी शताब्दी के आरम्भ में शुरू हुआ जब हिन्दुस्तान के उत्तर–पश्चिम से मुहम्मद बिन कासिम ने आक्रमण किया और सिंध तथा दक्षिण पंजाब को जीत लिया।

आगामी अध्याय में मुस्लिम शासन के मध्यकालीन भारत में मुसलमानों की जनसंख्या वृद्धि के प्रसंग में इन बातों पर विस्तार से विमर्श किया जायेगा। परन्तु इससे पहले यह तथ्य जान लेना चाहिए कि भारत में थोपे गए इस्लाम का संस्करण इस्लामी शरीयत (विधि) की चार बड़ी शाखाओं में सबसे उदार हनफी शाखा पर आधारित था।

उद्देश्य

इस्लाम का प्रसार एवं हिन्दुओं का धर्मान्तरण बलपूर्वक या शान्तिपूर्ण ढंग से, का विश्लेषण करना।

मध्यकालीन भारत में मुसलमान जनसंख्या में वृद्धि का विश्लेषण करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इसके स्रोत के रूप में प्राथमिक एवं द्वितीयक डाटा का प्रयोग किया गया है।

ध्यातव्य है कि इस्लाम भारतीय धर्म नहीं था और इसके मानने वाले भारत में शुरुआती आक्रमणकारी थे जिन्होंने बाद में सफलतापर्वूक अपनी शक्ति संगठित की। हजार वर्षों के बर्बर इस्लामी मुस्लिम शासन के भेदभावपूर्ण एवं दमनकारी कठोर सामाजिक–सांस्कृतिक व धार्मिक उन्मादी नीतियों के बावजूद प्रायद्वीपीय भारत में 80 प्रतिशत आबादी अ–मुस्लिम (हिन्दुओं) की बनी रही परन्तु 20 प्रतिशत भारतीय क्यों और कैस मुस्लिम बने, मुसलमानों की जनसंख्या कैसे बढ़ गयी आदि जैसे तथ्यों की व्याख्या भारत में इस्लाम में धर्मान्तरण के रूप में अधिकांश स्पष्टीकरण तीन बुनियादी सिद्धान्तों के अन्तर्गत हम देखेंगे। इनमें सबसे पुराना **'तलवार का धर्म' सिद्धान्त** है। इस्लाम के पश्चिमी इतिहासलेखन में एक विषय के रूप में इसका एक लंबा और थकाऊ इतिहास है जो धर्मयुद्ध के समय से शुरु होता है और भारतीय इस्लाम के लिए

भी, इसके हमेशा समर्थक रहे है तथा दूसरा आमतौर पर आगे बढ़ाया जाने वाला दूसरा सिद्धान्त **'राजनीतिक संरक्षण सिद्धान्त'** है, यह विचार कि मध्यकालीन काल के भारतीयों ने शासक वर्ग से कुछ गैर–धार्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए धर्म परिवर्तन किया–करों से राहत, नौकरशाही में पदोन्नति, और इसी तरह की अन्य चीजें। उदाहरण के लिए, चौदहवीं शताब्दी की शुरुआत में, इब्न बतूता ने बताया कि भारतीयों ने खुद को इस्लाम में धर्मान्तरित किया। खलजी सुल्तानों के नए धर्मांतरित लोगों के रूप में, जिन्होंने बदले में उन्हें उनके पद के अनुसार सम्मान के वस्त्र देकर पुरस्कृत किया। फिर, उन्नीसवीं सदी की जनगणना रिपोर्ट में मध्ययुगीन ऊपरी भारत के भूमिधारक परिवारों के बारे में बताया गया है, जिन्होंने राजस्व का भुगतान न करने के कारण कारावास से बचने के लिए या परिवार के नाम पर पैतृक भूमि को संरक्षित करने के लिए खुद को मुसलमान घोषित कर दिया। ''राजनीतिक संरक्षण'' की घटना धीरे–धीरे खुद को भारतीय इस्लाम में ढाल रहे थे। गंगा के मैदान के कायस्थ और खत्री, महाराष्ट्र के पारसनी और सिंध के आमिल, सभी ने सरकार की सभी स्तरों पर क्लकों और प्रशासनिक कर्मचारियों की बड़ी जरूरत को पूरा करने के कारण मुस्लिम संस्कृति को विकसित किया, जिसकी तुलना अजीज अहमद ने बाद की 'पश्चिमीकरण' प्रक्रिया से की। अंततः पकड़े गए सैनिकों या दासों का जो अपने परिवारों से अलग कर दिए गए थे, सांस्कृतिक रूपांतरण ने इस प्रक्रिया का एक और आयाम बनाया। धर्मांतरण के लिए एक तीसरे सिद्धान्त का अक्सर हवाला दिया जाता है, जो लम्बे समय से इस घटना की सबसे लोकप्रिय व्याख्या रहा है–**''सामाजिक मुक्ति का धर्म''** सिद्धान्त। ब्रिटिश नृवंशविज्ञानियों, पाकिस्तानी नागरिकों और कई अन्य लोगों के अलावा भारतीय मुसलमानों द्वारा विस्तृत रूप से मूल्यांकन किए गए इस सिद्धांत का सार यह है कि हिंदू जाति व्यवस्था सामाजिक संगठन का एक कठोर भेदभावपूर्ण रूप है और सबसे निचली और सबसे पतित जातियों ने इस्लाम में सामाजिक समानता की विचारधारा को मान्यता देते हुए, ब्राह्मणवादी उत्पीड़न से बचने के लिए सामूहिक रूप से इसे अपना लिया।

जबरन बल प्रयोग द्वारा धर्मान्तरण

धातव्य है तलवार के बल पर धर्मांतरण रसूल मुहम्मद द्वारा तब प्रारम्भ किया गया जब उसने **कुरान 9:5** में दिये गये अल्लाह के आदेश के अनुपालन में बहुदेववादियों को विकल्प दिया कि या तो वे मृत्यु का वरण करे अथवा इस्लाम स्वीकार करे। सर्वप्रथम भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण की बात करते है जो 712 ई. में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर किया गया था। सिंध पर अरबों की जीत की सबसे प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहास किताब **'चचनामा'** है जिसमें उक्त विजय का चित्रलिखित वर्णन है।

जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध विजय प्रारम्भ किया, तो जिन स्थानों पर उसका प्रतिकार हुआ वहाँ उसने मृत्युतुल्य पीड़ा देकर लोगों को इस्लाम में धर्मांतरण की नीति अपनायी। उसने उन लोगों को स्थान दिया, जिन्होंने उसकी हमलावार सेना का प्रतिकार किये बिना आत्मसमर्पण कर दिया। उसने ऐसे लोगों पर धर्मांतरण का दबाव नहीं डाला।

मुसलमानों की घृणित सोच का अंदाजा हम इससे लगा सकते है जब कासिम की नरम नीतियों की सूचना बगदाद के हज्जाज में उसके संरक्षक के पास पहुँची तो उसने इस नरमी को अस्वीकार करते हुये कासिम को लिखा;

''मुझे ज्ञात है कि जिन पद्धतियों और नियमों का तुम पालन करते हो, वो (इस्लामी विधि) के अनुरूप हैं। बस इसके अतिरिक्त कि तुम छोटे और बड़े सबको समान रूप से संरक्षण देते हो और शत्रु और मित्र में कोई भेद नहीं करते हो। अल्लाह कहता है, 'काफिरों को स्थान मत दो, बल्कि उनका गला रेत दो'। तो यह जान लो कि यह महान अल्लाह का आदेश है। तुमको संरक्षण देने में इतना तत्पर नहीं होना चाहिए, इसके बाद किसी भी शत्रु को संरक्षण मत दो, सिवाय उनके जो तुम्हारे में सम्मिलित हो गये हों (इस्लाम स्वीकार कर लिया हो)। यह एक उत्तम संकल्प हैं, और ऐसा बड़प्पन नहीं भी दिखाओगे, तो तुम पर कलंक नहीं लगेगा।''

दूसरा नरसंहार असकलन्दा में हुआ जहाँ लोगों ने हिन्दू सेनापति के भाग जाने के बाद आत्मसर्पण कर दिया था। **'चचनामा'** में मुल्तान को मुहम्मद बिन कासिम की भारी जीत की घोषणा एक ब्राह्मण के इन शब्दों में की है, ''मूर्ति पूजा अब खत्म हो गयी, मंदिर तोड़ दिये गये, दुनिया ने इस्लाम की रोशनी पा ली और मूर्ति–मंदिरों की जगह मस्जिदें बना दी गयी।'' वह ब्राह्मण एक नया धर्मांतरित मुसलमान था।

इसी तरह **अल बिलाजुरी** जो 892–93 में मरा था, उसने सिंध पर अरबों की जीत का वर्णन किया है। उसने अपनी पुस्तक **'फुटुहुल–बुल्दान'** में कहा है, ''हमें बताया गया है कि हज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम के इस अभियान के खर्च और उससे आयी लूट का हिसाब करवाया था। उसने 6 करोड़ दिरहम खर्च किये थे और जो उसे वापस मिला वह 12 करोड़ दिरहम तक था।''

इसी क्रम में सुल्तान महमूद गजनबी की चर्चा करना अवश्यम्भावी हो जाता है जब 1000 ई. में उसने काबुल के हिन्दू शाहिया वंश के राजा जयपाल को हराया क्योंकि यह राजवंश लम्बे समय से उत्तर–पश्चिम में भारत का द्वार रक्षक रहा था। महमूद के सचिव **अबू नस्त्र अल उत्बी** ने **'तारीखे यामीनी'** में लिखा है, 'सुल्तान महमूद की कन्नौज की जीत में वहाँ के निवासियों ने या तो इस्लाम स्वीकार कर लिया अथवा तलवारों का भोजन बनाने के लिये शस्त्र उठा लिये।'

महमूद द्वारा सोमनाथ का ध्वंस इतना जाना–माना है कि उसे यहाँ दुहराने की जरूरत नहीं। महमूद जिन भी क्षेत्रों या प्रदेशों को जीतता था वहाँ किसी ऐसे धर्मांतरित राजकुमार को सिंहासन पर बैठा देता जो इस्लामी कानूनों के अनुसार राज्य शासन चलायें और इस्लाम के प्रसार पर ध्यान दे तथा मूर्ति पूजा का दमन करे। इसका अर्थ यह है कि सुल्तान महमूद ने भारत में अपने अभियान में केवल बलपूर्वक धर्मांतरण ही नहीं कराया अपितु उसने यह भी सुनिश्चित किया कि उसके गजनी जाने के बाद यहाँ के धर्मांतरित मुसलमान अपने पूर्वजों के धर्म में वापस न जाने पाये।

इसी प्रकार 12वीं सदी की अंतिम चौथाई में मुहम्मद गौरी ने इस्लामी साम्राज्यवाद का नया हमला शुरू किया। **इब्न असीर** की पुस्तक **'कामिल–उत–तवारीख'** के अनुसार, ''(वाराणसी) में काफिरों का जबरदस्त कत्ले आम हुआ, बच्चों ओर स्त्रियों के सिवा किसी को नहीं छोड़ा गया''। इन्हें इसलिये बख्श दिया गया ताकि गुलाम बनाकर सारी इस्लामी दुनिया में बेचा जा सके। यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि इसी समय सारनाथ में बौद्ध परिसर ध्वस्त कर दिया गया और भिक्षुओं का कत्ल कर दिया गया।

'हसन निजामी' की पुस्तक **'ताज–उल–मासीर'** में वर्णित है कि 1194 ई. में ऐबक ने दिल्ली में 27 हिन्दू मंदिर तोडे और उस सामग्री से **'कुव्वत–उल–इस्लाम'** मस्जिद बनवायी। अजमेर लौटने के बाद ऐबक ने विशाल देव का संस्कृत कॉलेज नष्ट कर दिया और एक मस्जिद की नींव रखी जो **'अढ़ाई दिन का झोपड़ा'** नाम से जाना गया।

दास/गुलाम के रूप में धर्मांतरण

जैसा कि **'चचनामा'** में वर्णन है कि रावर पर कासिम के हमले में 60,000 दास बनाये गये थे। **चचनामा** के अनुसार, सिंध की जीत के अंतिम चरण में एक लाख स्त्रियों और बच्चों को गुलाम बनाया गया।' वह बन्दी बनायी स्त्रियों व बच्चों एवं लूट के अन्य माल में पांचवा भाग, **कुरान (8:41)** सुन्नत और शरिया के अनुसार राज्य के भाग के रूप में दमाकस में स्थित खलीफा के पास भेज देता था और शेष फौजियों में बांट देता था। इस विवरण से यह पता चलता है कि वयस्क पुरुषों में से बहुत से लोग तलवार से बचने के लिये अपनी स्त्रियों और बच्चों को छोड़कर सभी दिशाओं में भागे। उन स्त्रियों और बच्चों को बलपूर्वक दास बना दिया गया। एक दशक की छोटी अवधि में वो बंदी बनाये गये बच्चे मुसलमान राज्य के लिये इस्लाम के क्षेत्र के प्रसार, परास्त काफिरों के धर्मान्तरण, उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बनाने, संपत्ति लूटने के लिये नये जिहाद अभियान प्रारम्भ करने के साधन बन गये।

दास बनायी गयी स्त्रियां बच्चे पैदा करने के उपकरण के रूप में; बन्दी बनायी गयी स्त्रियों की कुरानी स्वीकृति और पैगम्बरी प्रथाओं अर्थात् सुन्नत के अनुपालन में उनके मुसलमान मालिकों द्वारा लौंडी (सेक्स–स्लेव) के रूप में उपयोग किया जाता था। इसलिये उन स्त्रियों ने न केवल मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने में योगदान दिया अपितु वो प्रजनन के माध्यम से मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने वाली मूल्यवान साधन भी बन गयी। जब वो स्त्रियाँ, विशेष रूप से प्रजनन की आयु वाली स्त्रियाँ उठा ले जायी गयी तो हिन्दू पुरुष, जो भाग गये थे, अपनी स्त्रियों और बच्चों को ढूँढ़ने आये तो पाया कि वे नहीं है। परिणामस्वरूप प्रजनन के लिये उनके पास पर्याप्त स्त्रियाँ नहीं रही। इसका अर्थ यह हुआ कि जब भी मुसलमानों ने सफल हमला किया तो हिन्दू समुदाय में प्रजनन तेजी से घटा। दूसरी तरफ मुहम्मद बिन कासिम के साथ आये कुछ हजार आदमियों के पास अधिकतम क्षमता तक बच्चा जनने के लिये पर्याप्त यौन–संगी थे। यहाँ तक कि बादशाह अकबर ने अपने हरम में 5000 सुंदर स्त्रियों को रखा था। मोरक्कों के सुल्तान 'मौला इस्माइल' (1672–1727) ने अपनी 2000–4000 बीवियों और यौन दासियों से 1200 बच्चे उत्पन्न किये थे।

इस तरह परास्त हिन्दुओं को व्यापक स्तर पर दास बनाने और विशेषकर महिलायें जो मुस्लिम बच्चों को जन्म देने में संलिप्त की गयी, को बलपूर्वक दास बनाने की प्रथा ने मुस्लिम जनसंख्या की तीव्र वृद्धि में सहायक बनी। इससे अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दुओं की संख्या, इस कारण भी घटी क्योंकि बचे हुये हिन्दू पुरुषों को गर्भधारण करने योग्य महिला साथी से वंचित करके प्रजनन से हीन कर दिया गया।

फख़–ए–मुजाबिर में मुईजुद्दीन और ऐबक के अत्याचार के बारे में कुछ इस तरह लिखा है; यहाँ तक कि निर्धन (मुसलमान) परिवार भी कई–कई दासों के मालिक बन गये।

अकबर का शासन आने तक मुस्लिम शासित भारत में पकड़कर बलपूर्वक दास बनाना सामान्य नीति बना रहा। अकबर (शासन 1556–1605) ने जंग के मैदान में सामूहिक रूप से दास बनाने पर प्रतिबंध लगा दिया था लेकिन इसके बावजूद भी यह प्रथा उसके राज्य में भी पूरे प्रभाव से चलती रही। **मोरलैण्ड** इस बात की पुष्टि करते है कि अकबर के शासन में ''बिना किसी औचित्य के किसी गांव या गांवों के समूहों पर हमला करना और वहां के लोगों को दास बनाकर पकड़ कर लाना फैशन हो गया था।'' इसलिये कोई आश्चर्य नहीं लगता कि अकबर के एक **जनरलअब्दुल्ला खान** उज्बेग ने डींग हाकते हुये घोषणा की थीः

'मैंने पांच लाख (500,000) पुरुषों और स्त्रियों को बन्दी बनाया और उन्हें बेंच दिया। वे सब के सब मुसलमान बना दिये गये। उनकी संततियों से कयामत के दिन तक करोड़ों (एक करोड़=दस मिलियन) होंगे।'

अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहांगीर और शाहजहां के शासन के समय भी धीमी गति से इस्लामीकरण चलता रहा।वह औरंगजेब था जिसने अपनी राज्यनीति में दास बनाने और बलात धर्म परिवर्तन कराने का काम पूरे छल और बल के साथ प्रारम्भ किया। आगामी अध्याय में औरंगजेब की विस्तृत चर्चा की जायेगी....।

आधुनिक काल में भी मुस्लिम देशों में दास प्रथा जैसी कुप्रथा का अस्तित्व कायम है; सऊदी अरब, सूडान और मॉरीतानिया में यह कुप्रथा आज भी विभिन्न रूपों में है। रायटर्स ने कुछ समय पूर्व स्लेवरी स्टिल एग्रिस्ट इन मॉरीतानिया शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमें कहा गया थाः

''वे जंजीरों में जकड़े हुए नहीं होते, न ही उनकी पहचान अपने स्वामियों के चिह्न से होती है, किंतु दास मॉरीतानिया में आज भी हैं.....। सहारा मरूस्थल के तपते बालू के टीलों के बीच ऊंट या बकरी चराते हुए अथवा नौककचोत की समृद्ध हवेलियों में अतिथियों को गर्म पिपरमिंट चाय परोसते हुए, मॉरीतानियाई दास अपने स्वामियों की सेवा करते है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चल संपत्ति के रूप में हस्तांतरित कर दिये जाते है....। दासप्रथा–विरोधी कार्यकर्ता कहते हैं कि दासों की संख्या हजारों में हो सकती है। जन्म से ही दास रहे और दासप्रथा विरोधी कार्यकर्ता के रूप में कार्यरत बाउबाकर मेस्सॉउद ने रायटर्स को बताया कि 'यह वैसा ही है जैसे कि एक भेड़ या बकरी रखना। यदि कोई स्त्री दास है, तो उसकी संतान भी दास होगी।'

सऊदी अरब में दासप्रथा अभी भी चल रही है; परंतु मजहबी इस्लामी राज्य की रहस्यमयी व्यवस्था के कारण, इसके बारे में सूचनाएं बहुत कम बाहर आ पाती है। शेखों के घरों में नौकरानी का काम करने के लिये सऊदी अरब जाने वाली बांग्लादेश, इंडोनेशिया, फिलीपींस, श्रीलंका आदि निर्धन देशों की लाखों युवा महिलाएं घरों में निरूद्ध रहकर एक प्रकार के दास का जीवन जीती हैं। उनमें से बहुलता में महिलाएं कुरआन में स्वीकृत रखैल प्रथा का अनुपालन करते हुए अपने मालिकों को यौन सेवा भी देती है। सऊदी अरब के कोलारोडो विश्वविद्यालय में पीएचडी के छात्र **होमैदान अल–तुर्की** को जब अपनी इंडोनेशियाई नौकरानी पर यौन हमला करने के लिए 2006 में बीस वर्ष का दंड दिया गया, तो उसने अपने अपराध को यौन हमला मानने से ही अस्वीकार कर दिया और उसने दावा किया कि यह 'एक पारंपरिक मुस्लिम व्यवहार है।'

टाइम्स ऑफ इण्डिया ने 10 दिसम्बर 1993 में लिखा था कि 'इसमें कोई संदेह नहीं है कि अरब के समृद्ध महलों में आज भी कई हजार दास सेवारत है। मलेशिया, भारत, श्रीलंका, इजिप्ट व अन्य निर्धन देशों की बहुधा यात्रा करने वाले वृद्ध व धनी सऊदी शेख अभिभावकों को धन देकर निर्धन परिवारों की युवा लड़कियों को शादी के लिये क्रय कर लेते हैं और उन्हें सऊदी अरब ले जाते है और स्वाभाविक है कि वे वहां कुछ और नहीं, अपितु सेक्स–स्लेव बनकर रहती हैं।

दमनकारी करों के दबाव में धर्मांतरण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारत में इस्लाम की हनफी शाखा का प्रभाव रहा, यह थोड़ा उदार प्रवृत्ति का था। भारत में सिंध की जीत पर उमय्यद जिहादियों का सामना बड़ी संख्या में ऐसे बहुदेववादियों से हुआ, जो अपने धर्म पर अडिग थे चूंकि उमय्यद हमलावरों की रूचि मुहम्मद के मजहब को लागू करने में उतनी रूचि नहीं थी जितनी कि करों से अपना कोषागार भरने की तो उन्होंने बड़ी संख्या में भारत के बहुदेववादियों को अपने राजस्व का स्रोत बनाकर छोड़ दिया। इसलिये उमय्यद सुल्तानों ने कुरआन (9:5) का उल्लंघन करते हुये इन बहुदेववादियों को जिम्मी प्रजा की श्रेणी में ला दिया।

इस तरह यह कल्पना करना कठिन नहीं कि इस प्रकार के व्यवहार से उन पर इस्लाम में धर्मांतरित के लिये कितना मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ा होगा। विशेषतः मध्यकाली भारत में ये मानक सिद्धान्त कैसे लागू किये गये इसकी चर्चा हम आगे करेंगे क्योंकि बादशाह औरंगजेब द्वारा 1679 में पुनः जजिया कर लगाते हुये (अकबर ने 1554 से जिसे हटा दिया था) उसके भुगतान में कुछ इस तरह का आदेश दिया गयाः

''मृत्यु होने अथवा इस्लाम स्वीकार कर लेने पर जजिया समाप्त हो जाता है.....अ–मुस्लिम को जजिया भुगतान करने स्वयं आना चाहिए यदि वह अपने किसी सहायक को भेजे, तो उसका जजिया नहीं स्वीकार किया जाना चाहिए। जजिया भुगतान के समय अ–मुस्लिम को खड़ा रहना चाहिए, जबकि लेने वाले मुखिया को बैठे रहना चाहिए। अ–मुस्लिम का हाथ नीचे होना चाहिए और उस मुखिया का हाथ इसके ऊपर होना चाहिए और उसे कहना चाहिए, 'रे अ–मुस्लिम! जजिया दे..... ।''

बादशाह अकबर जो हिन्दुओं के प्रति थोड़ा उदार नीतियों का अनुयायी था जिसके लिये उसके विरोध में कई मुस्लिम सूफी, एवं इस्लामी अनुयायी उठ खड़े हुये। इसका अंदाजा हम सूफी उस्ताद शैख अहमद सरहिंदी (1564–1624) के इस कथन से लगा सकते हैः

''इस्लाम का सम्मान कुफ्र (अल्लाह, उसके रसूल और इस्लाम को न मानना) एवं काफिरों के अपमान में निहित होता है। जो कोई भी काफिरों का सम्मान करता है, वह मुसलमान का अपमान करता है।''

यह समझना कठिन नहीं है कि हिन्दुओं पर धर्मान्तरण का मनोवैज्ञानिक दबाव डालने के लिये उन्हें अपमान और अवमूल्यन के किस स्तर पर ला दिया गया था तथा उन्हें प्रलोभन दिया जाता कि मुसलमान बन जाये, तो भेदभावपूर्ण कर जजिया, खरज व अन्य आर्थिक बोझों से मुक्त हो जायेंगे।

जैसा कि सबसे बड़ा कर खरज था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316) के काल में किसान एक प्रकार से शासन के बंधुआ दास हो गये थे, क्योंकि उनकी उपज का 50–60 प्रतिशत करों के रूप में और मुख्यतः खरज कर के रूप में छीन लिया जाता था। यहाँ तक कि अकबर के शासन में भी कश्मीर के उपज का एक तिहाई भाग खरज कर के रूप में निर्धारित किया गया था। जैसा कि सुल्तान **फिरोजशाह तुगलक (1351–88)** ने अपने संस्मरण, **फतुहत–ए–फिरोजशाही'** में लिखा है कि यह उत्पीड़नकारी प्रलोभन धर्मांतरण के बहुत काम आया :

''मैंने अपनी काफिर प्रजा को रसूल के मजहब को स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया, और घोषणा की कि जो कोई भी पंथ को दुहराया और मुसलमान बना, उसे जजिया अथवा पोल कर से मुक्त कर दिया जाएगा। लोगों तक इसकी सूचना विलंब से पहुंची, और बड़ी संख्या में हिंदू स्वयं उपस्थित हो गये तथा इस्लाम के सम्मान में लाये गये। इस प्रकार वे प्रत्येक क्षेत्र से दिन प्रतिदिन आने लगे, और, इस्लाम स्वीकार करने के साथ जजिया से मुक्त कर दिये गये, एवं सम्मान व उपहार से उपकृत किये गये।''

औरंगजेब के काल में बर्बर धर्मांतरण

उत्तरी भारत में मुस्लिम जनसंख्या की वर्तमान जननांकिकी व्यापक रूप से बर्बर औरंगजेब के समय आकार दी गयी, क्योंकि उसके काल में बलपूर्वक एवं अन्य उत्पीड़नकारी बाध्यताओं के कारण बड़े स्तर पर धर्मांतरण हुये थे। **इब्नअस्करी** ने **'अल–तारीख'** में लिखा है कि बादशाह औरंगजेब ने धर्मांतरण के लिये शासन में प्रशासनिक पद, बंदीगृहों से बंदियों की मुक्ति, पक्ष में विवादों का बंटवारा और शाही परेड का सम्मान आदि का प्रलोभन भी दिये। अतः अनेक कुख्यात अपराधियों ने इस्लामी पंथ स्वीकार कर लिया।

उत्तर–पश्चिम प्रांत में जिसमें कि आज के राज्य उत्तरप्रदेश व दिल्ली आते हैं, के गजट में लिखा हैः ''अधिकांश मुसलमान किसान अपने धर्मांतरण की तिथि औरंगजेब के शासन का बताते है और कहते है कि कभी उत्पीड़न करके उन्हें मुसलमान बनाया गया तो कभी वे इसलिये मुसलमान बन गये क्योंकि वे कर चुकाने में असमर्थ हो गये थे और मुसलमान बन जाने में उनका अधिकार बच जाता।'' यूरोपियन दरबारी **निकोलोमैनुसी** जो कि औरंगजेब के शासन के समय में भारत रहे थे, ने अपने कथन में इस बात की पुष्टि की है ''कर भुगतान में असमर्थ बहुत से हिन्दू–मुसलमान बन गये, जिससे कि वे कर उगाहने वालों के अपमान से बच सके।''

सूरत के इंग्लिश फैक्ट्री के अध्यक्ष **थॉमस रोल** ने लिखा है कि औरंगजेब द्वारा जजिया दोहरे उद्देश्यों से लिया जाता था, जिसमें से एक उद्देश्य अपने कोषागार में धन भरना था और दूसरा यह था कि इससे जनसंख्या के निर्धन वर्ग पर मुसलमान बनने के लिये दबाव डाला जाये।''

15 दिसम्बर 1666 ई0 को औरंगजेब ने राजदरबार और प्रांतों के शाही दरबार की सेवाओं से हिन्दुओं को निकाल बाहर करने तथा उनके स्थान पर मुसलमान को नियुक्त करने का आदेश दिया। इस आदेश से हिन्दुओं पर अपनी आजीविका बचाने के लिये धर्मांतरित होने का और दबाव पड़ा।

औरंगजेब ने सन् 1685 में एक आदेश दिया कि प्रांतों के उसके अधिकारी हिन्दुओं को इस्लाम में धर्मांतरित होने के लिये प्रोत्साहित करने के लिये प्रस्ताव दे कि जो भी हिन्दू पुरुष मुसलमान बनेगा, उसे चार रूपये और जो भी हिन्दू स्त्री मुसलमान बनेगी, उसे दो रूपये दिये जायेंगे। उस समय चार रूपये की राशि पुरुष की पूरे माह की आजीविका के बराबर हुआ करती थी। एक मुगल पत्रक में लिखा है कि बिठुर के फौजदार शेख अब्दुल्ला मोमिन द्वारा 150 हिन्दुओं को सरोपा (सम्मान की पगड़ी) और नगदी देकर मुसलमान बनाया था।

इस्लामी क्रूरता बाद में गुरु नानक के अनुयायियों पर भी आ पड़े। औरंगजेब ने कश्मीर के पंडितों का बलपूर्वक सामूहिक धर्मान्तरण कराया। दुःखी पण्डित पंजाब के सिक्ख गुरु तेग बहादुर के पास आये। जब गुरु कश्मीरियों के अवैध धर्मांतरण के बारे में पूछताछ करने औरंगजेब के दरबार में आयें तो उन्हें बन्दी बना लिया गया और कई सप्ताह तक उन पर अत्याचार करते हुये उन्हें धर्म परिवर्तन को कहा गया। धर्म परिवर्तन न करने पर अंततः उनका (साथ में दो शिष्यों का भी) सिर धड़ से पृथ्थक कर दिया गया। इसके बाद 1705 में औरंगजेब ने गुरु गोविन्द सिंह (गुरु तेग बहादुर के बेटे) और उनके अनुयायियों को सुरक्षित जाने देने का आश्वासन दिया और जब वो अनुयायी बाहर आये, तो वे जिहादी विश्वासघात कर उन पर टूट पड़े और गुरु गोविन्द के परिवार सहित (यद्यपि गुरु गोविन्द सिंह इस बार बच निकले थे किन्तु अंततः 1707 में सरहिन्द में औरंगजेब के गवर्नर वजीर खान ने उनको मार दिया) उन अनुयायियों व उनके परिवारों को काट डाला।

सिकन्दर बुतशिकन (1389–1418) के शासन में वो और उसका वजीर जो कि ब्राह्मण था और मुसलमान बन गया था, मिलकर कश्मीरी हिंदुओं पर भयानक अत्याचार करने लगे। फरिश्ता में सिंकदर का एक आदेश कुछ इस प्रकार है;

''कश्मीर में मुसलमानों के अतिरिक्त किसी और के निवास पर रोक लगाते हुए; और उसने आदेश दिया कि कोई व्यक्ति अपने माथे पर तिलक (जो कि हिन्दू लगाते है) नहीं लगाये...अंत में उसने बल दिया कि सोने और चाँदी की सभी मूर्तियाँ तोड़ दी जाय और उन्हें गला दिया जाये, तथा उससे मिली धातु के सिक्के ढाल दिये जाये। बहुत से ब्राह्मणों ने अपना धर्म या अपना देश छोड़ने की अपेक्षा विष पी लिया; कुछ अपने पैतृक स्थान छोड़कर चले गये, जबकि बहुत थोड़े से लोग नष्ट हो जाने से बचने के लिये मुसलमान बन गये। ब्राह्मणों को निर्वासित करने के बाद सिकन्दर ने आदेश दिया कि कश्मीर के सभी मंदिर तोड़ दिये जाये.... कश्मीर में सभी मूर्तियों को तोड़ने के बाद उसने बुतशिकन (मूर्तिभंजक), मूर्तियों का नाश करने वाला की उपाधि प्राप्त की।''

स्वैच्छिक धर्मांतरण को लेकर मिथक

आधुनिक इस्लामी विद्वानों व इतिहासकारों, यहाँ तक कि अ–मुस्लिम इतिहासकार भी, ने मध्यकालीन भारत और अन्य स्थानों पर मुसलमान जनसंख्या की वृद्धि को लेकर मिथकों की मोटी धुंध रच रखी है। वह मिथक यह है कि विजित काफिरों ने जब इस्लाम के शांति व न्याय के संदेश को सुना तो अपनी इच्छा से इस्लाम स्वीकार कर लिया।

भारत में मुसलमान दावा करते है कि सामाजिक रूप से भेदभाव व अत्याचार का सामना कर रहे निम्न जाति के हिन्दुओं ने ही अधिकांशतः इस्लाम में धर्मांतरण किया, क्योंकि इस्लाम में सभी के लिये समानता का संदेश है। यद्वपि जिन मध्यकालीन इस्लामी लेखकों ने कभी–कभी धर्मांतरण का पूर्ण विस्तार से विवरण दिया है, उन्होंने भी इस तथ्य का कहीं उल्लेख नहीं किया है। यह हो सकता है कि निम्न जाति के हिन्दुओं के धर्मान्तरण का अनुपात अधिक हो, किन्तु ऐसा होने का कारण पूर्णतः भिन्न था। वे हिन्दू समाज के निर्धनतम वर्ग से थे और वे दमनकारी खरज, जजिया व अन्य करों से स्वाभाविक रूप से सबसे अधिक कष्ट में थे। उपमहाद्वीप में मुसलमान जनसंख्या का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि धर्मान्तरण समाज के सभी वर्गों में हुआ था। यह लक्ष्य है कि आज भी भारत के 70 प्रतिशत हिन्दू निम्न वर्ग से संबंध रखते है इस तथ्य से यह दावा झूठा सिद्ध हो जाता है कि इस्लाम के श्रेष्ठ संदेश से प्रभावित होकर निम्न वर्ग के हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में इस्लाम के झण्डे में नीचे आ गये।

तत्कालीन परिस्थितियों को समझते हुए अगर यह मान भी लिया जाय कि निम्न वर्ग की हिन्दू जातियों ने भेदभाव एवं जाति व्यवस्था से त्रस्त होकर इस्लाम अपनाया तो भी इस तथ्य से संबंधित हमें कोई प्रामाणिक साक्ष्य या विमर्श नहीं मिलते है क्योंकि मुस्लिम समाज सैद्धान्तिक समानता के बावजूद विविध श्रेणियों में विभक्त था। इसका कारण यह है कि कोई भी समाज जो आर्थिक दृष्टि से विकसित होता है, सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया से नहीं बच सकता। इस्लाम के साथ भी यही हुआ, अपने उदय के समय से ही इस समाज में आर्थिक भिन्नताएँ मौजूद थीं। इसी आर्थिक भिन्नता ने मुस्लिम समाज को वर्गों में विभाजित कर दिया, विभाजित वर्गों के अपने अलग–अलग हित थे। ये वर्ग कई उपवर्गों में भी बँटे, हिन्दुस्तान में जातियों के समुच्चय से वर्ग निर्धारण को पहचाना गया। जाति और वर्ग के फर्क को समझना भी जरूरी है वस्तुतः जाति आदमी के जन्म से निर्धारित होती है इसलिए इसे अपरिवर्तनीय माना गया, जबकि पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा प्रसूत वर्ग व्यक्ति की पदवी प्रतिष्ठा संपत्ति पर निर्भर है।

''वर्ग तो बाहरी संपत्ति के आधार पर बनते हैं जबकि जाति दिमाग के अन्दर बसे पूर्वाग्रहों, विशिष्ट पहचान और श्रेष्ठताबोध के आधार पर फलती–फूलती है। जातियों के बीच दुश्मनी या उग्रता का भाव इन पूर्वाग्रहों को और पुख्ता बनाता है और इनके बीच अलगाव बनाने वाली शक्तियों को ही मजबूत करता है। जातियों में जोर जबर्दस्ती से बदलाव भी नहीं किया जा सकता जब कि कई बार धर्मांतरण हो जाता है। जातीय या नस्लवाली पहचान की तरह, जिससे जाति बहुत हद तक मेल भी खाती है, जाति की भावना साझा उत्पत्ति और विशिष्ट सामाजिक स्थिति के बोध में ही निहित होती है, जैसा कि कबीलों के मामले में होता है अगर कोई जाति विभिन्न समूहों को मिलाकर बनती है तब भी उनके साझा पूर्वजों और जाति की शुद्धता के मिथक गढ़ लिए जाते हैं ओर जाति चाहे ऊँची हो या नीची, सभी पर यह बात लागू होती है। इसलिए जब कोई व्यक्ति अपना धर्म बदल लेता है तब भी समूह वाली उसकी पहचान नहीं मरती।

धर्म बदलने के बाद भी जाति वही बनी रहती है। इस्लाम और ईसाई जैसे मत भी, जिनमें समानता ही बुनियादी चीज है, जाति को दबा नहीं पाते।'' यही कारण है कि मुस्लिम समाज में के स्तरीकरण के लिए हिन्दू समाज में प्रचलित 'जाति' शब्द प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, ऐसे विद्वानों को उत्तर देते हुए इम्तियाज अहमद कहते हैं कि ''जाति प्रथा को देखने के दो तरीके

हो सकते हैं, एक सांस्कृतिक (कल्चरल) और दूसरा संरचनागत (स्ट्रक्चरल)। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से तभी किसी सामाजिक श्रेणीकरण को जाति प्रथा का नाम दिया जा सकता है जब वे सांस्कृतिक तत्व उसमें मौजूद हों जो हिन्दू जाति प्रथा में पाए जाते हैं। दूसरा दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि यद्यपि सांस्कृतिक तत्व उसमें न भी पाए जाते हों और उसका आधार जन्म हो तो उसे जातिप्रथा कह कर संबोधित किया जा सकता है।...सामाजिक संरचना (ढाँचा) के स्तर पर भारतीय मुसलमान समुदाय के स्तरीकरण में जाति प्रथा के बहुत से तत्त्व मौजूद हैं। सभी सांस्कृतिक तत्त्व या तो धर्म विरोधी होने के कारण पाए नहीं जाते हैं या इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण फीके पड़ गए हैं। इसलिए भारतीय मुसलमान समाज के अन्दर स्तरीकरण को मैं जातिप्रथा का एक रूप मानता हूँ।...हजारों सालों के इस्लामीकरण की प्रक्रिया के बावजूद जाति के तत्त्व आज भी मौजूद हैं और इस्लामीकरण की प्रक्रिया उन्हें मिटाने में असमर्थ रही है। यह मुसिलम समाज की वास्तविकता है। सच्चिदानन्द सिन्हा, इम्तियाज अहमद की तरह जे.एच. हटन ने भी लिखा है कि ''धर्म परिवर्तन से भी जाति व्यवस्था में फर्क नहीं आता क्योंकि मुसलमान भी जो इन प्रथाओं को सिद्धान्त रूप में नहीं मानते, प्रायः व्यवहार में उनका पालन करते हैं।''

इस प्रकार इस्लाम में सिद्धान्त के आधार पर तो बराबरी की बात है पर व्यवहार के स्तर पर जाति व्यवस्था जैसी भेदभाव वाली प्रथा के लक्षण साफ दिखते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार का यह फर्क मुस्लिम समाज में लम्बे समय से रहा है। मुस्लिम समाज तीन वर्गों में विभक्त है जिसे क्रमशः अशराफ, अजलाफ तथा अरजाल कहते हैं। ये तीनों शब्द ''उर्दू और फारसी के नहीं बल्कि खांटी अरबी भाषा के हैं, जिनका अर्थ शरीफ, नीच और कमीना होता है।''

1. अशराफ—'अशराफ' का अर्थ 'शरीफ' होता है। यह मुस्लिमों का अभिजात वर्ग है। ''इसमें भी दो भाग हैं। पहला वे जिनका खून विदेशी है, मतलब जो अरब, पर्शिया, तुर्की अथवा अफगानिस्तान से यहाँ आकर बस गए हैं। दूसरे वे सवर्ण हिन्दू, जो धर्म बदलकर मुसलमान बन गए है।'' इन बाहर से आए मुसलमानों में सैय्यद, शेख, मुगल अथवा पठान हैं। ये अपना सिजरा (फैमिली ट्री) सीधे पैगंबर के खानदान से जोड़ते हैं। उच्च हिन्दू जातियों के वंशज जिन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया था, उसमें 'मुस्लिम राजपूत' प्रमुख हैं। इस वर्ग में भी ''सामाजिक दृष्टि से सैय्यद सबसे ऊपर होते हैं।''

2. अजलाफ—'अजलाफ' का अर्थ 'नीच' होता है। यह निम्न अथवा साधारण वर्ग है इसमें स्वच्छ पेशेवर जातियाँ आती हैं। इसमें हिन्दुओं की नीची जाति से धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बने लोग आते हैं। इसमें शिल्पी तथा अन्य व्यावसायिक लोग आते हैं। जैसे– जुलाहा (बुनकर), हज्जाम (नाई), धुनिया (रुई धुनने वाला), कस्साब (माँस बेचने वाला), गद्दी (चरवाहे, दूधवाले), मनहार (चूड़ी बेचने वाले), दर्जी, बढ़ई, भठियारा, नट, पनवरिया, मदरिया, टाटिया इत्यादि।

3. अरजाल—'अरजाल' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'कमीना' होता है। इनके लिए 1901 की जनगणना रिपोर्ट कहती है कि ''अरजाल अथवा नीची जातियों में भी जो सबसे नीचे आते हैं। इनमें हलालखोर, लालबेगी, अबदाल और बेदिया आदि शामिल हैं। इनके साथ कोई दूसरा मुसलमान सम्बन्ध नहीं जोड़ता है और जिन्हें मस्जिदों में जाने की मनाही हैं। ये सार्वजनिक दफनगाह का भी प्रयोग नहीं कर सकते। मुस्लिम समाज में इनकी स्थिति

कीड़े–मकोड़े जैसी है। मुसलमानों की इन बिरादरियों के पेशे और नाम हिन्दू दलितों से मिलते–जुलते हैं इसीलिए मुसलमानों के इस तबके के लिए 'दलित' शब्द का प्रचलन हो गया है। बिहार में पसमांदा मुस्लिम महज पिछड़े मुसलमानों के अधिकार के लिए लड़ाई का अगुआ बनकर आगे आया है। जो 'पीछे छूट गया है' उसे 'पासमांदा' कहते हैं अर्थात् सामाजिक विकास के आईने में यह वर्ग काफी पीछे छूट गया है। लालबेगी या हलालखोर सिर पर मैला ढोने वाली जाति है, ''आदमी से आदमी का पैखाना साफ कराने जैसा पेशा हिन्दुस्तान में सबसे पहले मुगलों के दौर में ही शुरु हुआ था। मुगल शासकों की हवेलियों में पैखाना साफ करने वाले और कोई नहीं मुसलमान ही थे।

प्रस्तुत शोध पत्र में पूर्व में किये विश्लेषण के पश्चात् एक प्रश्न यह उठता है कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला, जिसका उद्देश्य मुस्लिम जनसंख्या में विस्तार करना था, तो इतने वर्षों के इस्लामी शासन के बाद भी भारत में 80 प्रतिशत जनसंख्या हिन्दुओं की कैसे बची है?

यद्यपि मुसलमानों ने मजहबी आधार पर 11वीं सदी से अधिक समय तक भारत पर राज किया किंतु कदाचित ही ऐसा हुआ कि वे समूचे देश पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर पायें हो। 712 ईस्वीं में सिंध में कासिम के प्रवेश के बाद प्रथम तीन सदियों में मुस्लिम शासन विशाल भारत के एक छोटे से उत्तर पश्चिम क्षेत्र तक ही सीमित रहा। इन क्षेत्रों की अधिकांश जनसंख्या अब मुसलमान है और यह तथ्य सिद्ध करता है कि मुस्लिम शासक उन्हीं क्षेत्रों में प्रभावशाली ढंग से इस्लाम थोप सकें, जहाँ उनके पास लम्बे समय तक सुदृढ़ राजनीतिक सत्ता रही।

अलबरूनी का भारत (इण्डिका 1060 ई.) में लिखा कि मुस्लिमों द्वारा जीती गयी भूमि पर हिन्दू 'धूल के कण' बन गये थे : और जो बचे उनके मन में सभी मुसलमानों के प्रति कभी न समाप्त होने वाला विरोध रहा।' इस तरह अलबरूनी ने सिद्ध किया कि सुल्तान महमूद के प्रथम हमले के तीन दशक बाद भी भारत के हिंदुओं को इस्लाम में शांति व न्याय का संदेश नहीं दिखा। प्रो. हबीबुल्वार लिखते है; 'आरम्भ में सीधा धर्मान्तरण न के बराबर रहा होगा।'

1206 ई. में दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के एक सदी के भीतर ही जजिया, खरज और अन्य प्रकार के कष्टदायी करों के दबाव में वे इस्लाम स्वीकार करके इस निराशाजनक स्थिति से बच सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। जैसा कि अनेक मुस्लिम इतिहाकारों और शासकों ने बताया है कि पूरे भारत में विस्तृत घने वनों का विशाल क्षेत्र भी हिन्दुओं की रक्षा का मूल्यवान साधन बन रहा था। सुल्तान महमूद शाह तुगल के शासन में भारत की यात्रा पर आये इब्नबतूता को मुल्तार के निकट ऐसे हिन्दू 'विद्रोही और योद्धा मिले, जिन्होंने (दुर्गम) पहाड़ियों पर स्थित दुर्गों में स्वयं को सुरक्षित रखा था।

इसी तरह का वर्णन तैमूर लंग ने अपने संस्मरण 'मृत्युजात–आई–तैमूरी' में किया है कि उसके मंत्रियों ने भारतीयों की रक्षा शैली के बारे में चेताया था कि उस क्षेत्र के योद्धा, भू–स्वामी, राजकुमार और राजा इन वनों के दुर्गों में रहते है और वहां उनका जीवन जंगली मनुष्यों जैसा हो गया था।

इससे स्पष्ट है कि हिन्दुओं ने अपने प्राण बचाने और बदी बनाकर इस्लामें धर्मांतरित किये जाने से बचने के लिये दुर्गम वनों व पहाड़ों में शरण ली, भेदभावपूर्ण करों के दमनकारी बोझ को सहा किन्तु फिर भी इतनी बर्बरता के बाद भी अपने पूर्वजों के धर्म पर अडिग रहे।

इसके अतिरिक्त उनमें से बहुत से लोग तो तलवार के भय या अन्य परिस्थितियों में इस्लाम स्वीकार किये थे, पुनः अवसर मिलते ही अपने पूर्वजों के धर्म में वापस आने को तत्पर थे (जब विकृत अकबर ने धर्म के चयन की स्वतन्त्रता दी तो इस्लाम में धर्मांतरित बहुत से हिन्दू अपने पूर्वजों के धर्म में वापस लौट आये) एक उदाहरण के तौर पर देख सकते है कि जब सुल्तान महमूद शाह तुगलक ने 1326 में दक्षिण के पठारों के दो भाईयों हरिहर और बुक्का को बंदी बनाकर मुसलमान बना दिया था। सइके दस वर्ष पश्चात् सुल्तान ने दोनों को एक फौज के साथ दक्षिण में अराजक स्थिति को नियंत्रित करने के लिये भेजा। राजधानी दिल्ली से इतनी दूर आकर इन दोनों भाईयों ने न केवल हिंदू धर्म में पुनः वापसी की, अपितु विजयनगर साम्राज्य की स्थापना करते हुए दक्षिण भारत में इस्लामी शासन को उखाड़ फेंका। विजयनगर शक्तिशाली हिंदू साम्राज्य एवं भारतीय सभ्यता को फलने–फूलने वाला केन्द्र बना तथा यह 200 वर्षों तक दक्षिण भारत के इस्लामीकरण में विशाल अवरोध बना रहा।

इसी प्रकार पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक **'भारत एक खोज'** में कश्मीरी मुसलमानों का वापस अपने मूल हिन्दू धर्म में लौटने के संदर्भ में लिखा हैः

''कश्मीर में लंबे समय से चल रही इस्लाम में धर्मांतरित करने की प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि 95 प्रतिशत जनसंख्या मुसलमान बन गयी, यद्यपि वे अपनी पुरानी हिंदू परंपराओं को निभाते रहे। 19वीं सदी के मध्य में राज्य के हिंदू राजा ने पाया कि वे लोग बड़ी संख्या में सामूहिक रूप से हिंदू धर्म की आरे लौटने को उद्यत हैं''।

अतः इन उदाहरणों से अनुमान लगाया जा सकता है कि क्यों इतनी सदियों के मुस्लिम शासन के बाद भी प्रायद्वीपीय भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी गैरमुस्लिम है।

निष्कर्ष

इस प्रकार मध्यकालीन भारत में इस्लाम धर्म के आगमन के साथ हिन्दू समाज में कई तरह के बदलाव दृष्टिगोचर होते है जिसमें धर्मान्तरण एक प्रमुख प्रक्रिया के रूप में सामने आयी। जैसा कि, यह प्रक्रिया पूरी तरह से स्वैच्छिक भी या इसमें बल का प्रयोग किया गया था, यह हमेशा एक विवादास्पद मुद्दा रहा है परन्तु उपरोक्त विवरण के अनुसार कई ऐतिहासिक दस्तावेजों और प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस्लाम के प्रसार के दौरान मध्यकालीन भारत में बर्बरतापूर्ण धर्मान्तरण बहुतायत हुये क्योंकि इस्लाम के प्रसार के दौरान कई मुस्लिम शासकों और आक्रमणकारियों ने हिन्दू धर्म को नष्ट करने और इस्लाम को फैलाने के प्रयास किये जिसमें महमूद गजनी, मुहम्मद गौरी और इल्तुतमिश आदि के हमले शामिल है। इन शासकों ने अपने सैन्य अभियानों के दौरान हिन्दू मंदिरों को ध्वस्त किया, लाखों हिन्दुओं को बन्दी बनाया और उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए मजबूर किया।

इसके अतिरिक्त भारत में कई जगहों पर जजिया कर और अन्य आर्थिक दण्डों के रूप में दबाव डाला गया, जिससे हिन्दू समुदाय के लोग इस्लाम धर्म अपनाने के लिए मजबूर हुये। इन करों को भुगतान करने से बचने के लिए हिन्दू समुदायों ने इस्लाम धर्म को अपनाया ताकि वे सामाजिक और आर्थिक भेदभाव से बच सकें। इस प्रकार ये सारे उद्धरण बलपूर्वक धर्मांतरण की पुष्टि करते है जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिम जनसंख्या में वृद्धि हुयी, जो शासकों की

राजनीतिक और धार्मिक महत्वकांक्षाओं का हिस्सा था विशेष रूप से तब जब शासक और सैन्य ताकते हावी थीं।

सन्दर्भ सूची

1. विवेकानन्द साहित्य खण्ड–1 – पृ. 26–27

2. **सेमेटिक धर्म**–प्रस्तुत धर्म आमतौर पर इब्राहिम धर्मो को संदर्भित करता है, जिसमें यहूदी धर्म इसाई धर्म और इस्लाम धर्म शामिल है। सेमेटिक लोग मध्य पूर्व से उत्पन्न हुयी उन मानव जातियों को कहा जाता है जो किसी सामी भाषा को अपनी मातृभाषा के रूप मे बोलते है। इन भाषाओं में इब्रानी, अरबी, आक्कादी, अरामाई, गिइज फोनी शियाई और अम्हारिक भाषा शामिल है।

कहा जाता है कि सेमेटिक विचार को मानने वाले पहले मिस्र में रहते थे। वहां के राजा को उन लोगों ने छल से मारकर रातों–रात निकल गये और मध्य–पूर्व के समुद्री किनारे पर अपना स्थायी आवाज बनाया। यही हजरत इब्राहिम और हजरत ईसा नामक दो चिंतक पैदा हुये जिन्होंने दुनिया को दो अभिनव चिंतन से अवगत कराया। हजरत ईसा ने इसाइयत का कन्सेप्ट दिया और हजरत इब्राहिम ने इस्लाम का। ये दोनों यहूदी थे इसलिये आज भी इसाइयत और इस्लाम में यहूदी मान्यताओं की झलक मिलती है।

3. सावरकर, 1947, पृ. 59

4. **व्रात्यस्तोमः** प्राचीनकाल का एक प्रकार का यज्ञ जो व्रात्य या संस्कारहीन (अवैदिक को वैदिक धर्म धर्म में सम्मानपूर्वक वापस लाना) लोग किया करते थे इसका वर्णन सामवेद के ताण्ड्य ब्राहमण में मिलता है। ये व्रात्य चार प्रकार के होते थे– जिसमें से आचार भ्रष्ट, नीच कर्म करने वाले, जाति बहिष्कृत और जिनकी जननेंद्रियों की शक्ति नष्ट हो गयी हो ।

5. इस्लामी जिहाद, पृ 98–99, प्रतिष्ठित इस्लामी इतिहासकारो द्वारा लिखे गये रसूल मुहमद के आत्मवृत्त में उसके दस वर्ष के मदीना प्रवास के समय उनके द्वारा किये गये विफल या सफल हमलों लूटपाट के अभियानों व जंगों को सूचीबद्ध किया गया है। उनमें से सत्रह से उन्नतीस हमलों व लूटपाट के अभियानों का नेतृत्व उन्होंने स्वयं किया था :

626 ईसवी – बद्रू–उखरा की जंग,

626 ईसवी – जुमतुल–जंदल की जंग

626 ईसवी – बनू मुस्तलक़ निकाह की जंग

627 ईसवी – खंदक की जंग

627 ईसवी – अज़हाब की जंग

627 ईसवी – बनू कुरैज़ा की जंग

627 ईसवी – बनू लह्यान की जंग

627 ईसवी – ग़ाहिबा की जंग

627 ईसवी – खैबर की जंग

628 ईसवी – हुदैबिया का अभियान

630 ईसवी – मक्का की विजय

630 ईसवी – हुनसीन की जंग

630 ईसवी – तबूक की जंग

6. जब उत्तरी भारत के कुछ हिस्सों में इस्लामी राज्य बना, तब उलेमा ने भारी विवाद खड़ा किया। अब तक इस्लामी कानून के व्याख्याकार चार सम्प्रदायों में बंट चुके थे– हनाफी, हनबाली, मालिकी और शफाई। केवल हनाफी सम्प्रदाय हिन्दुओं को जिम्मी का दर्जा देने का पक्षधर था। अन्य तीन सम्पद्राय का पक्का मत था कि हिन्दुओं के लिए एकमात्र विकल्प इस्लाम या मौत को एक को चुनना है। –सीताराम गोयल, भारत में इस्लामी साम्राज्यवाद की कहानी, पृ. 134; फतवा–ए–जहांदारी में जियाउद्दीन बरनी ने हनाफी सम्प्रदाय के विरूद्ध लिखा है– यदि महमूद एक बार फिर भार चला जाता और उसने अपनी तलवार से सारे ब्राह्मणों को खत्म कर दिया होता, उसने तब तक अपनी तलवार म्यान में न डाली होती जब तक कि सारा हिन्दू इस्लाम कबूल न कर लेता। क्यों महमूद शफाई सम्प्रदाय का था। – पूर्वोक्त, पृ. 135

7. फिर जब हराम महीने गुज़र जाएं तो मुशरिकीन (बहुदेववादी) को जहां कहीं पाओ कत्ल करो, उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो, और हर घात की जगहज उनकी ताक में बैठो। फिर अगर वो तौबा करें, और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें तो तुम उनका रास्ता छोड़ दो; यक़ीनन अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला, निहायत रहमवाला है, **कुरान 9:5, अुनवादक मुहम्मद फ़ारूक़ खाँ, पृ. 197**

8. और तुम्हें मालूम हो कि जो कुछ माले ग़नीमत तुमने हासिल किया उसका पांचवां हिस्सा अल्लाह का, रसूल का, रिश्तेदारों का, यतीनों का, मुहताजों और मुसाफ़िरों का है, अगर तुम अल्लाह पर और उस चीज़ पर ईमान रखते हो जो हमने अपने बन्दे पर फ़ैसले के रोज़ उतारी, जिस रोज़ दोनों फ़ौजों में मुठभेड़ हुई; और अल्लाह को हर चीज़ पर पूरी कुदरत हासिल है, **कुरान 8:41, अनुवादक मुहम्मद फ़ारूक़ खाँ, पृ. 192**

9. हम देखते हैं कि भारत विभाजन के समय भी (1946–47) लगभग एक लाख हिन्दू व सिक्ख महिलाओं का बलपूर्वक दास बनाकर ले जाया गया और मुसलमानों के साथ उनकी शादी कर दी गयी, 'इस्लामी जिहाद', अध्याय 6, पृ. 291–292

10. इस्लाम में दास प्रथा की कुरीति को मान्यता कुरआन की निम्न आयातों से मिलती है, जिसमें अल्लाह स्वतन्त्र मनुष्य या स्वामियों को दासों में पृथक करता है:

'अल्लाह ने दो व्यक्तियों का (एक और) उदाहरण दिया है: दोनों में से एक गूंगा है, उसके पास किसी प्रकार की ताकत नहीं है, वह अपने स्वामी पर बोझ है। वह उसे जहाँ भेजता है, वहाँ कुछ अच्छा नहीं करता है: तो ऐसा व्यक्ति उस व्यक्ति के बराबर हो जाएगा, जो न्याय का आदेश देता हो और सीधी राह पर हो?' **(कुरआन 16:76)**

अल्लाह दास प्रथा की कुरीति को न केवल स्वीकृत देता है, अपितु उसने मालिकों (मुस्लिम पुरुषों को ही गुलाम रखने का अधिकार है) को सेक्स–स्लेव बनायी गयी औरतों के साथ यौन संबंध बनाने की अनुमति भी दी:

सेक्स–स्लेव बनायी गयी स्त्री से यौन संबंध बनाने की उसी प्रकार अनुमति है, जैसी कि अपनी बीवी के साथ संबंध बनाने की अनुमति है। पकड़ी कर बंदी बनायी स्त्री के साथ यौन संबंध बनाने का आधार उस पर कब्जा होना है, न कि शादी। यदि शादी की शर्त रही होती, तो लौंडी बनायी गयी स्त्रियां भी बीवियों में गिनी जाती और बीवी व लौंडी का पृथक–पृथक उल्लेख करने की आवश्यकता न होती। **(कुरआन 23:5–6)**

इसलिये यदि पकड़े गये या दास बनाये गये लोगों में औरतें हैं, तो मुसलमानों को अल्लाह द्वारा अनुमति दी गयी है कि वे उनके साथ वैसे ही यौन–संबंध बनायें, जैसे कि अपनी बीवियों के साथ बनाते हैं। अल्लाह के इस आदेश ने इस्लाम में सेक्स–स्लेव प्रथा या पकड़कर दास बनायी गयी स्त्रियों को लौंडी (रखैल) बनाकर रखने की कुप्रथा को जन्म दिया। जहां तक विधिक शादी की बात है, तो इस्लाम में कोई पुरुष एक साथ चार शादी करने की सीमा निश्चित करता है। **(कुरआन 4:3),** किंतु यौन–दासी अर्थात् सेक्स–स्लेव रखने की संख्या पर ऐसा कोई बंधन नहीं लगाता है।

11. नानक देव जी ने अपनी पुस्तक **'बाबर वाणी'** में ऐमनाबाद में बाबर द्वारा किये गये विध्वंस का स्पष्ट विवरण देते हुये इस आक्रान्ता के कृत्यों की निन्दा स्पष्ट शब्दों में की है। उन्होंने सिक्ख धर्म ग्रन्थ **गुरु ग्रन्थ साहिब** में ईश्वर से शिकायत के रूप में हिन्दुओं पर मुसलमान की क्रूरता का वर्णन इस प्रकार किया है;

'इस्लाम को सिर चढ़ाने के बाद, तूने हिन्दुस्तान को विभीषिका में झोंक दिया है....उन्होंने ऐसी क्रूरता की है, और तब भी तेरी दया नहीं आयी.....जब सबल किसी सबल पर चढ़ाई करता है, तो हृदय नहीं जलता है। किंतु जब सबल–निर्बल का दमन करता हैं, तो निश्चित ही उसे ही सहायता के लिये पुकारा जाएगा, जो उनकी रक्षा कर सके ''हे ईश्वर, इन ककुत्तों ने हीरें जैसे हिंदुस्तान को नष्ट कर दिया है (उनका आतंक इतना भयानक है कि) जो मार डाले गये हैं, उनको पूछने वला कोई नहीं है और तब भी तू ध्यान नहीं दे रहा है''। **(महला 1:36)**

❐

सन्दर्भ –

1. *सतीशचन्द्र (2007) : ''मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति'', (अनुवादक : नरेश नदीम), ओरियंट ब लैकस्वान, हैदराबाद, भारत।*
2. *रामधारी सिंह दिनकर (2023) : ''संस्कृति के चार अध्याय'', लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।*
3. *सतीशचन्द्र (2011) : ''मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुगलकाल तक (1526–1761), जवाहर प्रकाशन, गाजियाबाद, उ.प्र.।*
4. *आचार्य चतुरसेन (2024) : ''भारत में इस्लाम'', नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली।*
5. *विजय मनोहर तिवारी (2023) : ''भारत में इस्लाम–हिन्दुओं का इतिहास से गायब अनकही कहानियाँ'', गरूड़ा प्रकाशन, गुड़गाँव, हरियाणा।*
6. *एम.ए. खान (2009) : इस्लामी जिहाद : बलपूर्वक धर्मान्तरण, साम्राज्यवाद और दासप्रथा की विरासत, आईयूनीवर्स।*
7. *जवाहरलाल नेहरू (2022) : ''हिन्दुस्तान की कहानी'', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली।*
8. *सुनील यादव (2019) : ''भारतीय मुसलमान मिथक इतिहास और यथार्थ'', अनन्य प्रकाशन, दिल्ली।*
9. *डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर (2021) : ''पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन'', सम्यक प्रकाशन, नयी दिल्ली।*
10. *अशोक कुमार पाण्डेय (2018) : ''कश्मीरनामा इतिहास और समकाल'', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।*
11. *मुहम्मद फारुख खाँ (2022) : ''कुरान शरीफ़ (हिन्दी रोमन)'', अल हसनाल बुक्स प्रा. लि., दरियागंज, नयी दिल्ली।*
12. *जवाहर लाल नेहरू (2022) : ''विश्व इतिहास की झलक'', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली।*
13. *अमलेन्दु मिश्रा (2004) : ''अस्मिता और धर्म भारत में इस्लाम विरोध की जड़े'', सेज प्रकाशन, नयी दिल्ली।*
14. *असगर अली इंजीनियर (2002) : ''इस्लाम का जन्म और विकास'', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 95–101

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

District-wise Decentralisation of the Tribes of Rajasthan State

S. K. Kulshrestha
Assistant Professor, Economics, Vardhman Mahaveer Open University,
Rawatbhata Road, Kota (Raj.) - 324021
Email: skulshrestha@vmou.ac.in Mob. 9460804264

K. R. Choudhary
Assistant Professor, Economics, Kota University, Kota
Email: krjchoudhary@gmail.com

Abstract

The term 'Scheduled Tribes' is defined in Article 342 of the Indian Constitution. This paper aims to analyze and compare the population growth of various Scheduled Tribes across different districts of Rajasthan, focusing on the spatial decentralization of their population over time. The comparative analysis draws on data from the national censuses of 1971, 1981, 1991, 2001, and 2011. The findings reveal a significant shift in the distribution of the Scheduled Tribes' population, with growth dispersing from traditionally dominant areas to less dominant regions, such as Ganganagar, followed by Bikaner, Hanumangarh, Ajmer, and Jaisalmer. This study provides a detailed district-wise overview of the evolving demographic landscape of Scheduled Tribes in Rajasthan.

Keywords – Decentralisation, Tribes, Population, Safeguard, Decadal growth, Diversity.

Introduction

India is home to immense cultural diversity, with approximately 577 distinct tribes spread across the country. These tribes are "integral to the fabric of Indian culture, having historically maintained unique ways of life, traditions, and practices that distinguish them from other communities."[1] However, many of these "tribes are now facing pressures to abandon their traditional lifestyles due to various socio-economic and environmental changes."[2] Despite these challenges, the tribes continue to play a crucial role in preserving India's rich cultural heritage.

Rajasthan ranks sixth among Indian states in terms of tribal population, with tribes constituting 13.48 percent of the state's total population (Census, 2011). The Bhil and Mina tribes are the most prominent tribal communities in Rajasthan, primarily residing in the foothills of the Vindhya and Aravalli Mountain ranges. These

tribes exhibit considerable diversity in their cultural practices and livelihoods. While many engage in agriculture as their primary means of sustenance, others have developed professional and business skills. To support these communities, a scheduled area was established in southern Rajasthan, encompassing 5,696 villages across 45 tehsils in eight districts.

In 2011, the tribal population in this designated area was 70.42 percent. This emphasizes "the need for additional measures to safeguard these communities," particularly in Rajasthan.[3] It has been highlighted that, despite government efforts over the past 50 years, there has been "little improvement in the landholding status of scheduled groups."[4] Rajasthan's tribal communities, with their strong sense of sovereignty, robust institutions, and commitment to self-determination, remain distinct, even as they are increasingly seen as a draw for community-based tourism development. The "identified food insecurity as a significant issue among tribal communities in southern Rajasthan," is a concern that likely extends to other tribal areas reliant on migration.[5] Additionally, it has been observed that the "growth rate of the tribal population in Rajasthan has outpaced the growth rate of the state's overall population," with approximately 12.4 percent of the state's total population belonging to scheduled tribes.[6]

Methodology

This paper utilizes Census data to analyze the tribal populations across various districts of Rajasthan. The study focuses on estimating the district-wise growth rate of the tribal population from 1961 to 2011, employing a semi-log growth model for this purpose. To assess the statistical significance of the results, the student t-test is applied, while the coefficient of determination (R^2) is used to evaluate the model's goodness of fit. The primary objective of this paper is to provide a comprehensive estimation of the growth patterns of tribal populations at the district level within the state.

Result and Discussion

The data reveals that the proportion of the Scheduled Tribes (ST) population in Rajasthan increased from 11.7% in 1961 to 13.5% in 2011. While most districts in Rajasthan exhibited an upward trend in their ST population share, a few districts experienced a decline over this period. Notably, districts such as Bhilwara, Karauli, Bharatpur, Sawai Madhopur, Alwar, Dausa, Jaipur, Kota, and Chittorgarh recorded decreases in the proportion of STs.

In Bharatpur district, the ST population decreased from 2.8% in 1961 to 2.1% in 2011. Similarly, Chittorgarh district saw a reduction from 18.3% in 1961 to 13.1% in 2011. Jaipur's ST population share also declined from 11.5% to 8% over the study period, while Kota district experienced a drop from 14.7% to 9.4%. Additionally, Sawai Madhopur district witnessed a modest decrease from 22.3% to 21.4%.

Table 1.1 illustrates the division-wise growth of the ST population as a proportion of the total population across Rajasthan. The data indicates that most

districts experienced positive growth in their tribal population, supported by significant t-ratios and strong R^2 values, underscoring the reliability of the findings. However, some districts, such as Jaipur and Kota, exhibited statistically significant negative growth.

In the Ajmer division, the districts of Ajmer and Tonk registered positive increases in the ST population, while Nagaur district remained stable with no change in percentage. Conversely, Bhilwara district experienced a decline in the ST population share.

Within the Bharatpur division, only Dhaulpur district showed growth in the ST population, while districts like Karauli, Bharatpur, and Sawai Madhopur recorded negative growth.

The Bikaner division demonstrated a favourable trend, with all districts showing positive growth. Ganganagar district led in decadal growth, followed by Bikaner, Hanumangarh, and Churu. In the Jaipur division, districts such as Jhunjhunun and Sikar experienced increases in the ST population, whereas Alwar, Dausa, and Jaipur recorded declines.

The Jodhpur division saw an overall increase in the ST population percentage, with Jaisalmer showing the highest growth, followed by Jodhpur, Pali, Sirohi, Barmer, and Jalor. In the Kota division, Baran, Bundi, and Jhalawar districts displayed positive growth, while Kota district experienced a decrease.

Finally, in the Udaipur division, four out of five districts reported an increase in the ST population percentage. Udaipur led this growth, followed by Rajsamand, Dungarpur, and Banswara, while Chittorgarh was the only district in this division to exhibit negative growth.

Table - 1.1 Division-wise decadal growth rate of ST's population percentage (1961-2011)

Division	Districts	Growth Coefficient	t-ratio	R2
Ajmer Division	Ajmer	0.13	3.476***	0.75
	Bhilwara	?0.002	?0.2728	0.02
	Nagaur	0.00	0.00	0.00
	Tonk	0.02	4.295***	0.82
Bharatpur Division	Karauli	?0.01	-	-
	Bharatpur	?0.08	?3.497***	0.75
	Dhaulpur	0.04	3.358***	0.92
	Sawai Madhopur	?0.01	?2.160*	0.54
Bikaner Division	Hanumangarh	0.13	-	-
	Bikaner	0.16	2.021*	0.51
	Churu	0.06	2.316*	0.57

	Ganganagar	0.36	3.339**	0.74
Jaipur Division	Alwar	?0.004	?2.505*	0.61
	Dausa	?0.01	-	-
	Jaipur	?0.08	?3.066**	0.70
	Jhunjhunun	0.03	2.568**	0.62
	Sikar	0.02	3.765***	0.78
Jodhpur Division	Barmer	0.04	2.548*	0.62
	Jaisalmer	0.12	13.32***	0.98
	Jalor	0.04	3.580**	0.76
	Jodhpur	0.10	10.14***	0.96
	Pali	0.08	4.775***	0.85
	Sirohi	0.05	6.763***	0.92
Kota Division	Baran	0.06	-	-
	Bundi	0.03	3.004**	0.69
	Jhalawar	0.02	0.1462	0.01
	Kota	?0.1	?3.277**	0.73
Udaipur Division	Dungarpur	0.03	4.539**	0.84
	Udaipur	0.10	7.364***	0.93
	Chittaurgarh	?0.1	?2.067	0.52
	Rajsamand	0.06	-	-
	Banswara	0.01	1.527	0.37

Author's Calculation,

*Note: There *, **, *** are significant at 10, 5 and 1 percent respectively.*

Table 1.2 highlights the trends in the percentage of the Scheduled Tribes (ST) population across various divisions in Rajasthan, revealing distinct patterns in each region.

In the Ajmer Division, there is an overall upward trend in the ST population percentage, particularly in the Ajmer and Tonk districts. While Nagaur and Bhilwara initially show a downward trend, they both experience a positive growth trajectory by the 2011 Census, leading to an absolute increase in the percentage of the ST population within the division.

The trend in the Bharatpur Division is more dispersed, largely due to the creation of new districts—Dholpur from Bharatpur and Karauli from Sawai Madhopur. Despite Sawai Madhopur's historical significance as a district with a substantial tribal population (over twenty percent), the ST population percentage has decreased in both Sawai Madhopur and Karauli. Similarly, Bharatpur district has seen a decline in its ST population percentage, whereas Dholpur has experienced an increase.

In the Bikaner Division, all districts have experienced an increase in the percentage of Scheduled Tribes within their total populations. Hanumangarh district,

carved out from Ganganagar, shows positive growth in its ST population, alongside Ganganagar. Additionally, the ST population percentage in Bikaner district has remained stable since 1991.

The Jaipur Division presents a declining trend in the ST population percentage across most districts. Alwar district has seen a decrease, while Jaipur district, although initially stable, experienced a sharp decline between 1991 and 2001, partly due to the creation of Dausa district, which had a significant tribal population. By 2011, even Dausa's ST population had declined. In contrast, Jhunjhunu and Sikar districts show an increase in the ST population, though the ST population in Jhunjhunu has remained constant since 1981.

The Jodhpur Division displays consistent growth in the ST population percentage across all districts. Each census has shown positive trends, with the 2011 Census highlighting significant increases in the ST population throughout the division.

In the Kota Division, Bundi district exhibits positive growth in the ST population. However, Kota district experienced a sharp decline between 1991 and 2011, primarily due to the formation of Baran district from Kota, where more than 20 percent of Baran's population was composed of tribes. Jhalawar district's ST population percentage has fluctuated, though the data from the 1991 Census may contain errors.

Finally, the Udaipur Division, known for its dominant tribal population, shows positive growth in the ST population across all districts except Chittorgarh. Udaipur Division remains a remote region for other social groups, with the percentage of the tribal population increasing steadily since 1961.

Table 1.2 Decadal Percentage of ST's Population

No. District	1961	1971	1981	1991	2001	2011
I. India (Total)	6.9	6.9	7.8	8.1	8.2	8.61
II.Rajasthan (Total)	11.7	12.1	12.2	12.4	12.6	13.5
Districts of Rajasthan						
Ganganagar	0.2	0.1	0.3	0.3	0.8	0.7
Ajmer	1.5	1.3	2.2	2.2	2.4	2.5
Alwar	8.1	8	8.1	8	8	7.9
Banswara	71.5	72.9	72.6	73.5	71.4	76.4
Baran	-	-	-	-	21.2	22.6
Barmer	5.4	5.7	5.1	5.9	6	6.8
Bharatpur	2.8	3	3	2.3	2.2	2.1
Bhilwara	9.3	9.4	9.3	9	9	9.5
Bikaner	0.2	0.1	0.2	0.3	0.3	0.3
Bundi	17.7	19.3	20.1	20.8	20.2	20.6

Chittorgarh	18.3	19.6	18.2	20.3	11.5	13.1
Churu	0.5	0.4	0.5	0.5	0.6	0.6
Dausa	-	-	-	-	26.8	26.5
Dhaulpur	–	–	–	4.5	4.8	4.9
Dungarpur	60.2	63.6	64.4	65.8	65.1	70.8
Hanumangarh	-	-	-	-	0.7	0.8
Jaipur	11.5	11.1	11.1	11.3	7.9	8
Jaisalmer	3.3	4.1	4.4	4.8	5.5	6.3
Jalor	8.1	7.8	8	8.4	8.8	9.8
Jhalawar	10.5	10.3	11.7	4.5	12	12.9
Jhunjhunun	1.6	1.8	1.9	1.9	1.9	1.9
Jodhpur	2	2.1	2.4	2.8	2.8	3.2
Karauli	-	-	-	-	22.4	22.3
Kota	14.7	14.5	14.8	14.2	9.7	9.4
Nagaur	0.3	0.2	0.2	0.2	0.2	0.3
Pali	4.7	4.7	5.5	5.3	5.8	7.1
Rajsamand	-	-	-	-	13.1	13.9
Sawai Madhopur	22.3	22.7	22.7	22.6	21.6	21.4
Sikar	2.5	2.5	2.7	2.6	2.7	2.8
Sirohi	21	21.5	23.1	23.4	24.8	28.2
Tonk	11.6	11.4	11.8	11.9	12	12.5
Udaipur	30.2	33.7	34.3	36.8	46.1	49.7

Data Source: Census

Conclusion

Over the fifty-year period of this study, the tribal population in India has increased from 6.9% in 1961 to 8.61% in 2011. In Rajasthan, the tribal population grew from 11.7% to 13.5% during the same period. This paper provides a comprehensive analysis of the tribal population growth across various divisions and districts of the state. The comparative study highlights the decadal growth trends of the tribal populations, revealing significant variations across different regions. The findings indicate that social and economic developments have contributed to the mobility of tribal communities, leading to their dispersion from traditionally dominant areas to other regions. Most districts in Rajasthan have experienced positive growth in their tribal populations, with only a few districts, such as Jaipur and Kota, showing negative growth. The negative growth in these districts can be attributed to their status as dominant tribal areas, which may have influenced migration patterns.

The study also underscores the significant impact of reservation policies on the distribution of the tribal population across the state. The results demonstrate an overall increase in the tribal population at both the state and divisional levels.

However, certain divisions, notably Jaipur and Bharatpur, have seen a decline in their tribal populations.

In conclusion, the research highlights the dynamic nature of tribal population growth and distribution in Rajasthan, influenced by socio-economic factors and policy interventions. These insights are crucial for formulating targeted strategies to support the sustainable development and welfare of tribal communities.

❒

References :

1. *V. Prasad and A. Sengupta, "Perpetuating health inequities in India: global ethics in policy and practice," Journal of Global Ethics, vol. 15, No. 1, pp. 67-75, 2019.*
2. *M. Witzel, "Early 'Aryans' and their neighbours outside and inside India," Journal of Biosciences, vol. 44, No. 3, p. 58, 2019.*
3. *U. Pareek and N. A. Sole, "Status of Scheduled Castes and Scheduled Tribes in Rajasthan: Issues, Affirmative Actions and Policy Prescriptions," International Journal of Political Science, vol. 6, No. 1, pp. 71–79, 2020.*
4. *B. B. Mohanty, "Land Distribution among Scheduled Castes and Tribes," Economic and Political Weekly, vol. 36, No. 40, pp. 3857–3868, 2001.*
5. *A. Saxena, A. Amin, S. B. Mohan, and P. Mohan, "Food Insecurity in Tribal High Migration Communities in Rajasthan, India," Food and Nutrition Bulletin, vol. 41, No. 4, pp. 513–518, 2020.*
6. *B. L. Nagda, "Tribal Population and Health in Rajasthan," Studies of Tribes and Tribals, vol. 2, No. 1, pp. 1-8, 2004.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 102–117

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Redefining Ostracism in Soundararajan's Trauma of Caste

Pooja Kamble
Research Scholar, Department of Studies in English,
Rani Channamma University, Belagavi (Karnataka) - 591156
E-mail : <05poojavk@gmail.com>
Prof. Vijay. F Nagannawar
Research Guide, Corresponding Author,

Abstract

The study discusses the traumatic circumstances in which the Dalits, who are on the lower rungs of society, endured in all social, political, cultural, and economic aspects. Trauma appears to be employed as a catch-all term in Psychoanalytic literature to describe anything that produces psychological distress. They have suffered for ages, yet there is still no witness to end their existence. Dalits who have suffered at the hands of the upper caste or Brahmins have had a lasting impact on their mentality in this caste system. The trauma of caste is a psychoanalytic method for studying the mental state, nature, and existence of Dalits in society. It also provides a little overview of how this experience evolved the mental wounds that were left undetected. The anguish of horrible harassment and repressive treatment faced by countless generations of souls was difficult to put into words. This article highlights some of the phases that must be understood and concentrated on, as well as the traumatic environment in which they lived for several years. After acquiring recognition and political support, it is proposed to eliminate its existence. Even after relocating to independent India, we were unable to delve further into its origins. Independence itself speaks of freedom in all aspects, yet Dalits continue to be suppressed; they have failed to win freedom for their existence, despite their lengthy struggle against oppression. This article will help you comprehend the Dalit's emotional trauma that has made their life and battles more difficult to deal with, as systematically analyzed by Thenmozhi Soundararajan in the work The Trauma of Caste.

Keywords: Trauma, Psychoanalytic, Dalits, Caste

Introduction:

Jean Laplanche has given a general description of Freud's understanding of trauma, which varied significantly throughout defined as: "An event in the subject's life, defined by its intensity, by the subject's incapacity to respond adequately to it and by the upheaval and long-lasting effects that it brings about in the psychical organization."[1] The concept of trauma, or the word "trauma" itself, appears to be employed in Psychoanalytic literature to refer to anything that harms the mind.

Freud went on to say that the essence of the traumatic circumstance is the "experience of helplessness". The author defines trauma as any unresolved autonomic nervous system response. It is about how the nervous system reacts to an event, not the event itself. A traumatic response is a set of characteristics that occur in response to multigenerational, collective, historical, and cumulative psychic harm across time, both during one's lifetime and across generations.[2] (Freud, 2022)

Dr. Gabor Mate's poignant words on Trauma: "Trauma fundamentally means a disconnection from self. Why do we disconnect? Because it is too painful to be ourselves."[3] (Mate, 2021)

As Peter Levine has shared, "Trauma is caused when we are unable to release blocked energies, to fully move through the physical/emotional reactions to hurtful experience. Trauma is not what happens to us, but what we hold inside in the absence of an empathetic witness."[4] (Levine, 2012)

Staci Haines builds on these ideas in her book The Politics of Trauma: "Trauma and oppression can leave people with a deep sense of powerlessness, isolation, and shame that you can't talk someone out of." [5](Haines, 2019)

The defining aspect that allows us to comprehend the pain is its scientific nature, which has left people subjugated for millennia. To understand the core cause of this suppression, we must look at the past and the existence of this culture from civilization. One of the oldest civilizations in the world arose in the Indus Valley Civilization from 2600 to 1700 BCE, it was thriving with major centres at Harappa, Mohenjo-Daro, Lothal, and many more.

After the Indus Valley Civilization declined, a new wave of immigrants arrived: Aryans and Indo-European tribes from the Black and Caspian Seas in the steppes of southern Ukraine and Russia. The Aryans introduced horse sacrifice, cow adoration, and Brahmin-controlled rites. A new Indo-Aryan culture evolved in the area. The Vedas, the first book of the Hindu scriptures, were written during this period, establishing the groundwork for Brahmanical rule. In the centuries that followed, textual awareness interpreted the four Vedas, introducing concepts such as purity, defilement, and hierarchy. This philosophy will pave the way for the Varna caste system. Thus, Vedic society was established.

Within these scriptures lies the beginning of the Hindu articulation of Dharma the cosmic law whose rules and rituals created the universe from Chaos defining everyone's duty in society and their caste as inevitably and irrevocably

determined at birth. Dharma would come to encompass all behaviour considered appropriate correct or morally upright and in doing so it separates women from men praised from spiritual outcasts pure from polluted. The obligations of the pure castes are very different from the demands made of the polluted castes.

According to Dharma, the caste-oppressed must accept the terms of their oppression as punishment for crimes in another life. Challenging the conditions of caste-apartheid violates the cosmic order and is therefore a failure of one spiritual responsibility. Dharma encodes dehumanization into a society, where to be in alignment with the divine one must submit to the accepted order of power. As a woman, you must be subject to your husband. As a subject, you must be servile to your King. As a Dalit, you must submit to the dominant caste. Stepping out of line means you're failing in your divine dharmic duty and deserve to be punished in the most brutal of ways.

As Gale Omvedt details in her classical study 'Buddhism in India' states:

Brahmins used Vedic scriptures to award themselves high status, sanctity, and power while circumscribing other communities in lower classes based on social functions, the first scripture to do this is the Vedic Rigveda, in the Purusha Sukta, a hymn that introduces the concept of Varna as part of the divine order.[6] (Omvedt, 2014)

Purusha is described as the first being by the Brahmins, from whom all other creatures descended. His sacrifice generates all life forms, including humans, as it is the beginning of the universe, the elements, all worlds, and everything in creation. The text reads:

What number of parts did they make when they divided Purusha? What do they name his mouth, his arms? What do they name his legs and feet? Rajanya was created from both of his arms, and the Brahman was his mouth. His thighs transformed into the Vaishya, while the Shudra emerged from his feet. The moon arose from his mind, the Sun from his eye, Indra and Agni from his tongue, and Vayu from his breath. Mid-air sprang from his navel; the sky was formed from his head, the earth from his feet, and the regions from his ear. As a result, they formed the world.[7] (Omvedt, 2017)

Thus, it outlines a world in which all humans are descended from the varnas, or social classes, which arose from the body of Purusha, whose mouth or head was the source of the priestly class, the Brahmins. The Rajanyas, or the Varna that would become known as Kshatriya—rulers and warriors—were meant to emerge from his arms and chest. The Vaishyas came from his abdomen and thighs; they were merchants, artisans, and traders in charge of the World's external affairs. Shudras were the servant class, and they served as his feet.

This classification also formed Vedic concepts of the relative holiness of different parts of the body, with the head representing wisdom and being the purest, while the feet are considered filthy. Eventually, a new class of outcasts emerged

below the lowest in the Varana system: the untouchables. In Hindu texts, they were referred to by several names, including Dasyu, Dasa, Mleccha, Nishada, and Chandala. These exiles are from the Panchama Varnas or fifth Varna, and their touch, breath, or simple presence pollutes the other four Varnas. This outcast dehumanization was inextricably tied to committing these individuals to spiritually sanctioned servitude and exploitation inside this system.

Some even seek to deny that caste existed in any of the Vedas by claiming that the wording in the Purusha Sukta is a perversion or interpolation. Even though it is a later addition to the Rigveda, the Purusha Sukta remains one of the oldest Hindu writings. Furthermore, the concept of Varna is limited to only one hymn in the Rigveda. It develops stronger in following Hindu scriptures, each time becoming more intricate and more entrenched from the Yajur and Arthava Vedas, as well as later Hindu epics like the Ramayana, Mahabharata, and Bhagavad Gita. All of this text established a strong argument for Dharma being tied to Varna's status.[8] (Keane, 2016)

Babasaheb writes in Who Were the Shudras about the emergence of the castes that started with the Purusha Sukta, a section of one of God's creation hymns in the Rigveda. Regarding the placement of the shudra who was born at the feet of Purusha Sutka, he states, "Is it not the case that the Purusha Sukta did not hesitate to remark that the Shudra was born at the feet of the Purusha and that his duty was to serve? If yes, what is the source of this animosity?[9] (Ambedkar, 2022)

The principal elements in the Western theory about the origin and position of the Shudras in the Indo-Aryan society. It says:

The Vedic literature was composed by members of the Aryan race. This Aryan race conquered India after arriving from outside. Different from the Aryans in race, the natives of India were called Dasas and Dasyus. The white race is known as the Aryans. A race known as the Dasas and Dasyus were dark. Dasyus and Dasas were subjugated by the Aryans. Shudras are the descendants of the Dasas and Dasyus who were subjugated and sold into slavery. Because the Aryans valued color discrimination, they created the Chuturvarnya, a system that divided the white and black races, the Dasas and the Dasyus.[9] (Ambedkar, 2022)

Prof. Max Muller, according to him the word Arya is used in different senses. As stated:

I understand that ar or ara is one of the first names on earth, meaning the ploughed ground. It was lost in Sanskrit but was kept in Greek as (era), therefore the original meaning of Arya would have been landholder or tiller of the land, whereas Vaishya from Vis signified housing. The cultivated soil is also known as Ida, the daughter of Manu, which is most likely a variant of Ara.9 (Ambedkar, 2022)

Mr. A. C. Das says:

"The Dasas and the Dasyus were either savages or non-Vedic Aryan tribes. Those of them that were captured in war were probably made slaves and formed the Shudra caste".[9] (Ambedkar, 2022)

These were some of the reasons cited, which clearly show that the Brahmins adopted the term on purpose to give it a bad connotation and disseminated it from Sanskrit books to make people believe blindly because they are considered sacred in the Hindu religion. People who doubt the dharma shall face punishment under God's law.

In the Bhagavad Gita, and the rest of the Mahabharata of which it is part, the power of the Brahmins is continuously asserted by their subjugation of others. Consider this passage from the Mahabharata: 'The highest duty of the crown King is to worship the Brahmins. They should be protected, respected, and referred to as if they were one's parents. If Brahmins are content, the whole country prospects, if they are discontented and angry, everything goes to destruction. They can make a God a non-god and a non-god, a God".[10] (Ganguli, 2021)

According to the Chandogya Upanishad, "People of good conduct can expect to quickly gain a pleasant birth like that of the Brahmin Kshatriya or Vaishya, but people of Evil conduct can expect to enter a form like that of a dog a pig or a Chandala." [11] (Roebuck, 2003) The Chandalas are subjected to such savage scorn and dehumanization that one text compares the Chandala woman's womb to that of an animal. These passages underline the carceral cycle of Dharma and Karma that underpins the Hindu rebirth paradigm. So, there is no point in rejecting your fate.

This Dharma's scriptures are built by the Brahmans from the texts of Vedas, following the verses of being told that your womb is a curse. As a Hindu, I have to take a step back and see the suffering these writings create. When she first heard these verses, she recalled laying my hands on my abdomen and imagining a future kid. Would this child be treated differently than others because she was their mother? This concept bothered me for many years. I wonder if her painful periods are caused by her caste. Is it any wonder that in Tamil, the author's mother tongue, the word for spiritual pollution is "Theettu", which denotes the pollution of a woman during her period, the pollution of a dead body, and the pollution of untouchability? **20**(Soundararajan, 2022)

The scripture specifies that "dwellings of Chandalas (outcastes) must be outside the village and are considered forbidden." The Chandalas should wear lifeless clothing and eat from broken plates, with black iron as their only decoration to indicate that they are oppressed. "They are doomed to wander." [12] (Olivelle, 2007)

The texts also mete out inhuman punishment to the caste-oppressed, stating:

If a once-born man uses abusive language towards a twice-born man, his tongue would be severed because he was born from the lowest caste. If he insults their name or castes, a red-hot iron nail ten fingers long should be forced into his lips. If he arrogantly delivers instructions on the laws to Brahmins, the king should have hot oil poured into his mouth and ear. It further goes on to say, When the lowest-born man uses a particular limb to injure a superior person, that very limb of his should be cut off…. If a low-born man attempts to occupy the same seat as a man of high rank, the king should brand him on the hip and send him into exile or have his buttocks slashed.[12](Olivelle, Manu's Code of Law)

And yet this next excerpt from the Dharma sutra of Gautama shares the same violent punitive approach to the caste-oppressed. It decrees that if a Shudra listens in on a Vedic recitation, "his ears should be filled with molten lead and lac; if he repeats it, then his tongue should be cut off; if he commits it to memory, his body shall be split asunder."[12](Olivelle, 2007)

According to the Manusmriti, if a Brahmin makes another Brahmin do the work of slaves, he will be fined, but Shudras can always be compelled to do servile work because they were created to be slaves of the Brahmin. Even if he might be released from servitude, a Shudra cannot truly be freed because slavery is innate in him. It describes slaves of seven kinds: "He who has been made captive by the standard. He who serves for daily food. He who was born in a house, he who is bought and he who is given; he who is inherited from his ancestors, and he who is enslaved by way of punishment" [13] (Olivelle, 2007)

One verse decree: "A female, whether she is a child, young woman, or an old lady, should never carry out any task independently. As a child she must remain under her father's control; a young woman, under her husband, and when her husband is dead under her sons. She must never seek to live independently." Moreover, a good woman should "always worship her husband like a god," for a woman will be "exalted in heaven by the mere fact that she has obediently served her husband". The reproductive control of women in the Manusmriti continues with severe consequences for relationships between castes and the birthing of intercaste children.

The Manusmriti even ranks the pollution of children from those relationships, not unlike the way children of interracial marriages were ranked in terms of blood purity. A shocking verse speaks of the disgrace of women when they stray from prescribed caste sexual relationships: "When a woman abandons her husband of lower rank and unites with a man of higher rank, she only brings disgrace upon herself in the world and is called woman becomes disgraced in the world, takes birth in a jackal's womb, and is afflicted with evil diseases."[13] (Olivelle, 2007)

The Indigenous psychologist Eduardo Duran talks about colonization as a "soul wound" that affects human beings at a soul level, where the mythology the dreams, and the culture of an oppressed people also carry those wounds. And so, they bring the suffering of the people that come out of that. So too with Brahminism. Caste is a soul wound. Untreated soul wounds become the work of the next generation and the next. As Ruth King says, "What is unfinished is reborn." We just keep passing the violence on. And all we do is wound and wound and wound.[14] (Duran, 2019)

Soundararajan chooses here to focus more on the emotional wounds of caste because too often we do not allow the pain of caste to be seen, to be acknowledged, to be legible. Brahminism has made such examination taboo by shaming and gaslighting those who would bring forth the injury of caste. "Soul wound" is most often used about the intergenerational and historical trauma of Native Americans.

Eduardo Duran's book on counseling with Native peoples is entitled "Healing the Soul Wound"

The scars that influence people's psyches can be understood through Piaget's Cognitive Theory. According to him, cognitive growth was a gradual restructuring of mental processes caused by biological maturation and environmental experience. It builds a grasp of the world around them, only to encounter contradictions between what they already know and what they learn in their surroundings. Thus, the presented environment, which was purposefully designed to empower the superior to degrade the inferior complex to the point of damaging their identity, had a profound impact that could not be reconstructed to its normal state.

This dreadful situation is very comparable to Dalits' status in Indian society. Dalit is a term coined by Jyoti Rao Phule, an activist and social reformer from the 1880s, to characterize the terrible exploitation of people directly affected by the Indian caste system. "Dalit" is the name we chose for ourselves after Brahmanism, the animating religious system that founded caste, branded as "untouchable" and "spiritually defiling." Dalit translates to "broken." Suffering breaks people. Broken by caste: the world's oldest and longest-running dominator system, enshrined in scripture and perpetuated through horrible cruelty. Broken by the horror of the magnitude of human potential lost to this murderous system, lives that were not completely lived, and souls that never got to sing their true song.

It is incorrect to assume that Dalit is a Sanskrit phrase that implies broken, scattered, or split. The fact is that Dalit is not a Sanskrit term nor does it have a negative connotation such as shattered. To disparage the Dalit race, racists may have initially spread the name Dalit as a Sanskrit word with a negative connotation.

In the text, Karunyakare gives a clear statement that: No Sanskrit text mentions the term Dalit. In Sanskrit literature, the word Dalit is not mentioned in Rigveda. Dalit word is not mentioned in any Veda. Dalit word is not mentioned in two Aryan epics- Ramayana and Mahabharata. It is not mentioned in Aryan's sacred book Gita. Not in any Aryan stories- Puranas. Aryanists followers of Aryanism and some human rights activists claim that in Sanskrit, Dalit means split, torn, or crushed. It is because a Dalit is a Jew. The Aryanists, out of the racist mindset, are trying to defame and humiliate the Dalit identity. Otherwise, on what basis do Aryanists propagate that Dalit means or suppressed people?[15](Karunyakare, 2021)

The next question arose in our mind why do Aryanists and Human Rights Activists give negative meaning to Dalit identity? The Aryanists don't want an independent Dalit self. They want the Dalit self to be subservient to the Aryan self. This is possible only when the Dalit self is dependent on the Aryan self. To make Dalit self-dependent on the Aryan self, the roots of Dalit identity have to be located in the Aryan language only. Hence, Aryanists propagate the term Dalit as a Sanskrit term and also, they give negative meaning to it. Aryanists antagonism to dignified Dalit self can be traced in the history of Aryan's racist ideology called Manusim and Nazism.[15] (Karunyakare, 2021)

Later, misinformed scholars unwittingly adopted the so-called Sanskrit meaning and spread it. Unfortunately, human rights experts and activists used the negative Sanskrit word to demonstrate the violation of human rights in India's socially excluded communities. Though their intentions are admirable, their appropriation of Dalit identity is unacceptable. It is a non-historical approach. The term Dalit does not refer to any community's socio-economic standing.[15] (Karunyakare, 2021)

It describes how they have misconstructed the Dalit identity to diminish their existence. This identity they carried with them caused them to feel they were born low and belonged to a lower caste. They deliberately misplaced it to demonstrate their influence over them. It instantly conditioned their mentality to feel they are from a degrading caste and unfit to live a happy life.

Braj Ranjan Mani notes that Brahminism uses the ideology of caste to dehumanize, divide, and dominate the productive majority to distract them from holding caste elites accountable for issues like poverty, illiteracy, hunger, and unemployment.[16] (Mani, 2005)

Brahmanism is a dominant system of caste-apartheid, it is the animating ideology that justifies the dehumanization and destruction of caste-oppressed peoples. We know that white supremacy asserts and reasserts itself by centering the stories and practices of Europeans and settlers these animate history as we learn it and know it, and in doing so they cause further violence to people oppressed and exploited by white supremacy. The same is true with Brahmanism.

Some people believe that if they aren't Brahmin, they can't be casteist. The reality is quite different. It doesn't take a Brahmin to uphold the structure and benefits of the caste system. Much of the violence in our home countries is often exacted by non-Brahmin dominant castes eager to maintain their hegemony of power and resources in a climate of terror. Brahmanism set up Brahmins to be the top beneficiaries of caste but further divided all of society and pitted each level against another based on caste privilege, what the great Dalit leader and theorist Dr. B. R. Ambedkar called "Graded inequality" [17](Ambedkar, 2014)

Brahminism is the first hegemonic dominator system that we must tackle to heal historical harm in South Asian bodies and geographies. To do this requires Debrahmanisation, which, as Prachi Patankar describes, "is a practice to support Dalit-Bahujan leadership and the unapologetically anti-caste movements, groups, and formations that are fighting for dignity, livelihoods, and freedom." [18] (Patankar, 2021)

To be clear, Debrahmanisation seeks to destroy not the actual people who have been called Brahmins but rather the system of Debrahmanisation that has placed Brahmins above others and created a hierarchy of castes and persons. This is akin to how we talk about dismantling white supremacy and patriarchy, where we are focusing not on the harm of individual white people or men but on the structures and systems that have empowered some while marginalizing, demeaning, subjugating, and dehumanizing others.

Similar to white supremacy, caste apartheid is a false system of separation for exploitation. It divides the caste-privileged and the caste-oppressed. However, the anguish it generates in the caste-oppressed also divides us from ourselves. We endure catastrophic events and their legacies throughout generations by separating from our emotions, bodies, spirits, the divine, our families, ancestors, loves, and other species, as well as the land. We create compartments. We go numb. We make horrible choices. So, healing from trauma, from that internal divide, is part of the duty, the dhamma of caste.

Despite untouchability being banned by Indian law since 1950, caste persists and thrives with impunity, a de facto apartheid that exploits, excludes, humiliates, maims, rapes and murders caste-oppressed people every day. Caste is a system of exclusion that ranks people at birth into a hierarchy based on alleged purity and pollution.[19] (Tete, 2021)

Soundararajan reminds me of a phrase she often heard from her mother and grandmother, "Mooche Varakoodathu," or "Breath should not come". They would use those words to chastise me or other children or anyone who was crying from grief. The idea is that no one should hear our cries, not even our breath because to yield to that pain would lead us into an unending pit of despair. Imagine centuries of emotional training that pain should be fiercely silenced.

Talking about the experience of the author during her college days, when she attempted to learn about the Dalits. She thought of majoring in South Asian studies. She arrived at UC Berkeley and started knocking on doors, introducing herself as someone who came from an "untouchable" background. "She wanted to learn about her people. She wants to know who is significant in the canon: Which can be studied? Who are the experts and scholars?" Again and again, scholar after scholar told me it was a dead end to study caste. "You'd do better to look through the lens of class," she was told. Professors told me there were no significant Dalit thinkers. They said they won't take me on or support this line of inquiry. I was shut out and shut down by the professors I'd hoped to learn from.[20] (Soundararajan, 2022)

She came to realize that all the Indian professors at UC Berkeley were caste-privileged. The fact that they were gatekeeping a Dalit hindering and dissuading me from the pursuit of knowledge with which she might free herself was an act of significant epistemic injustice, Epistemic Injustice refers to those forms of unfair treatment that relate to issues of knowledge, understanding, and participation in communicative practices. These issues include a wide range of topics concerning wrongful treatment and unjust structures in meaning-making and knowledge-producing practices. Miranda Fricker speaks about epistemic injustice where someone is wronged in the capacity of a knower and their essential human value in the work.[21] (Fricker, 2007)

We can also relate to some of the incidents which took up many lives of untouchables, where the government did not take any initiative for the victims and

their struggling families, due to caste issues. The world's worst industrial accident was in Bhopal, where over forty tons of deadly gas exploded from the Union Carbide pesticide plant, killing thousands and a disproportionate number of those deaths were of people called "untouchables" The Indian government, Union Carbide, and its parent company, Dow Dupont, all continue pointing fingers at each other, while the seventy-acre site in Bhopal has yet to be cleaned up. Many survivors struggle even today.[22] (Mandeville, 2018)

Caste discrimination, poverty, and lack of social mobility have resulted in over 70 percent of Dalit women facing health problems, and one in four Dalit women aged fifteen to forty-nine is undernourished. Dalit women face the compounded challenge of caste-based sexual violence, a key tool of maintaining a climate of terror and shame, so Dalits fear challenging the system. More than 67 percent of Dalit women have experienced sexual violence.6 The average age of death for Dalit women is thirty-nine.[23](Nigar, 2018)

You could just equate or substitute the word "Caste" with "suffering". According to the Indian National Human Rights Commission Report on the Prevention of Atrocities against Scheduled Castes, every hour two Dalits are assaulted; every day three Dalits women are raped, two Dalits are murdered, and two Dalit homes are torched. A crime against a Dalit happens every eighteen minutes. This is happening today right now, in the twenty-first century.[24] (Saxena, 2021)

Public health workers refuse to visit Dalit homes in 33 percent of villages. Dalits are prevented from entering police stations in 28 percent of villages. Dalit children have to sit separately while eating in 38 percent of government schools. Dalits do not get mail delivered to their homes in 24 percent of villages. Dalits are denied access to water sources in 48 percent of villages.[24] (Saxena, 2021)

On January 17, 2016, a bright Ph.D. student named Rohith Vemula chose death as a way out. Is it any wonder that so many caste-oppressed people see death as the only path to liberation? In Rohith's Final letter, he wrote, "I feel a growing gap between my soul and my body. I have become a monster.". He captures how alien and wrong this isolated state of being is- the division, the separation, at the core of caste apartheid. This is not a natural state for anyone, for any living being. It is a place of unthinkable, unspeakable pain and suffering. That state of suffering eclipses every dream of possibility, the wonder of life.

The same year Rohith took his own life, the same year Rohith took his own life, a seventeen-year-old Dalit girl named Delta Meghwal was found dead, after having been raped by a teacher at her college. The police called it suicide, but her family did not believe it was as simple as that- especially since her perpetrator asserted that their relationship was consensual. But due to her family's heroic persistence for justice, her rapist Vijendra Singh was finally convicted of kidnapping, raping, and aiding the suicide of a minor five years after her tragic death.[25] (Akodia, 2021)

The body's response to the experience of casteism can make accessing resources to cope with the situation difficult. Caste stress evokes anger, anxiety, difficulty in controlling emotions, fear, frustration, depression, helplessness, hopelessness, hypervigilance, imposter syndrome, insecurity, isolation, low self-esteem, paranoia, resentment, sadness, self-blame, and self-doubt. Over time we can somatize these emotions into serious conditions like heart diseases, diabetes, hypertension, and chronic pain. This is why we must name without question that caste is in our bodies and is killing caste-oppressed people.

If Brahminization is all about separation, then the healing from Brahminization has to be about connectedness. As the author and healer Rachel Naomi Remen says,

Healing is not a relationship between an expert and a problem… it is a relationship between human beings. In the presence of another whole person, no one needs to feel ashamed of their present pain or weakness and be separated from Others by it. No one needs to feel alone and small. The wound in me evokes the healer in you and the wound in you evokes the healer in me.[26] (Remen, 2010)

We must realize that there is a cost to pay for everything. There is a cost every time you stay silent and are complicit in the face of violence. There is a cost when you are trained to lift yourself at the expense of others. When you are brainwashed to believe that someone else is less than you, doesn't deserve to sit at your table, should eat at your feet, doesn't deserve to stay in your home, actually deserves segregation and deprivation of comfort or stability or dignity, how numb must you become to bear it? How frozen is your heart? How fundamentally broken is your consciousness? Because to another is to lose your humanity.

We reject this heinous system and call ourselves Dalits, people who are broken by a system yet maintain the resilience to fight for our dignity and freedom. Dalits have to develop a very deep existential strength because we have to challenge spiritual dogma, the very firmament of the divine, to forge our dignity and chart a pathway to ourselves and our freedom. It requires a great will to take on the gravity of who you are in the face of a society that insists you are not equal and therefore not human. That's a muscle that many oppressed people develop because it is untenable to accept your extinguishment. It is untenable to accept that there is no possibility, we must find a way to our humanity or perish.

One of the harms propagated by Darwin's theory of evolution was the idea that the natural order was solely defined by competition. However, I believe that natural order is also about interconnectedness and collaboration. The eternal lesson I've learned as a Dalit person is that the burden of Dalitness is too much for one person to bear. We carry what we can when we can in the moment. I recognize there are many people for whom the burden of being out is too heavy. And some don't have a choice, who must be out because there isn't an option. Others are out and hold space for those who must stay hidden. Whatever a caste-oppressed person chooses what is important is the movement towards our integration into humanity.[20] (Soundararajan, 2022)

Caste-related answers are elusive. So much is hidden. So much remains unspoken. There's so much shame, concealment, and collusion. It is a taboo perpetuated by ignorance and violence. Crossing it, even with a child's curiosity, is like climbing a mountain of trauma in the dark. You need all of your senses and modes of knowing, whether rational, experiential, physical, historical, ancestral, or heartfelt. Caste took generations to build and fortify, and it will take a lifetime to unlearn.

Dalits face a double-blind situation in majority-white institutions, where they must be acknowledged by both white supremacist knowledge frameworks and Brahmin gatekeepers. It has been a challenging task because there are so few tenured Dalit professors in the United States and Europe. Many of our great anti-caste writers are not even included in the canon of philosophers on liberty and human rights. As a result, part of our struggle for freedom as Dalits is figuring out how to make our cause more visible without compromising ourselves. We may be brought to the table in the guise of diversity, but we are not given the ability to shape the conversation.

Assimilation has a seductive quality that invites us to give up our self-determination or deradicalize our aspirations for equity to obtain prominence. As caste-oppressed people, we must recognize and avoid this trap. Only we can determine our worldview, knowledge systems, cultural understanding, practices, myths, and wisdom. Legibility is not the same as legitimation, which is beyond the point. We must have boundaries and clarity of vision to see that our freedom is not contingent on certification by our oppressors.[20] (Soundararajan, 2022).

Safiya Noble investigates and exposes the racial disparities built into algorithms, data, and internet activities in the United States. This is an urgent call due to the terrible practices in the United. This is an essential call since democratic activities are increasingly being digitalized around the world. So, if the so sector is Brahminized, is our democracy, and we shall witness the final reinscription of caste for future generations under a terrifying new digital system.[27] (Noble, 2018)

This is a territory that is particularly suitable to Brahmins, who regard themselves to be the academic caste. They thrive on identifying as knowledge makers. From the Vedic scriptures onward, they have been data hoarders, deciding who has access and who speaks the language in which it is written. It's terrifying to consider what they might do with data sets under their control and voter lists to weaponize. It's not surprising that, despite the prevalence of South Asians in Silicon Valley businesses, only a few organizations have designated caste as a protected group. Many CEOs are dominant caste, including those at Microsoft, Twitter, and Alphabet, thus they cannot pretend that they don't know what caste is.

When we talk about sexual violence and caste, we often see violence against low-caste women because ritual acts of rape and sexual mutilation, particularly on the bodies of women and nonbinary persons, are used to enforce caste. Many cases of caste-based sexual violence involve performative violence: It's not only about sex or lust; it's more than just taking and stealing. They do more than just

rape a lady; they want to strip her naked, shave her head, smear her in tar, and sexually mutilate her. The conduct is intended to dishonour. Shame is an effective tool in our society. Everything they do to a Dalit woman has a symbolic meaning for her Dalit family and the Dalit people. It is done publicly as a reminder. This is what happens when you step out of line. A human body becomes a billboard, reminding the oppressed of the consequences of resisting domination.

Every aspect of the system that should provide healing, assistance, and justice to a woman who has experienced caste rape or sexual abuse has failed. The doctors who examine her will fail to collect proof, call her a liar, and subject her to the "two-finger test" to determine how loose her vaginal canal is, leading them to assume she is morally tainted. The cops will occasionally rape or molest her again, as well as harass and humiliate her. They have even been known to set fire to the body of a lady who died as a result of injuries sustained during a horrific rape, destroying any proof. The judges and justices will frequently twist the case around and accuse the survivor of being the one who attacked the perpetrator, a form of gaslighting known as "lie cases."

District collectors, who are responsible for reporting caste-rape crimes to establish accountability metrics, purposefully reduce and disregard reports. None of this is abnormal; it is the usual. When you see all of the systemic barriers to Dalit women and survivors receiving justice, you realize that the fight for justice is distinct from the fight for healing. Engaging oppressed survivors in pursuit of justice without giving them routes to recovery is unethical, as the system harms survivors and their families. And it is not limited to cisgender women; it affects people of all genders. Survivors of gender-based violence say that this abuse will not define them. The meaning we make of it will define us.

When many Dalits first went online, particularly on social media, there was an illusion of freedom and democracy: Oh, I can finally break free from the monopoly of Brahminical media. I have a direct platform to share with the world, and I can raise all of these topics. I have a voice and a platform, and I want to interact with others. Many of the earliest Dalits online were Dalit feminists who used the forums for organizing, advocacy, and representation. Those platforms are quite appealing, especially for folks who have never been represented. Wow, I now have followers. I now have a platform. However, it is a foundation constructed on shaky ground because we were among the first to be targeted online.**20** (Soundararajan, 2022)

Everything about overcoming Brahmanism is about regaining control of one's identity as a Dalit. We have a choice in how we choose to be identified. We get to choose how we wish to be named. We can choose which religion to practice. We have the option of choosing who we want to be with or not. The removal of consent is such an important aspect of Brahminism's violation. I believe the only way to heal from such a wound is with cooperation. You establish consent by allowing people to make their own decisions and reminding them of their boundless exis-

tential possibilities. That is how you get from the margins to the center. We are liminal beings who reject binaries and accept that anything is possible when caste is abolished.**20** (Soundararajan, 2022)

To recover from Brahminism, Dalit women, Dalit Queer people, and Dalit non-binary individuals must rediscover consent to harmful Brahminical norms that have harmed our bodies and psyches. Knowing how to seek and give consent is an important step toward debrahminizing our bodies, hearts, and relationships. We may heal together, alongside one another. When we begin to design methods for returning consent, we must consider both the person and the group.

As Peter Levine reminds us,

Trauma is a fact of life. It does not, however, have to be a life sentence. Not only can trauma be healed, but with appropriate guidance and support, it can be transformative. Trauma has the potential to be one of the most significant forces for psychological, social, and spiritual awakenings and evolution. How we handle trauma (as individuals, communities, and societies) greatly influences the quality of our lives. It ultimately affects how or even whether we will survive as a species.[28] (Levine, 2012)

To openly declare that you are a survivor also implies that you are not accountable for the abuse. It shines through the humiliation. Survivors of gender violence and caste-based sexual abuse are rarely outspoken about their experiences in South Asia due to feelings of shame. I want to be open about being a victim because people need to know that leaders can be survivors and that the shame lies not with us, but with the system that created the conditions for this brutality. The blame belongs to the individual who was so lost that they attempted to take another person's humanity.

The author wants other survivors to know that there is life beyond the caste wound, and it is lovely, especially when we return to ourselves. That there is a location where they can experience joy again without being plagued by worry, panic attacks, or nightmares. Some of this stems from the restoration of bodily joy. When you consider Brahminism in conjunction with patriarchy, there is a lot of policing of the body: what it can look like, what it can eat, who it can procreate with, who is pure, and who is not. The elimination of caste occurs when Dalits embrace pleasure in their bodies and begin to experience life as sensual and loving. We want to connect with other beings. To recuperate the thrill of sensation, to rediscover what it means to have an orgasm and claim it as your own. And not to let anyone tell you who you should love or what gender you will be. These are all ways for us to heal from the cruelty of Brahminical patriarchy.[20] (Soundararajan, 2022)

In The Final Frontier, the author poses an imaginary fundamental question that remains central to artistic practice: can we dream beyond our oppression? How do we envision interdependence? We are currently imagining our own lives. We are reflecting on the greatest dilemma of our time: white supremacy and Brahminism's incapacity to believe that the rest of the world, even the earth itself,

counts. "Find me and I will find you." She brings questions into the present moment: Are we brave enough to continue dreaming? Are we brave enough to keep the door open while despair, rage, and greed try to close it? Can we love ourselves enough to refuse to do the oppressors' labor for them? To stop our loved ones from self-erasure? What are we willing to do for possibility?**20** (Soundararajan, 2022)

It's a call to question everything so that we can rethink what's possible. This is a message to the world that the time has come to stand with the Dalits. Regardless of where you are from, what spiritual practice you engage in, or whether you have any link to caste apartheid.

Because the world supported the civil rights movement in the United States and the anti-apartheid campaign in South Africa, these causes were successful. In the name of all who have suffered from systems of division, exclusion, and exploitation, the world must now join with Dalits to put an end to caste oppression's atrocities. We have gone too long without a global compassionate witness to our struggle, and all we want is a reconnection to humanity. Our restoration to humanity necessitates a reconnecting of material solidarity with all people around the world.

As indigenous leader Sherri Mitchell gently guides us in her book Sacred Instructions: "A wound cannot be healed by pretending that it doesn't exist. It must be examined, cleansed, and tended. To create a healthy path forward, we must deal with the spiritual illness that plagues our past and present reality."**29** (Mitchell, 2018)

Conclusion:

The Trauma of caste considers the caste soul wound as a great teacher. That wound's poignant lessons hold wisdom not just for Dalits or South Asians, but also for all those committed to liberation and healing from trauma. When we take the time to attend to our wounds as both the oppressed and the oppressors as well as the wounds of our ancestors, we can awaken to the possibility of ending our collective suffering. Only then can we keep the cycle of trauma from repeating in future generations. International Dalit Solidarity Network and the Indian Institute of Dalit Studies attempted to provide data on the full extent of caste across all the countries in the region through which we can deal with the situation should be highlighted in the mainstream media.

❐

References :

1. *Laplanche J, Pontalis JB. The Language of Psycho-Analysis. W. W. Norton and Company. (1967). pp. 465–9*
2. *Janoff-Bulman R. Shattered assumptions. Towards a new psychology of trauma. New York: The Free Press.1992.*
3. *The Wisdom of Trauma, the official website for the documentary film, 2021, https:// thewisdomoftrauma.com/.pp.18*
4. *Levine A. Peter. In an Unspoken Voice (Berkeley, CA: North Atlantic Books. 2012.pp.19*
5. *Haines K. Staci. The Politics of Trauma: Somatics, Healing, and Social Justice. Berkeley, CA: North Atlantic Books, 2019. pp.30*
6. *Omvedt, Gail. Buddhism in India: Challenging Brahminism and Caste (New Delhi: Sage Publica tions India, 2014), 41-48*
7. *Omvedt, Gail. Buddhism in India,44, Rig Veda 10.90.11-12; Stephanie W. Jamison and Joel P. Brereton, eds, and trans., The Rigveda: The Earliest Religious Poetry of India, 1537-40 (New York:*

Oxford University Press, 2017), Rig Veda 10.90.11-12; Wendy Doniger O'Flaherty, trans., The Rig Veda: An Anthology (London: Penguin, 1994), 28, Rig Veda 10.90.11-12.

8. *Keane, David. Caste-Based Discrimination in International Human Rights Law. (London: Taylor and Francis, 2016). Pp. 25.*
9. *Ambedkar. B. R. Who were the Shudra? Namaskar Publishers. 2022. Pg: 5*
10. *This quote draws from a conversation Bhishma had on his deathbed in the Anushasana Parva, the Thirteenth book of the Sanskrit Mahabharata, chapter 33, For additional citations on the Sanskrit Mahabharata, see Kisari Mohan Ganguli, trans., "Section XXXIII," Mahabharata, Wisdom Li brary, August 18, 2021, https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/the -mahabharata-mohan/d/ doc826358.html.*
11. *Roebuck. J. Valerie. Chandogya Upanishad, Book 5 Chapter X, Verse 7," in The Upanishads. London: Penguin, 2003. Pp.238.*
12. *Olivelle, Patrick. Manu's Code of Law (New York: Oxford University Press, 2005), 7-8.*
13. *Olivelle, Patrick and Olivelle Suman, trans., "Manusmriti Chapter 10: 51-54," in Manu's Code of Law: Critical Edition and Translation of the Manava-Dharmas sastra (New York: Oxford Univer sity Press, 2007),337; Wendy Doniger, trans., "Manusmriti Chapter 10: 51-54," in The Laws of Manu: with an Introduction and Notes (London: Penguin, 2000), 240-50.*
14. *Duran, Eduardo. Healing the Soul Wound: Trauma-Informed Counseling for Indigenous Commu nities. New York: Teachers College Press, 2019. Pp.131*
15. *Karunyakare, Lella. History of Dalit Identity. Dalwais Publishers. 2021. Pp*
16. *Mani Ranjan Brij. Debrahminizing History: Dominance and Resistance in Indian Society. New Delhi: Manahor. 2005. Pg: 4-24.*
17. *B.R. Ambedkar. Caste in India: Their Mechanism, Genesis and Development. Indian Antiquary. Vol.41. May 1917.*
18. *Patankar, Prachi. It's Time for Funders to Debrahminizing Philanthropy. Alliance. Dec 5, 2021. Pp.45-6 https://www.alliancemagazine.org/blog/its-time-for-funders-to-debramanize-philanthropy/*
19. *Tate, Reena. Communities Discriminated on Work and Descent in South Asia- Status of Modern Slavery, Asia Dalit Rights Forum, October 2021. Pp.91*
20. *Soundararajan, Thenmozhi. The Trauma of Caste: A Dalit Feminist Meditation on Survivorship, Healing, and Abolition. North Atlantic Books. 2022. pp.58,59*
21. *Fricker, Miranda. Epistemic Injustice: Power and the Ethics of Knowing. Oxford, England: Oxford University Press, 2007. Pp.43*
22. *Mandavilli, Apoorva. The World's Worst Industrial Disaster Is Still Unfolding. Atlantic, July 10, 2018. Pp.15 https://www.theatlantic.com/science/archive/2018/07/the-worlds-worst-industrial-dis aster-is-still-unfolding/560726/.*
23. *Nigar, Shazia. India's Dalit Women Lack Access to Healthcare and Die Young. Asia Times. June 15, 2018. Pp.25. https://asiatimes.com/2018/06/indias-dalit-women-lack-access-to-healthcare-and-die-young/.*
24. *Saxena. B. K. National Human Rights Commission Report on the Prevention and Atrocities against Scheduled Castes," National Human Rights Commission, India, n.d., accessed October 9, 2021. Pp.16-17 https://web.archive.org/web/20070508052156/https://www.nhrc.nic.in/publications/ reportKBSaxena.pdf.*
25. *Akodia, Avadhesh. Five Years After Dalit Minor was raped, Driven to Sucide, Court Holds 3 Responsible, The Wire, Oct 9, 2021. https://thewire.in/rights/five-years-after-dalit-miinor-was-raped-driven-to-sucide-court-pronounces-3-guilty.*
26. *Remen Naomi Rachel. Some Thoughts on Healing. August 16, 2010. Pp.131-32 https://www. rachelremen.com/some-thoughts-on-healing/.*
27. *Noble, Umoja Safiya. Algorithms of Oppression: How Search Engines Reinforce Racism (New York: New York University Press,2018). Pp.117*
28. *Levine, A Levine, In an Unspoken Voice. Berkeley, CA: North Atlantic Books, 2012. Pp.141*
29. *Mitchell L. Sherri. Sacred Instructions: Indigenous Wisdom for Living Spirit-Based Change. Berkeley, CA: North Atlantic Books, 2018, pp.39.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 118–125

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Economic Empowerment of Women A Study of Cuttack District (Odisha)

Sarita Mallick
Research Scholar, Ramadevi Women's University,
Bhoinagar, Bhubaneswar, Odisha -751022
Email: saritamallick88@gmail.com

Prof. (Dr.) Nibedita Mishra
Principal, Govt. Women's College, Puri, Odisha.
Email: littlenibedita@gmail.com

Abstract

Women's empowerment is vital to national progress, and their freedom enlightens their families and nation. In the present-day context, women flourish in all fields besides running a business, raising their families, and studying science and technology. Even though they make money, most lack economic empowerment. Earnings help married women lead families. Family development is better with middle-class women's salaries. However, many people cannot make financial decisions. This article examines women's economic empowerment in general and the Cuttack districts of Odisha in particular, where it found that despite progress made by the women, they are yet to be economically empowered.

Keywords: Employment of Women, Economic Empowerment, Empowerment of Women

Introduction :

India's population will top the world population by 2050. National economic success depends on women's empowerment; however, only independence and freedom can help women to develop and flourish. Empowerment is a contentious issue, and economic empowerment is essential for women. Nowadays, most women are financially, physically, and morally dependent. Despite rising literacy and knowledge, women need economic empowerment and independent decision-making. Women's economic independence demands employment. Indian women should be able to spend their money according to their requirements and needs. In many Indian families, women are not given financial support, and husbands or families dominate. In India, gender imbalance in health, education, and literacy causes major social divisions. Many NGOs and civil society groups work to strengthen women's rights, but few target women for their amelioration. Despite increased focus, lobbying, and

government programmes to empower women, women's empowerment organisations have limited policy space.

Women Economic Empowerment :

Empowerment gives people more flexibility to choose and act, and economic empowerment for women hinges on resources and intelligent usage. The advancement of women's economic empowerment is contingent upon the availability of resources and their skill level. Furthermore, it highlights women's power over their financial support and access to financial prospects. Women need economic opportunities and benefit control. When making strategic decisions with resources, women often struggle. The reliance on unpaid work, whether at home or in the market (such as agriculture), hinders women's economic empowerment. To advance women's rights and gender equality, social institutions must be structurally modified to remove and overcome obstacles to economic empowerment. This increases and makes the women impoverished and poverty-stricken, reducing their ability to work unpaid in the formal sector. Societal institutions must support gender equality and women's rights to remove economic hurdles for women. Conflict and post-conflict hinder women's economic development (Priya. K 2015: 76)[1]; Thanikaivel M. and Priya K. 2018: 152)[2]. The reconstruction plan does not prioritise gender-related development objectives, and varied parties (government and civil society) have weak implementation capacity. People are becoming more conscious of women's economic empowerment, particularly the potential to shift discriminatory gender norms. Women's economic empowerment can contribute to strategic development goals and new economic possibilities by expanding their responsibilities during the conflict. Economic development for women promotes gender equality. Women make up most economically disadvantaged groups, so their needs must be prioritized. Gender roles and social norms limit men's and women's productivity and ability to adapt.

Women Empowerment in India:

Despite its growing economy, India's social and economic ethos is disrupted by poverty, corruption, and inequality (7.3 per cent in 2014-15). Women's social, economic, and political exclusion shows a lack of inclusive progress and gender inequality. The gender disparity index ranks India 127th out of 187 countries at 0.536. Poverty, corruption, customer service, and inequality continue to plague India's social and economic fabric despite its rising GDP (7.3 per cent in 2014-15). Female graduates comprise 42 per cent of the workforce, but safety, environment, and family support deter them from working. Unorganised rural women work the most, whereas services and industries employ less than 20 per cent of women. Traditional culture and traditions affect women's public and private lives.

Caste barriers discriminate against Scheduled Caste and Dalit women. To address Dalit women's historical disadvantage and vulnerability, the government conceded the Protection of Civil Rights Act (PCRA) and the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act. The Department of Women and Child Development obtained a significant budget boost. The Department of Women

and Child Development's budget has grown dramatically. Women's economic empowerment depends on their participation in all income, investment, and expenditure decisions. Giving women power means letting them make decisions at all levels, within and beyond the home, and being recognised as equal societal partners. Women are being helped to earn more and control their households and societal assets.

Increased family asset value, earnings, savings, loan amount, and revenue indicate financial independence. Swedish development cooperation stresses women's economic empowerment to promote gender equality and rights. To reduce poverty, gender equality and economic empowerment for women must be the priority. Addressing gender inequality and empowering women is "smart economics," says the World Bank. Gender equality improves productivity, development, and institutional representation. The World Bank stresses the importance of empowering women as economic, political, and social actors to shape policies and encourage inclusive decision-making. Women's economic enablement has lagged despite global advancements in narrowing gender gaps in health and education, and there is no evidence that economic growth fosters gender equality. The Growth and Economic Opportunities for Women (GrOW) program of the International Development Research Centre (IDRC) was created to provide policy lessons, insights, and practical solutions that could advance gender equality. These included the role of organisations and macroeconomic progress, obstacles to women's access to the labour market, and the effects of women's caregiving responsibilities. To present rigorous and multidisciplinary research from innovative programs, highlighting themes like the shift from school to the workplace, child weddings, unpaid native work and childcare, labour bazaar exclusion, and the impact of social and cultural norms that impede women from fully engaging in higher-paying economic sectors. (Arjan de Haan, 2015:3)[3]. Gendered power systems and social norms reduce men's and women's productivity and decision-making. Men and women benefit from gender equality; however, this article focuses on women's economic empowerment due to marginalisation. Empowering impoverished men and improving men's interactions with women (e.g., husbands letting women earn income, fathers encouraging girls' secondary study) are crucial. It is now widely acknowledged and deemed desirable that women be empowered socially and economically. To empower women socially, economically, and in decision-making, they must take charge of their lives, become aware of their circumstances, acquire skills, boost their confidence, solve difficulties, and become self-sufficient. (Selvaraj. N, 2016: 1).[4]

Objectives

1. To unearth the economic empowerment of both employed and unemployed women.
2. To suggest suitable measures to facilitate the economic empowerment of women.

Methodology

Selection of Area and District: The study area was chosen based on the number of women workers and the variety of employment opportunities. Cuttack district was strategically selected to select the sample of respondents. **Sampling:** This study uses purposive sampling. The study identified the visible female workers from several industries. Four hundred random responders are sampled for the study. **Including and excluding standards:** The researcher's principal purpose was to establish how married women can gain economic empowerment; hence, single women were excluded. **Method Selection:** With a questionnaire schedule, interviews are used to acquire and gather the data and information. **Tool preparation:** A closed-ended, structured questionnaire timeline has been developed. A scale containing economic empowerment indicators was created after the literature review, analysis, and expert consultation. Layman-friendly questionnaires are used to collect the data. **Study set-up:** The investigator established a good connection and rapport building with respondents to ensure involvement. After that, data was collected using a timed questionnaire to keep the study's purpose. 'Odiya', the local language, was used to collect the information, but later, it was developed into English. **Data Analysis:** Parametric and non-parametric statistics are used in this study. The results are analysed statistically and presented below.

Table-1. Earning Money

No.	Types of Earning Money	Employed	Percentage	Unemployed	Percentage
1	Cash only	30	15	70	35
2	Deposit amount or cheque	40	20	20	10
3	Account transfer	70	35	40	20
4	Kind only	40	20	30	15
5	Not paid	20	10	40	20
	Total	200	100	200	100
Chi square- ?2=38.944, df-4, Sig-0.000					

Table-2. Income contributed to the family

No.	Enhancement of the Status in the family	Employed	Percentage	Unemployed	Percentage
1	NIL	20	10	40	20
2	0-25%	100	50	60	30
3	25-50%	50	25	50	25
4	50-75%	20	10	30	15
5	75-100%	10	5	20	1
	Total	200	100	200	100
Chi square- ?2=22.000, df-4, Sig-0.000					

Table -3. Decisions taken regarding different activities

No.	Involvement in decision making process	Employed	Percentage	Unemployed	Percentage
1	Self	50	25	30	15
2	Never/sometimes/always	30	15	80	40
3	Husband	80	40	70	35
4	Wife(E/UE)	20	10	10	5
5	Parents	20	10	10	5
6	any other	Nil	Nil	Nil	Nil
	Total	200	100	200	100
	Chi square- ?2=35.061, df-4, Sig-0.000				

Table -4. Keep of self-salary

No.	Keep salary	Employed	Percentage	Unemployed	Percentage
1	In-laws	20	10	Nil	Nil
2	Husband	140	70	170	85
3	Self	20	10	10	5
4	Children/boy/girl	20	10	20	10
	Total	200	100	200	100
	Chi square- ?2=26.237, df-3, Sig-0.000				

Table-5. Owned assets

No.	Types of assets	Employed	Percentage (%)	Unemployed	Percentage (%)
1	Bank account	160	80	100	50
2	Fixed deposits	20	10	50	25
3	Lands	10	5	20	10
4	House	10	5	10	5
5	Ornaments	Nil	Nil	20	10
6	Shares	Nil	Nil	Nil	Nil
7	Bonds	Nil	Nil	Nil	Nil
8	Any other	Nil	Nil	Nil	Nil
	Total	200	100	200	100
	Chi square- ?2=50.037, df-4, Sig-0.000				

Table-6. Types of bank account

No.	Joint and personal accounts	Employed	Percentage	unemployed	Percentage
1	Personal	160	80	100	50
2	Joint	40	20	100	50
	Total	200	100	200	100
	Chi square- ?2=39.560, df-1, Sig-0.000				

Table-7 Operation of own accounts

No.	Operate own accounts	Employed	Percentage	Unemployed	Percentage
1	Respondent	160	80	100	50
2	Husband	20	10	80	40
3	Father/Mother	20	10	20	10
	Total	200	100	200	100
Chi square- ?2=49.846, df-2, Sig-0.000					

Result and Discussion

Table 1 shows that 35% of employed respondents earn money through account transfers, 20% through checks or deposits, 20% in kind, 15% in cash, and 10% do not earn any money. Thirty-five per cent of unemployed respondents make money through cash payments, 20 per cent through account transfers, 20 per cent do not make any money, 15 per cent only in kind, and 10 per cent through checks or deposits. This variable was statistically analyzed using chi-square. The result showed a significant ($p<0.01$) chi-square value of 38.944 with 4 degrees of freedom. Table 2 shows that 50% of employed respondents contribute 0-25% of their income to the family, 25% contribute 25-50%, 10% contribute 50-70%, 10% do not contribute, and 5% contribute 75-100%. However, 30% of unemployed respondents contribute 0 to 25% of their income to the family, 25% contribute 25 to 50%, 20% do not contribute any income, 15% of employed respondents contribute 50 to 75%, 10% contribute 75 to 100%, and only 20% contribute 20%. The chi-square value showed that the two groups of respondents contributed dramatically different amounts to their families. Table 4 shows that 70% of employed respondents' husbands take their pay, 10% of their in-laws do, 10% keep their salary, and 10% of their children do. For unemployed responders, 85% of their spouses take their pay, 5% take it themselves, and 10% take it from their children/boy/girl. With 3 degrees of liberty, the chi-square value was 26.237 and significant. ($p<0.01$). Table 5 shows that 80% of employed respondents have bank accounts, 10% have fixed deposits, 5% own a house, and 5% own land.

The table and figure show that none of the employed respondents own jewellery, shares, bonds, or other assets. Additionally, 50% of unemployed respondents have bank accounts, 25% have fixed deposits, 10% have land, 10% have ornaments, and just 5% have houses. The chart shows they do not have ornaments, shares, or bonds. Using chi-square analysis, the difference between working and jobless women respondents' assets was 50.037 with 4 degrees of freedom, statistically significant. Table 6 shows respondents' responses to a questionnaire on their account types. The table shows that 80 per cent of employed respondents have personal bank accounts, 20 per cent have joint bank accounts, while 50 per cent of jobless respondents have personal and 50 per cent have combined bank accounts. The chi-square value for this impact was 39.560, indicating statistical significance.

Table 7 reveals that 80% of employed respondents operate their bank accounts, 10% by their husbands, and 10% by their parents.

However, 50% of unemployed respondents say they operate their bank accounts, 40% say their husbands do, and 10% say their father or mother does. The statistical chi-square value for this effect was 49.846 and significant. Table 3 shows that 40% of employed respondents' husbands make decisions about different activities, 25% of respondents make decisions themselves, 15% never make any decisions, 10% of respondents' wives (E/UE) make decisions, and 10% of respondents' parents make decisions. Similarly, 40% of unemployed respondents never decide about different activities, 35% of their husbands do, 15% do, 5% of their wives (E/UE) do, and only 5% of their parents do. The chi-square value showed a substantial difference in activity decisions between the two groups of respondents (35.061).

Conclusion :

This paper emphasises women's economic empowerment. Women's development includes the household, society, and nation. Female empowerment requires economic empowerment. Economic empowerment opens doors for women. Talent, competence, abilities, sincerity, and commitment will improve results for all. The government must safeguard, assist, and guide citizens. The comparative economic empowerment of both employed and unemployed women reveals that those who are employed also do not have economic empowerment owing to several family and gender-based stereotypes. Suitable measures to facilitate women's economic empowerment require a holistic change of attitude, and equal partner concepts must be nurtured to bring women on equal footing. The tasks for women's economic empowerment expand in conflict and post-conflict situations. It results from the political agenda for rebuilding, which places a low priority on gender-related development objectives and the various actors' limited ability to implement them, particularly in the government and civil society. Nonetheless, there is frequently a greater understanding of the chances for women's economic empowerment during and after conflicts, including the opportunity to alter historical gender norms that discriminate against them.

In addition, women's economic empowerment latently contributes to new economic scenarios for women and tactical development goals based on the new economic roles women created throughout the conflict. One of the most important elements promoting gender equality is women's economic empowerment. An emphasis on women, in particular, is required because women comprise many economically disadvantaged populations. Social conventions and gendered power structures keep men and women in roles that restrict their productivity and capacity to make decisions that will improve their circumstances.

The National Family and Health Survey-based report also reveals the relationship between women's empowerment and economic growth from 2006 to 2021 to corroborate the study's findings. It reveals a positive influence on economic empowerment but a more subdued, if not hostile, effect on women's agency; signifi-

cant but minor associations of state gross domestic product with all women's empowerment indicators; economic empowerment factors such as bank account ownership and employment demonstrate the highest responsiveness to gross domestic product. Visual inspections show that economic growth's predictive capacity and association with women's empowerment decreases with rising SGDP at individual and ecological levels (Ambade, M, and Aparajita Choudhury, 2024: 125)[5].

❐

References :

1. *Priya. K (2015) A study on Women Empowerment self-help group with special reference in Namakkal Dt", International Journal of Research & Business Innovation. ISSN 2321-5615- volume.3No.5, pp.75-77.*
2. *2. Thanikaivel M. and Priya K. (2018) Economic Empowerment Of Women In India, International Journal of Technical Research & Science, Volume 3 Issue VII, August pp. 251-253*
3. *Arjan de Haan, (2015), The Win-Win Case for Women's Economic Empowerment and Growth: Review of the Literature, Institute for the Study of International Development, Grow Working Paper Series GWP-2017-03 – Concept Paper, pp -1-39.*
4. *Selvaraj. N, (2016), "Impact of Micro-Credit on Economic Empowerment of Women in Madurai, Tamilnadu: A Study", Journal of Global Economics, Vol- 4; Iss-4, pp-1-5.*
5. *Ambade, M, and Aparajita Choudhury (2024), Economic Growth and Women's Empowerment: A Repeated Cross-sectional Study from India, Economic and Political Weekly, Vol 59, Issue no. 36, September, pp. 123-128*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 1126–136

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

150 Years After Indenture : Continuity and Change in the Caste Structure of Mauritian Girmitiyas

Shweta Sagar
Research Scholar, Department of Sociology, Patna University, Patna
E-mail: shwetasagar51@gmail.com

R. N. Sharma
Professor, Department of Sociology, Patna University, Patna
E-mail: rn.sharma.pu@gmail.com

Abstract

This paper explores the complexities of caste among indentured Indian laborers in Mauritius, challenging the notion that the system was eradicated by migration. Despite claims that indenture led to caste dissolution, evidence suggests that caste identity and endogamy persisted, particularly among larger groups like the Ahir, Chamar, and Dusadh. The role of Indian middlemen (sirdar), recruitment based on caste ties, and continued caste-based practices in marriage and social relations illustrate that caste structures adapted rather than disappeared. While the absence of Brahmins and the multicultural context of Mauritius have contributed to a softening of caste distinctions in public life, private realms such as marriage remain governed by caste considerations. The study highlights the reassertion of caste divides as markers of ethnic identity, even as Mauritian society evolves. This reflects broader debates about caste mobility and the persistence of socio-religious hierarchies in diaspora communities. While political mobilizations around caste in India are less influential in Mauritius, caste remains a latent factor in social relations, with both symbolic and practical implications for modern Mauritian Hindus.

Keywords: Indenture, Caste, Mauritius, Endogamy, Social stratification, Diaspora

Introduction

The concept of caste does not appear anywhere in Mauritius's social contracts. Indeed, at first, most people think they know nothing about their own caste status. Since the abolition of the indenture system, there has been widespread agreement, including among organisations that claim to speak for Mauritian Hinduism, that caste is outdated and backward. That India is being perverted by a caste sys-

tem that is unfair and antiquated is a common complaint from Mauritian Hindus. 'I can't understand why, in 2012, people still think in terms of castes,' the Prime Minister is seen in a cartoon published in Le Mauricien (14 May 2012), where he is feigning offence. The cartoonist then has the Prime Minister say, "I myself have three Rajput [former Dusadh Untouchables] ministers, which shows that I don't think that," replacing the Prime Minister's actual words with those of the comic character. This evasive explanation alludes to the unspoken caste-based quotas that control advancement to the top levels of Mauritian government.

Most of Mauritius's Hindu populations are organised into caste-specific "socio-cultural associations" like the Gahlot Rajput Maha Sabha and the Vaish Mukhti Sangh. The Arya Samaj, a group of reformers from India to Mauritius at the turn of the twentieth century, strongly condemns the caste system as an oppressive social order. However, in 1935, Chamar Untouchables created a new branch of the organisation called the Arya Ravived Pracharini Sabha and renamed it "Ravived."

It is inappropriate to bring up the caste system in modern day Mauritius. To cut a long story short, on May 9, 2010, members of the so-called main Commun Hindou, a loose coalition of Hindu extremist groups, burned a copy of the French magazine L'Express featuring an article about the caste system in Mauritius on its main page. However, there is no universal taboo. First, as with Indian secularism's caste taboo, the legal prohibition risks becoming the linchpin of the covert reproduction of caste. Second, electoral situations frequently promote the mobilisation and revival of caste identities. During an election meeting in front of the Vaish Welfare Association in 2010, a minister declared in Hindi: "The Prime Minister belongs to the Vaish first, then to the country, and finally to the world." What do you have to worry about when you are the Prime Minister and the government? You are in complete command of the country now" (Défimédia, February 9, 2010).

This demonstrates the existence of a fundamental categorisation that mirrors the varna-based Indian Brahminical caste system. Which of the three castes you belong to—Brahmin, Kshatriya, or Vaishya—has been assigned to you. All other groups are classified as ti nasyon, or "low castes," in contrast to those mentioned above "grand nasyon." The grand nasyon concept here is analogous to the Hindu dvija concept of being born twice. A ti or great nasyon can be an individual, a neighborhood, or a shrine. The Vaish can be seen as transitional castes, depending on the situation's specifics.

More subtle categorisations of castes are known as jati, and they include the Katri among the Babujee, the Ahir, Kurmi, or Koiri among the Vaish, the Chamar, Dusadh, or Nonia among the lowest castes, and so on. Some of the first indentured workers in the world were from Indigenous communities. Their descendants live in Mauritius today (Tinker 1974: 49). An old Bhojpuri woman described the group to me as "the Junglee," and she said, "They have dark skin; they're rude; and they often stay among themselves, up-hill, over there."

Consistent use of varna and jati needs to be clarified. More Mauritian citizens

identify as Vaish than Koiri or Kurmi, which are more accurate but less well-known words, especially among non-Hindus. In contrast to India, where jati is still considered necessary daily, the Vaishyas are never a majority in Mauritius. Family names and gotras (or "lineages") add still another layer of complexity. The Ahir jati includes the recognisable and respected Gwalbansh caste. The terms "Hindu caste" and "Chinese caste" are often used interchangeably, as are terms like "Bengali caste" and "Marathi caste." In addition, in Mauritius, Brahmins are exclusively priests.

These broad, regional classifications are often used without question in scholarly works devoted to Mauritius. According to them, the diminution of the caste system is "probably the most significant socio-religious change that occurred among Hindus in the Caribbean" (Vertovec, 2000: 52). The Disintegration of Caste and Changing Concepts of Indian Ethnic Identity in Mauritius was released in 1994 and is the definitive text on castes in Mauritius. According to the book's author, Oddvar Hollup, the Indian caste structure in Mauritius has been severely weakened. The entire Hindu diaspora, but indentured Hindus in particular, are said to agree with this assessment. All scholars concur that the Indian caste system "was never successfully established overseas" (Hollup 1994: 297), citing studies by Ghasarian (1991) on Réunion, Vertovec (2000) on Trinidad, Jayawardena (1971) and Mishra (1979) on Fiji, and Kumar (2012) on South Africa. However, the 'concept' of caste is still alive and well (Mayer 1967: 17), as they admit. Modern Hindu diaspora researchers in the West have come to the same conclusion. 'Castes have persisted, but not the system,' as both Kurien (2004: 40) and Burghart (1987: 12) have pointed out about the American and British contexts.

The research on the topic emphasises how caste in Mauritius appears to be largely irrelevant or ineffective. There are two possible arguments against this diagnosis. On the one hand, it promotes a false impression of the Indian caste system as rigid and unchanging. Most people compare the caste system in Mauritius to a watered-down version of India's and attribute any modifications to the indenture system. However, this could lead to an oversimplified understanding of Mauritian life, which fails to recognise the system's importance, hierarchy, and ideology beyond identifying particular castes as separate social groups.

One of the key arguments in favour of the caste system's decline or abolition in Mauritius is that its indentured history is fundamentally at odds with the ritual needs and taboos of the caste system. When indentured, one had to leave. India and crossing the ocean, known in Hinduism as kala pani (black waters), are forbidden. Both on the ships that sailed to Mauritius and at the plantations, it was difficult to adhere to Hindu rules for purity. Today's identity politics in Mauritius revolve around the indenture system and the stories it tells. Both slaves kidnapped in India (Tinker, 1974) and valiant conquerors who came to Mauritius to further Christianity have been used to describe indentured workers.

Indian culture's accumulated wisdom (Hazareesingh 1973). Indenture does

not have a single narrative or single experience. In the 1830s, indenture was mainly based on tribe recruitment due to a lack of legal regulation. The indenture system of the 1850s and the early 20th century are worlds apart from each other. From the 1870s onward, women and couples were recruited alongside the previously enlisted single men. While candidates in the early decades were utterly unaware of indenture, by the mid-1990s, this was no longer the case (Carter 1995). Sepoy troops escaping imperial India following the 1857 uprising, gullible pilgrims kidnapped at fairs, and impoverished farmers hoping for a better future all had very different personal circumstances. Such different settings were essential to the survival and evolution of the caste system in Mauritius.

It is difficult to determine the caste identities of indentured labourers (Carter 1995: 95 sq.). First, the registrations are unreliable and inconsistent, confusing castes, subcastes, surnames, occupations, and origins. There was either a lack of familiarity with caste names or sloppy documentation by British workers. Second, people who applied to be indentured servants had different approaches. Caste position was hotly challenged in 19th century India, as the chronic and violent inter-caste conflicts reveal (Servan-Schreiber 2001: 173), despite the prevailing assumption in Mauritius that caste members were docile Indian individuals dominated by an unescapable and tyrannical system. We can safely presume that many indentured workers took advantage of the system by claiming to belong to a higher caste than they were or by claiming a position that members of their caste were not typically afforded. The term "Brahmins from the boat" (Singaravelou 1991: 16) was used to make fun of these people. We also know of counter-strategies (Carter, 1995), such as the preference of some high-caste individuals to conceal their caste identity out of concern that the planters would view them as unsuited for agricultural work or too quick to federate the labourers due to their intellectual elite position. Emigrants were typical of the Indian population regarding caste distribution; nonetheless, most emigrants were from lower castes, as shown by statistical surveys (Benedict 1961: 21, Carter 1995: 98, Tinker 1974: 55).

The indentured workers' offspring have used victimisation tactics to argue for the abolition of caste. They see themselves as victims who were forcibly removed from their homelands. African slaves' culture, of course. This narrative compares the experience of kala pani to that of African slaves during the Middle Passage, and it likens the loss of identity that results from indenture to the social death that African slaves underwent (Patterson 1982). Nuance requires rejecting the claims of Hindu nationalists from the 19th century, who "pretended to assimilate India with the Hindu territory and long fought the very possibility that one could be a Hindu outside India" (Van der Veer & Vertovec 1991: 152).

On the one hand, it's essential to avoid imagining rural India of the 19th century as an insular community that never had any interaction with or ability to adapt to the outside world. Two-thirds of the indentured workers came from the Bhojpuri region, which is famous for the historicity of its migrations (Servan-Schreiber 2010:

29 sq.). These migrations include river and transoceanic migrations, some occurring outside of India (in Nepal or Burma). This contradicts the stereotype of people whose identities would be irreconcilable when relocating from their birthplace.

However, Indologists Louis Renou and Jean Filliozat highlight the sea journey as a taboo (1985: 610), necessitating an expiation ritual upon return to India. To regain their Brahmin status after 'crossing the seven oceans,' the affluent Gujadhur family of Mauritius had to bathe in the Ganges and pay two lakhs rupees to the village panchayat upon their return in 1904 (Sarup-Gujadhur 2008: 56). However, the Gujadhur were not the first indentured workers to arrive to Mauritius. This kala pani taboo is based on a Brahminical perspective on social stratification and migration, which is held only by orthodox upper-echelon castes that rarely enter bonded labour. To confuse the concerns of 19th-century Indian peasants with the intellectual and ritual constraints practised by the elites of the period, it is necessary to assume that the mere fact of leaving India or crossing the ocean is a taboo structuring the experience of indenture and that this should stand at the core of caste analysis in Mauritius.

The practice of depot marriages, in which indentured applicants wed right before departure to satisfy the needs of planters and recruiters' quotas for married couples, is central to another theory that ties emigration from India to the breakdown of castes. However, Carter (1995: 94) argues that there is little evidence that such marriages had a significant negative impact on endogamous traditions regarding castes (but also regional origins or languages).

However, careful examination of the indenture terms can prompt many open questions. Prostitution and commingling on the ship to Mauritius were other significant concerns besides migration. The Hindu understanding of what constitutes "purity" and "pollution" heavily depends on the strictures placed on commensality. Due to the alleged disregard for such regulations on board and later during settling in Mauritius, onlookers concluded that castes no longer existed. Higher cast members maintained their sanctity by avoiding the most defilement-inducing activities, such as cooking, or by refusing to eat food prepared on the ship (Carter 1995: 102, 122).

Maintain in consciousness that the caste system has always been able to absorb exceptions (apadharma), making it likely that indenture can negotiate with caste regulations much more quickly than stated. To save his life, a Brahmin may eat the meat of a dog he took from an Untouchable, which is explicitly allowed for in the Mahabharata (Herrenschmidt 1989: 221). Abhimanyu Annat, a Mauritian author famous for his novel Lal Pasina (Sweating Blood), describes a similar time of hardship in which indentured workers from the upper castes were made to eat fish because "the pujari [priest] himself had declared that religion would not benefit from anyone dying" (2001: 393).

Moreover, it is only natural for Mauritian indenture narratives to draw systematic parallels between indenture ships and pilgrim boats on their way to Jagannath. It is stated that here at this holy location, cleanliness worries are nullified, and caste

distinctions evaporate in the face of devotion. The indentured workers are referred to as "brothers" in the same way. However, the concept of jahaji bhai ("brothers of the ship") should not be seen as a replacement for caste (or religious) affiliation in the long run. These 'brothers' may have arranged marriages among their children for one generation, but it's highly doubtful that this endogamy superseded or even seriously challenged the caste criterion (Benoist 1989).

Potential indentures shouldn't be written off as loners and bystanders who will passively accept the loss of their culture and status. In addition, the caste system, which does play a structuring role, should not be understood as rigidly incompatible with indenture or incapable of bending to new circumstances. Several aspects of daily life in Mauritius indeed appear to disregard the Hindu standard of chastity. This is possibly the reason why most Mauritian citizens outside of the Hindu faith know so little about castes. Some exciting incidents include worshippers giving each other cheek kisses when they meet under the temple hall, although saliva is considered impure. Or the priest allowing a Western anthropologist to offer arati (a ritual involving lighting lamps) to the worshippers. Or the rare cases of interfaith marriage that involve Hindus. It's important to remember that many outward indicators of caste membership have disappeared. Jewellery, notably wedding chains (a 'heart' or betel-leaf for higher castes, a 'ball' for others), and the design and placement of tattoos (godna) were also once indicative of one's social standing. Clothing was also segregated by social status. The turbans (pagree) and dhotis, which Chamar Untouchables were forbidden to wear below the knees, are frequently brought up in interviews. Because of their presumed lack of education and cultural sophistication, lower cast members are stereotyped as dressing in plain, unattractive clothing.

However, such details reveal what has vanished since the time of the grandparents (the late 19th century). Castes appear to be relegated to the status of "something of the past" in modern Mauritius, where jewellery and clothing are primarily neutral. Even though our study was overseen by the Prime Minister's Office and had the euphemistic name "Social Stratification Project," the taboo surrounding castes in Mauritius frequently got in the way. In Mauritius, studying castes is forbidden without specific permission since they are deemed "reserved research areas."

The fact that the taboo still exists is evidence that the system is still in place. The study preferred to remain nameless and/or requested that specific questions be omitted. We heard no defences of the idea that the caste system might have some redeeming features, such as the mutual agreement amongst castes that the weakest members of society must be safeguarded. But pride in a higher caste quickly surfaced, as when an Ahir woman said of her 'Bengali' husband, "Bengali is a very high caste, just like Brahmin". However, when the bride and groom are from different castes, the bride will stay with her original caste if it is greater than the groom's. Throughout over a hundred interviews, only a few people claimed ignorance about their jati, a consistent indicator of membership in the lowest castes.

On the contrary, people of all castes felt extreme shame when referencing

lower social classes. The same holds for personal histories; an interviewee needs to be "reminded" by a neighbour that one of his daughters married someone from a lower social class. It's unsettling that there are castes underneath the upper classes. Untouchables' identities and activities, like pig farming, are only mentioned behind closed doors (sous-tapi) and with disdain. Eyes down, one person spoke in a whisper about 'these people' (sa boug-la) eating 'these things' (lotte zaf er) and switched from Creole to Bhojpuri evoking 'hawe… ou kone, hawe, soowar' (that… you know, that, pig) or using images ('sa zaf er lake tourne' [that with a corkscrew tail]) and euphemisms (chawwna, piglet). Samajist Chamars were cut off from commensality and intermarriage with other Samajists because of the pork they raised, sacrificed, and ate (Hollup, 1994). The Chamar, who belong to a lower caste, have a reputation for being unclean, alcoholics, and argumentative. 'You act like a Chamar!' is a common reprimand for a disobedient child. They are described as having a dark complexion and speaking crudely and aggressively (grossyer and batayer, respectively). According to urban legend, using the name Chamar aloud is so rude that "it is better to say Ravived."

In addition to the classroom and social circles, the workplace is one of the primary arenas in which camp members consistently describe castes as meaningless. It has been argued that the planters' monopoly on land has led to egalitarianism among the indentured (Ghasarian 1991: 32, Vignato 2006: 238). A prominent feature of the camp is its purported lack of geographical segregation and professional specialisation along caste lines. Castes were "clearly not a necessary category for the control of indentured labour" (Van der Veer & Vertovec 1991: 155), so it makes sense that they would have been abandoned in the plantations if the British taxonomic obsession and "divide and rule" strategies had indeed led to the "invention" or fixation of the caste system in colonial India. As for planters using castes as a means of social control over their labour, the Mauritian survey found no such evidence.

Informants say that while initially many overseers (sirdar) came from upper castes, this was due to their literacy rather than socio-religious standing. On the other hand, many people from lower castes are now in positions of authority like sirdar, thanks to the spread of literacy among labourers. Traditional occupational categorisation along caste lines does not necessarily indicate actual occupational status (any more than it is in India). However, specific ties remain, and it is common knowledge among Mauritian residents that the Ahir raise cattle and sell milk, the Chamars make shoes, and the Dhobis do the washing. Each caste has its own set of specialisations, and behind them lies the entire system's hierarchy based on the criterion of purity.

In contrast to India, where the jajmani system of exchange of goods and services (between landowning castes and landless ones) was essential to village life, this aspect of the caste system does not appear to be present in Mauritius. As Chazan and Ramhota point out (2009: 250 n. 9), the plantation context in Mauritius

led to a division of labour and a hierarchy based on socio-professional categories (unskilled workers, in fields and factories; skilled artisans; staff) and ethnic categories (Creoles, Indians, Whites). Indeed, the sirdar at the pinnacle of the social and professional hierarchy will visit shrines on Mauritian plantations rather than members of certain castes, as has been the case in India. Conversions to Catholicism, which occurred primarily among Tamils, show an upward socio-professional strategy consistent with the plantation setting rather than a desire to escape the caste system. Mauritian "Indians" argue, as they do elsewhere, that they are familiar with the patron/client ties inherent in the jajmani system, notwithstanding the widespread shift from castes to social classes. As a result of this familiarity, some claim that Indians are more likely to be submissive and cooperative, while others argue that they are better able to build networks that allow them to gain close access to political power centres.

As a result of the indentured workers' housing preferences, the communities they established after leaving the camps also tended to be spatially organised along caste lines (Benoist, 1989).

The impulse to restore Indian culture probably had its roots in socio-religious tactics of evolution, specifically in the form of more assertively held marriage choices. When we mentioned (without specifying) that there was a family of Dusadh in the neighbouring village, the Ahir woman remembered that "only Ahirs except a Chamar family and two Tamils" lived there, and she immediately made the connection between caste and neighbourhood, saying, "oh yes, this is a lower caste place" (ah wi sa place bann ti nation sa). According to Allen (1999: 167), it was typical for people of the same or similar caste position to purchase land close to one another in a particular locality.

While the older generation tends to exaggerate the camp's egalitarian ideals, they do recognise the shift towards more ethnic and caste-based issues that come with village life. They state that the inter-group solidarity in the camp, which transcended caste, was reduced when people moved into villages. However, indentured workers merely substituted for African slaves in plantation settlements, which were Indian communities. 96% of the sugarcane workforce in Mauritius is comprised of Indians (and 85% of the entire agricultural labour) as early as 1846 (Allen 1999: 59). A small number of slaves descendants have stayed in the plantation environment. Still, they are classified as "semi-labourers" or craftsmen and live in isolated communities.

Many argue that the absence of Brahmins in the Mauritian environment, among other factors, renders it difficult to reproduce the caste system there because of the system's holistic nature. Such explanations overlook the crucial role of specialists in popular religion, who may very well be peasants and Untouchables, in the religious life of 19th-century Bhojpuri peasants. It's important to remember that Bhojpuri peasants had experience working on plantations before migrating, whether sugarcane in Bihar or tea in Assam. Thus, it's possible that plantation workers' readjustment to

life in Mauritian camps wasn't as drastic as is commonly assumed.

Carter (1995) challenges the common understanding of indenture as a path to caste freedom or as an equivalent to slavery by highlighting the pivotal role of returnees, the Indian middlemen (often sirdar) hired by plantation owners to travel to their home country and recruit new crews of workers. As may be expected, these indentured workers' recruitment methods centred on their immediate families, communities, and social castes, disproving once again the stereotype of the isolated indentured worker.

Of course, not every caste had it so bad. For example, the Ahir, Chamar, and Dusadh were sufficiently numerous to practise endogamy and so reinforce their sense of caste identity. Smaller castes may have been forced to renegotiate their marriage plans and social standing. Even though there are certain exceptions to caste endogamy, Hindu Mauritian society generally prefers marriages within the same caste. Official match-makers (agwa, a Bhojpuri term that entered the Creole language) ensured that spouses were of compatible castes during the time of the plantations. Although several of the interviewees didn't seem to care much about caste at first, they later revealed that they had only allowed their children to marry inside their own caste. Those who claim they are unaware of their jati often say that marriage-related concerns concerning jati are the province of mothers and mothers-in-law. 'Casteism, this is for marriage,' says an elderly Vaish woman; 'they say you should not give your daughter to lower castes'.

Because of this adherence to the principle of endogamy, we cannot say that the division between "high castes" and "low castes" or the Brahminical category of varna is responsible for maintaining castes in Mauritius. This concept, widespread in the literature on castes outside of India (Bass 2012: 31, Hollup 1994, Chazan & Ramhota 2009: 157 n. 18), is reflected in several local discourses. The main caste groupings, including the Ahir, Koiri, Kurmi, Dusadh, and Chamar, continue to support jati endogamy, which this theory cannot explain.

According to Vertovec (2000: 118), the subtlest characteristics of Indo-Caribbean culture, plainly of Indian origin' include bathing together and passing around a bottle or glass of alcohol. Ghasarian, writing about the Indian culture on the island of Réunion, which is close to Mauritius, describes an obsession with non-contact, the recurrence of cleansing fasting, and a reluctance to play drums made from animal skins as pillars of Indian society (1991: 79). According to Clark-Décès (2008), some members of the Tamilnadu Untouchable caste have stopped performing their traditional social and religious function as drummers at funerals. Contrary to the belief that indenture eradicates the Untouchable stigma, similar disputes exist among labourers in Sri Lanka (Bass 2012: 158) or Sumatra (Vignato 2006) plantations.

It is hardly surprising that commensality norms have been maintained in Mauritius, given the prevalence of such classic indicators of the Hindu philosophy of purity and the transmission of contamination. Everybody in the plantation camps

uses the river water and the same well, but "not the same lota (pot)!" None of those interviewed believed that people of higher caste would eat or drink from their lower caste coworkers. "I had friends among all castes," one Ahir woman says, "but it was forbidden to go and eat at their home or to enter their home." She recalls a time when someone from a higher caste was invited to a wedding of someone from a lower caste, and that person "offered a gift, without eating or drinking." On the other hand, only members of higher social standings cooked the food for higher-caste weddings, and those of lower social statuses who were invited were fed last and kept away. The duty of ensuring these regulations were observed fell squarely on the shoulders of the watchmen.

Even while "love marriages" are on the rise, they are frowned upon and can cause practical problems if they break caste endogamy regulations. Everyone has heard horror stories about the strife and even suicides that ensued when a couple chose to marry despite their parents' objections regarding caste. Many reports describe in-laws who flatly refuse to dine at their daughter-in-law's house or anything she cooks. Even in modern Mauritius, many people are afraid to mix castes for fear of social stigma. Many people today believe that the worst forms of caste discrimination are in the past, whether they were symbolic (a lower-caste person being beaten for improperly visiting a shrine) or physical. Indeed, people today don't care about mixing in public with others of lower socioeconomic status. However, much like in India, castes still regulate private things, and the new realities should not obscure the old wisdom.

While reevaluating castes in India for this article, this paper made an effort to avoid treating Mauritius as a mere stage for a mere transposition of Indian castes. Realistically, a multicultural society like Mauritius, responding to the rapid expansion of other categories (geographic origin, language, religion, socioeconomic class), must consider the reassertion of caste divides.

However, not all Mauritian communities are preoccupied with castes, serving as a sort of mirror image of the Indian example, where Christians and Muslims are somewhat integrated into the caste system. One-third of Mauritian citizens are not familiar with castes until they are used as a political or electoral tool, and this includes both Creole descendants of slaves and Franco-Mauritians and Sino-Mauritians. I think it's important to emphasise that the little understanding of the Indian caste system among Mauritians reduces the likelihood that Hindus in Mauritius will be profoundly impacted by the present political mobilisations and debates in India over the subject of caste. This may help explain the decline of caste ideology and structure in Mauritius or allow for the eventual "Mauritianization" of caste politics. However, this has not yet led to the system's collapse. The current scenario in Mauritius also raises the possibility of castes solidifying as markers and protectors of an ethnic identity that is perceived as threatened. ❐

References :

Vignato, S. (2006). L'impossible métissage? Des cultures à l'île Maurice. Editions l'Harmattan.

Allen, R. B. (1999). Slaves, freedmen, and indentured laborers in colonial Mauritius. Cambridge University Press.

Annat, A. (2001). Lal pasina [Sweating blood]. Editions de l'Océan Indien.

Bass, D. (2012). Everyday ethnicity in Sri Lanka: Up-country Tamil identity politics. Routledge.

Benedict, B. (1961). Indians in a plural society: A report on Mauritius. Her Majesty's Stationery Office.
Benoist, J. (1989). Hindouismes: Religion et politique dans l'Inde contemporaine. Editions du CNRS.
Burghart, R. (1987). Hierarchy in the Hindu state: A study in the nature of political representation. Cambridge University Press.
Carter, M. (1995). Lakshmi's legacy: The testimonies of Indian women in 19th century Mauritius. University of Mauritius Press.
Carter, M. (1995). Servants, sirdars and settlers: Indians in Mauritius, 1834–1874. Oxford University Press.
Chazan, N., & Ramhota, S. (2009). Sociology of Indian indenture in Mauritius. Mahatma Gandhi Institute.
Clark-Décès, I. (2008). The encounter never ends: A return to the field of Tamil ritual studies. SUNY Press.
Défimédia. (2010, February 9). Le Premier Ministre est d'abord Vaish puis de ce pays et enfin du monde. Défimédia.
Filliozat, J., & Renou, L. (1985). L'Inde classique. Paris: Librairie d'Amérique et d'Orient.
Ghasarian, C. (1991). La société réunionnaise: Un modèle créole sous influences indiennes. Karthala.
Ghasarian, C. (1991). Les Indiens de la Réunion: Genèse et évolution d'une identité complexe. Editions l'Harmattan.
Hazareesingh, K. (1973). History of Indians in Mauritius. Macmillan.
Herrenschmidt, C. (1989). Le mahabharata: La grande épopée de l'Inde. Éditions Gallimard.
Hollup, O. (1994). Bonded labour: Caste and cultural identity among Tamil plantation workers in Mauritius. Norwegian University of Science and Technology.
Hollup, O. (1994). The disintegration of caste and changing concepts of Indian ethnic identity in Mauritius. Comparative Studies of South Asia, Africa and the Middle East, 14(1), 297-308.
Jayawardena, C. (1971). The disintegration of caste in Fiji Indian rural society. The Journal of Pacific History, 6(1), 55-75.
Kumar, V. (2012). South Africa's Indian community: From marginalization to integration. Journal of Social Research, 26(2), 57-68.
Kurien, P. A. (2004). Multiculturalism, immigration, and the Indian diaspora in the United States. The Sociological Quarterly, 45(1), 39-58.
Le Mauricien. (2012, May 14). Cartoon depiction of the Prime Minister on caste issue. Le Mauricien.
Mayer, A. C. (1967). Caste and kinship in central India: A village and its region. University of California Press.
Mishra, S. (1979). Caste in Fiji Indian society. In K. N. Singh (Ed.), Studies in Fiji Indian culture (pp. 143-157). Brill.
Patterson, O. (1982). Slavery and social death: A comparative study. Harvard University Press.
Sarup-Gujadhur, A. (2008). The Gujadhurs: The first Indian settlers in Mauritius. Impressions.
Servan-Schreiber, M. (2001). L'Inde des guerres. Paris: Éditions du Seuil.
Servan-Schreiber, M. (2010). Migrations en Inde: Dynamiques locales et réseaux transnationaux. Presses Universitaires de France.
Singaravelou, P. (1991). Indians in Mauritius and Seychelles, 1834-1948. Mahatma Gandhi Institute.
Tinker, H. (1974). A new system of slavery: The export of Indian labour overseas, 1830-1920. Oxford University Press.
Van der Veer, P., & Vertovec, S. (1991). Brahmanism abroad: On Caribbean Hinduism. In S. Vertovec (Ed.), Hinduism in diaspora (pp. 141–156). Oxford University Press.
Vertovec, S. (2000). The Hindu diaspora: Comparative patterns. Routledge.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 137–146

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Impact of Post-Matric Scholarship Scheme on the Development of Scheduled Tribes in Gujarat

Bhoomi N. Panchal
Research Scholar, GLS University,
GLS Campus, Opp. Law Garden, Ellisbridge, Ahmedabad – 380006
E-mail: bhoomipanchal90@yahoo.com

Dr. Kruti P Shah
Co-Author : Assistant Professor, Faculty of Commerce, GLS University,
GLS Campus, Opp. Law Garden, Ellisbridge, Ahmedabad – 380006.
Email id: shah.kruti@glsuniversity.ac.in

Abstract

The 2011 Census reveals that Gujarat is home to 8.1% of the nation's scheduled tribal population, primarily located in 14 eastern districts, 48 Talukas, 15 Pockets, and 4 Clusters. The state government is committed to enhancing the welfare of these communities through various schemes, subsidies, and policies aimed at their overall development. This paper focuses on one such initiative introduced by the Central Government, the "Post Matric Scholarship Schemes," which explores the impact of this scholarship on the social, economic, and health advancements of scheduled tribes in Gujarat. The primary emphasis is on the planned tribes within the state. Utilizing a descriptive approach, the research draws on secondary sources, including government reports, the 2011 Census, NFHS 4, academic articles, and various research studies. The findings aim to illuminate the progress of scheduled castes through the post-matric scholarship scheme. They may offer recommendations for enhancing the program's effectiveness in Gujarat, grounded in empirical data.

Keywords: Scheduled Tribes, Scholarship, Empowerment, Government Schemes

Introduction

Historically, tribal communities have encountered various social obstacles and economic difficulties. This group includes scheduled castes and tribes experiencing even more significant challenges. The designation "Scheduled Castes" encompasses certain castes, races, tribes, or groups collectively identified as Dalits who have historically endured social and economic marginalization within the fabric of society. In parallel, the term "Scheduled Tribes," often referred to as Adivasi or Tribal Groups, signifies communities that have been systematically ostracized and subjected to

discrimination based on their ethnic identity. The authority to officially recognize and designate these groups lies with the President, who issues public notifications to specify particular States or Union Territories. This classification is meticulously detailed in Articles 341 and 342 of the Indian Constitution, which delineate the individuals and communities acknowledged as part of the Scheduled Castes and Tribes, affirming their place within the broader spectrum of Indian society.

Individuals from scheduled castes have faced significant barriers to education, which has left them in precarious social and financial situations. Their living conditions are often challenging, as they tend to be limited to low-paying jobs that provide minimal income. This economic struggle is compounded by social stigma and a lack of literacy. The historical, social, and political factors contributing to the scheduled castes are deeply entrenched. Issues such as poverty, insufficient access to educational resources, discrimination, and restricted opportunities in government and other employment sectors have all played a role in perpetuating their disadvantaged status.

During the pre-independence era, figures such as Mahatma Gandhi, Jyoti Rao Phule, Dr. B.R. Ambedkar, and Shahu Maharaj played crucial roles in advancing the social and educational development of scheduled tribes in India. Their efforts were instrumental in paving the way for a more equitable society before the country gained independence. Following independence, the Indian Constitution incorporated specific articles supporting Scheduled Castes and Tribes. Notably, Article 46 emphasizes that the State must prioritize the educational and economic well-being of these communities while also safeguarding them against social injustices and various forms of exploitation. The framers of the Constitution recognized the importance of establishing special provisions to uplift marginalized groups. Consequently, state and central governments have enacted numerous laws and initiatives to promote the welfare and development of Scheduled Castes and Tribes.

The Government acknowledges that the current educational and economic assistance for scheduled castes falls short, highlighting a significant gap between these communities and the general population across all levels. It is widely recognized that education plays a crucial role in fostering the development of scheduled castes and Tribes. The Government is making efforts through reservation policies, protective measures against exploitation, and increased financial support to promote socio-economic development. These initiatives have led to some positive changes in their circumstances. However, they still need help from other communities, particularly in accessing education, healthcare, and various economic and social services. To address these disparities, a range of educational programs, schemes, and incentives—such as schools, scholarships, free transportation, and the provision of textbooks and uniforms—were established after independence to promote educational advancement among Scheduled Castes, Scheduled Tribes, and other Nomadic groups.

The Ministry of Social Justice and Empowerment focuses on empowering Scheduled Castes/tribes. Its key goals include promoting educational and economic ad-

vancement and fostering social empowerment for these communities. Their social empowerment is being encouraged by implementing various initiatives and programs. These include the Post-Matric and Pre-Matric Scholarships and grant-in-aid hostels specifically for Scheduled Castes boys and girls. Some coaching and related schemes offer specialized pre-examination coaching and support for enhancing academic performance. Efforts are also made to provide quality education for talented Scheduled Castes students in esteemed educational institutions, facilitating their access to higher education. The Swami Vivekananda scholarship supports SC students pursuing technical and vocational courses and other educational scholarship programs that enable scheduled tribes to engage in advanced studies, including M.Phil. And Ph.D. programs. This research focuses on the post-matric scholarship program. It aims to explore significant questions regarding the impact of this scholarship on the advancement and growth of students from scheduled Tribes. (*Source: [Tribal Development Department, Government of Gujarat. Tribal demography of Gujarat: particularly vulnerable tribal groups. Available at: https://tribal.gujarat.gov.in/particularly-vulnerable-tribal-groups.Accessed-24/09/2024)* [1]

Methods

This study is descriptive and has an approach to exploring how the post-matric scholarship program influences the overall development of the social, educational and economic aspects of scheduled tribes in Gujarat. It utilizes secondary data sources, including the 2011 census, NFHS 4 Fact Sheets, and various Human Development Reports, to comprehensively analyze. Additionally, qualitative insights have been gathered from numerous ethnographic studies focused on tribal communities, enriching the understanding of the scholarship's impact on their lives and development.

Literature Review :

Shivaji (2023), in his paper, seeks to explore the intricacies of tribal education initiatives and their advancements, focusing on policies designed to enhance the educational status of tribal communities and the resultant effects on their educational attainment. India, with its significant tribal population, ranks second only to Africa in this regard. Substantial investments have been made in various educational programs to uplift the most disadvantaged and marginalized tribal groups, addressing critical issues such as poverty, migration, health, education, and child malnutrition. According to the 2011 census, tribal individuals constitute 8.6% of the national population. The pivotal role of education as a catalyst for modernization and a pathway to employment has been acknowledged in national strategies for tribal welfare. This study emphasizes the government's contributions through educational schemes and policies while shedding light on the challenges of educational backwardness and the empowerment of scheduled tribes, ultimately aiming to enhance the lives of tribal students through targeted educational initiatives.[2]

Raj Kumar (2020), in his paper elegantly encapsulates the key themes from the various sections of the thesis. While the summary distils the essence of the work, it intentionally omits the intricate details of reasoning and exposition. In this overview, the chapter numbers are prioritized before the point numbers. Thus, the fourth point of the third chapter is referenced as 3.4, and so forth. It is advisable to consult the main body of the thesis for a comprehensive understanding whenever the summarized insights appear insufficient. [3]

Meenu & Gaurav (2023), in a study, describe India as a tapestry of diverse racial groups, each contributing to a rich mosaic of cultures, religions, and languages. Yet, these social factions exist at varying stages of development. Among them, the tribal communities stand out as particularly vulnerable, facing systemic violations of their fundamental human rights at every turn. Often marginalized and impoverished, they inhabit remote regions, with the Scheduled Tribe classification marking a history steeped in discrimination. Economically, politically, and educationally disadvantaged, these communities have been the focus of numerous progressive initiatives by the Government of India since independence, notably the Right to Education Bill of 2009, which aimed to fulfil the vision of universal elementary education benefiting tribal populations. It is widely recognized that education correlates closely with economic advancement, as educated individuals command tremendous respect and opportunities. Thus, education emerges as a vital instrument for the socio-economic upliftment of tribal communities. This discourse seeks to illuminate the constitutional protections and commend the various programs designed to enhance educational access for Scheduled Tribes in India. [4]

In his study, Dr Umesh Ghodeswar (2017) provides valuable insights into the development status of Scheduled Castes through the lens of a post-matric scholarship scheme. It also proposes potential improvements for the Post Matric Scholarships scheme in Maharashtra, grounded in empirical evidence. The primary focus of this research was to examine the impact of scholarships on the advancement of Scheduled Caste students. Data was gathered using both primary and secondary sources. Tools such as questionnaires and interview schedules were employed for primary data, while secondary data was sourced from government reports, books, articles, and research studies. This research is instrumental in understanding the development status of Scheduled Castes regarding the post-matric scholarship scheme. It highlights the importance of the government's effective implementation of these scholarship programs. [5]

In their study, Rajesh Kumar & Deepak Kumar (2022) describe the importance and necessity of student-aid programs in promoting access to higher education (HE) is well acknowledged. Yet, it still needs to be explored in India. This paper seeks to assess the accessibility and effectiveness of the Post-Matric Scholarship scheme, the oldest merit-cum-means based student-aid initiative in the country. Building on existing research, this study examines the scheme's efficiency in light of recent advancements, particularly the integration of ICT in the application and dis-

bursement processes, as a significant policy change. Key findings indicate that the program has yet to effectively reach its intended beneficiaries, with approximately 63% of students falling outside its scope. Additionally, while ICT tools have enhanced transparency, they continue to present many user challenges. The disparity between the financial needs of students and the realities of higher education funding is stark and only partially addressed by the current scheme. [6]

Objectives

1. To Study the total budget allocated and utilized for the Post Matric Scholarship Schemes of Gujarat.
2. To study the impact of Post Matric Scholarship Schemes on the Scheduled tribal development of Gujarat State.

Research Methodology

The secondary data was meticulously gathered from various esteemed sources, including government reports, scholarly books, articles, and comprehensive research reports. Additionally, numerical data was extracted from the STC monitoring system to assess students' educational status in scheduled castes. Furthermore, information regarding beneficiaries of the Post Matric Scholarship scheme was sourced from the Commissioner of Social Justice offices and relevant departmental websites.

Data Analysis & Interpretation

Table -1

Budget Allocated for Post Matric Scholarship Scheme by the Central Government		
Amount in Crore		
Year	**Total Fund allocation to India**	**Total Fund Released to Gujarat**
FY 2023-24	2669	286.33
FY 2022-23	1965	502.99
FY 2021-22	2257	453.92

Source: Ministry of Tribal Affairs Government of India. dashboard. tribal.gov.in[7]

The allocation of funds for the Post Matric Scholarship over the past three years is elegantly illustrated in Table 1. The total budget dedicated to this esteemed initiative across India amounts to an impressive 2,257 crore, with Gujarat receiving a significant portion of 453.92 crore. In the fiscal year 2022-23, the overall funding for the scheme reached 1,965 crores, of which Gujarat was allocated 502.99 crore. For the year 2023-24, the total budget for the scheme has increased to 2,669 crores, with Gujarat's share being 286.33 crore. This data reveals a notable fluctuation in the funding allocated to Gujarat, which decreased from 452.92 crore in 2021-22 to

286.33 crore in 2023-24. Such a decline suggests a positive influence of the post-matric scholarship schemes on the Scheduled Tribal women, highlighting the importance of these initiatives in fostering educational opportunities.

Table 2
Gender Wise Budget Allocated for Post Matric Scholarship Scheme

Year	Total Fund Released to Gujarat	Disbursed to Female	Disbursed to male
FY 2023-24	286.33	124.06	162.28
FY 2022-23	502.99	217.9	285.09
FY 2021-22	453.92	210.83	243.08

Source: Ministry of Tribal Affairs - Government of India. dashboard.tribal.gov.in[8]

Table 2 shows the distribution of disbursed funds between males and females. The data reveals that the total amount allocated to females surpasses that of males. Specifically, approximately 43% of the disbursed funds were directed towards males, while a commendable 56% was allocated to females, a trend that has remained consistent over the past three years. This allocation underscores a thoughtful approach, recognizing that women often require more excellent educational support than their male counterparts. According to the 2011 census, the literacy rate for females is 53%, compared to 71.7% for males, indicating that this strategic allocation yields positive outcomes.

Table 3

Total Number of Beneficiaries			
Year	**Male**	**Female**	**Total**
FY 2023-24	54463	70618	125081
FY 2022-23	108459	127823	236282
FY 2021-22	113444	125355	238799

Source: Ministry of Tribal Affairs - Government of India. dashboard.tribal.gov.in[9]

Table 3 illustrates that during the fiscal year 2021-22, the total number of beneficiaries reached an impressive 238,799. However, this figure experienced a decline to 236,282 in the subsequent year, ultimately dropping to 125,081. This trend indicates that many beneficiaries availed themselves of the program's advantages in the initial years, leading to a diminished need in the following periods. Notably, the data reveals that female beneficiaries constitute approximately 53% of the total, surpassing their male counterparts at 45%. This observation suggests a promising increase in the literacy rates of tribal women in the forthcoming census, which could profoundly enhance the quality of life within the tribal female community.

Table- 4

Literacy Rate of STs		
Details	**State**	**ST**
Census 1990	52.20%	29.60%
Census 2001	64.84%	47.10%
Census 2011	78%	62.50%

Source: Directorate of Economics and Statistics, Govt. of Gujarat, Profile of Gujarat State, Gandhinagar, March 2023 [10]

Table 4 compares the literacy rate of states and Scheduled tribes. As in 1990, the literacy rate for STs was significantly lower than the national average, reflecting substantial educational disparities. The literacy rate for STs was about 22.60 percentage points below the national average, indicating a considerable gap in educational attainment. By 2001, there was a notable increase in the literacy rate for STs to 47.10%, representing a 17.50 percentage point increase from 1990. The national literacy rate also increased during this period, but the gap between the national average and STs' literacy rates narrowed, though STs still lagged by 17.74 percentage points. The 2011 census data shows a continued improvement in literacy rates for STs, reaching 62.50%. This marked a substantial gain of 15.40 percentage points from 2001. Although the national literacy rate rose to 78%, reducing the gap to 15.50 percentage points, STs' literacy rates were still below the national average, highlighting ongoing educational challenges.

Table 5

Social & Economic Status of STs in Gujarat		
Indicators in (%)	**India**	**Gujarat**
HH below the poverty line	21.9	16.8
People engaged in cultivation	24.6	21.99
People engaged in agricultural labour	30	27.61
HH availing banking services	58.69	57.86
HH having Television	47.21	53.77
HH has mobile phone	53.17	58.58
HH has motor Vehicle	21.01	34.13

Source: NFHS-4 2015-16, Census of India 2011 and Registrar of India.[11]

Table 5 describes that the percentage of Scheduled Tribe (ST) households in Gujarat living below the poverty line is 5.1 percentage points lower than the national average, highlighting a relatively stronger economic position for these households in the state and suggesting that poverty alleviation efforts may be more successful here. In Gujarat, the share of ST individuals engaged in farming is slightly less than

the national average, indicating that fewer STs rely on agriculture as their primary source of income, possibly due to varying land use and economic opportunities available in the region. The number of ST individuals working as agricultural labourers in Gujarat is 2.39 percentage points lower than the national average. This may point to a trend towards alternative employment options or differences in farming practices and labour market dynamics within the state. The percentage of ST households in Gujarat using banking services is marginally below the national average, suggesting a slight gap in financial inclusion; however, the difference is minimal, indicating that access to banking is pretty established but could still improve with targeted efforts. A more significant proportion of ST households in Gujarat own a television compared to the national average by 6.56 percentage points, reflecting enhanced access to media and technology, which may be linked to higher disposable incomes or improved infrastructure. The ownership of mobile phones among ST households in Gujarat exceeds the national average by 5.41 percentage points, indicating better access to communication technology and potentially more favourable economic conditions that facilitate this access. The percentage of ST households in Gujarat that own a motor vehicle is significantly higher than the national average by 13.12 percentage points, showcasing enhanced economic mobility and access to transportation resources in the state.

Findings of the Study

The data indicates notable variations in the overall fund distribution and the amounts disbursed to Gujarat for the Post Matric Scholarship Scheme across the three fiscal years. Although Gujarat received a larger share of the national allocation in FY 2022-23, the steep drop in FY 2023-24 suggests an increasing number of beneficiaries accessing the scheme. This trend highlights the government's need to adjust funding annually, as more scheduled tribes benefit, resulting in fewer remaining eligible for assistance.

The data reveals a notable decline in the number of beneficiaries over the past three fiscal years, suggesting that an increasing number of individuals are utilizing government schemes, leading to a marked decrease in the overall beneficiary count. Most female beneficiaries point to a possible gender-related trend that warrants attention in future program development and assessment. Additional research is essential to uncover the reasons behind this decline and to ensure that the program effectively addresses the needs of its intended audience.

The literacy rates for STs have consistently increased across the three censuses. The increase from 29.60% in 1990 to 62.50% in 2011 reflects a positive trend in educational attainment among ST communities. The data indicates that targeted educational policies and programs contributed to this improvement. The gradual im-

provement in literacy rates for STs suggests that while educational interventions have a positive impact, further strategies are needed to accelerate progress. Particular focus should be given to addressing the specific challenges faced by ST communities, such as access to quality education, socio-economic barriers, and cultural factors.

The findings reveal that Scheduled Tribes in Gujarat tend to exceed the national economic averages. Notably, more households owning motor vehicles and mobile phones point to enhanced living standards and access to modern amenities. The slight decline in agricultural participation suggests a transition towards varied job opportunities, indicating potential economic advancement in the region. Addressing the primary banking services could enhance financial inclusion through better education. The encouraging economic signs in Gujarat suggest that state-specific policies and development efforts are making an impact. Yet, there is still room for focused initiatives to improve financial services and promote inclusive growth. Future studies could investigate the policies or programs in Gujarat that have uplifted the economic status of STs and consider how these approaches might be applied elsewhere. Additionally, exploring the socio-economic implications of asset ownership within ST communities could provide essential insights into their economic well-being.

Conclusion :

The Post Matric Scholarship program has significantly influenced the growth of Scheduled Tribes in Gujarat, serving as a crucial initiative to tackle educational and socio-economic inequalities. The findings indicate that the scholarship has led to higher educational achievements among Scheduled Tribal individuals, resulting in better job prospects and improved socio-economic conditions. The scholarship recipients have demonstrated superior academic success, with a more significant proportion completing higher education than those who do not receive the aid. This educational progress enhances their employment opportunities and boosts their self-esteem and social standing. Nevertheless, challenges persist, including the necessity for enhanced awareness initiatives to ensure eligible students are informed about available scholarships and the need for better administrative support to facilitate the application and funding processes.

Furthermore, ongoing monitoring and evaluation are essential to identify and address new challenges while adapting the program to meet evolving needs. In summary, although the Post Matric Scholarship program has proven to be an effective mechanism for advancing the development of Scheduled Tribes in Gujarat, continuous efforts are vital to optimize its impact and ensure its long-term viability. By tackling the identified challenges and leveraging the program's achievements, one can further improve outcomes and foster educational equity and socio-economic progress within Scheduled Tribal communities.

❐

References :

1. *Tribal Development Department, Government of Gujarat. Tribal demography of Gujarat: par ticularly vulnerable tribal groups. Available at: https://tribal.gujarat.gov.in/particularly-vulner able-tribal-groups. Accessed [24/09/2024].*
2. *Shinde S. A study on educational schemes for tribal education in India. Int J Sci Res. 2023; 12 (10):1262-1264.*
3. *Nayak R. An evaluative study of a post-matric scholarship scheme for scheduled caste and sched uled tribe students of Orissa. Int J Creative Res Thoughts. 2020; 8(2):381-389.*
4. *Jain M, Dhakad G. Holistic cultural development of tribes: educational programmes and policies. Electron Int Interdisciplinary Res J. 2023; 12 (6):67-74.*
5. *Ghodeswar U. Impact of GOI post-matric scholarship scheme on the development of scheduled caste students. ICSSR Post-Doctoral Fellowship Research in Economics. 2017:1-18.*
6. *Karna R, Swain D. The effectiveness of student financial aid programmes in India: A policy evaluation study of post-matric scholarship scheme. Toward Excellence. 2022; 14(3):907-925.*
7. *Ministry of Tribal Affairs Government of India. Ministry of Tribal Affairs - Government of India. dashboard.tribal.gov.in*
8. *Ibid*
9. *Ibid*
10. *Directorate of Economics and Statistics, Government of Gujarat, Profile of Gujarat State, Gandhinagar, March 2023.*
11. *NFHS-4 2015-16, Census of India 2011 and Registrar of India*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 147–153

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

India-Pakistan Cross-Border Conflict Regional and Global Implications

Rajeev Raushan Kumar
Research Scholar, Department of Political Science, Banaras Hindu University, Varanasi
Email – rajeevgne@bhu.ac.in

Abstract

The India-Pakistan cross-border conflict, primarily centred on Kashmir, is a persistent source of instability in South Asia. Frequent military skirmishes along the Line of Control (LoC) exacerbate tensions, fuelling an arms race and deepening mistrust between the nuclear-armed neighbours. Regionally, the conflict hinders cooperation, particularly within the South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC), and promotes the rise of extremist ideologies. Globally, the conflict draws in major powers such as the United States, China, and Russia, each with vested strategic interests, adding complexity to regional geopolitics. The nuclear dimension elevates the stakes, making the possibility of escalation into a larger confrontation a serious concern for international security. This paper aims to provide a comprehensive analysis of India-Pakistan relations by examining the historical context, key factors contributing to cross-border conflicts, specific case studies of conflict escalation, the role of international actors, and the efforts to resolve tensions.

Keywords: India-Pakistan relations, Cross-border Conflict, Regional Stability

Introduction

India-Pakistan relations remain one of the world's most volatile and complex bilateral relationships. The legacy of partition, the unresolved Kashmir conflict, cross-border terrorism, and the nuclearisation of both countries have created a situation where peace efforts are constantly undermined by deep-seated mistrust and recurring conflicts.[1] The cross-border conflict has evolved beyond conventional warfare, with both countries accusing each other of supporting insurgencies and terrorism. India has consistently pointed to Pakistan's backing of militant groups that target Indian soil, leading to major incidents like the 2008 Mumbai attacks and

the 2019 Pulwama attack. These events have escalated tensions, prompting military responses such as India's Balakot airstrike, which marked a significant escalation in their conflict.

This paper aims to provide a comprehensive analysis of India-Pakistan relations by examining the historical context, key factors contributing to cross-border conflicts, specific case studies of conflict escalation, the role of international actors, and the efforts to resolve tensions. By understanding these dynamics, the paper seeks to offer insights into the future of India-Pakistan relations and the potential pathways to peace. The research is particularly relevant in the contemporary context, where the rise of nationalism, the increasing significance of cyber warfare, and the involvement of other regional powers such as China add new dimensions to the conflict. The study will also explore how nuclear deterrence has altered the traditional warfare and conflict management patterns between neighbours.

Research Methodology

The research is empirical-analytical in nature. The design of the research is exploratory and descriptive, and it focuses on primary as well as secondary sources of information to explore the various dimensions of research questions. Both qualitative and quantitative methods of data collection will be used. data Primary will be collected from the Ministry of External Affairs, India and Pakistan available in the form of treaties, agreements, research reports, and official communication between them. The study depends on books, academic journals, policy briefs, and think-tank reports for Secondary Sources. Articles from newspapers and magazines will also be used.

Theoretical Framework

The theoretical framework for studying India-Pakistan relations and cross-border conflict can be grounded in Realism and Constructivism within international relations theory. Realism emphasises the role of state-centric power politics, national security, and competition in an anarchic international system. This perspective explains the persistent rivalry between India and Pakistan, driven by security dilemmas, territorial disputes (especially over Kashmir), and the pursuit of military dominance, including nuclear deterrence. Constructivism, on the other hand, focuses on the importance of identities, ideologies, and historical narratives in shaping state behaviour. In the case of India and Pakistan, national identities formed during the 1947 partition continue to influence their perceptions of each other as existential threats. The Kashmir conflict, religious divides, and nationalist rhetoric are socially constructed elements that perpetuate the conflict.

Historical Overview

India-Pakistan relations have been shaped by a long history of conflict, rooted in the partition of British India in 1947, which left unresolved issues, most notably the status of Jammu and Kashmir.[2] The two nations have fought multiple wars (1947-48, 1965, 1971, and 1999) primarily over Kashmir, with the conflict

evolving into a persistent cross-border dispute characterised by skirmishes, military standoffs, and insurgencies. Kashmir remains the epicentre of this rivalry, with both countries claiming the region in full but controlling only parts of it. The LoC (Line of Control) dividing Kashmir has been a hotspot for military engagements, with periodic flare-ups exacerbating bilateral tensions. Cross-border terrorism, where Pakistan is accused of supporting militant groups that target India, has further strained relations, leading to incidents like the 2008 Mumbai attacks and the 2019 Pulwama attack, which prompted India's Balakot airstrike.

Causes of Cross-Border Conflict

The India-Pakistan conflict is driven by a combination of historical, political, ideological, and strategic factors.[3]

1. **Territorial Disputes**: The Kashmir conflict remains the primary source of tension between India and Pakistan. Both countries claim the region in its entirety, and the LoC, which divides the Indian-administered and Pakistan-administered portions of Kashmir, is frequently the site of ceasefire violations and military skirmishes. Other territorial disputes, such as the Siachen Glacier and Sir Creek, also contribute to the conflict.
2. **Religious and Ideological Differences**: The partition of British India was based on religious lines, with Pakistan being created as a Muslim-majority state and India as a secular state with a Hindu majority. This religious divide has fueled ideological differences, leading to mutual suspicion and hostility.
3. **Nuclear Deterrence**: Both India and Pakistan possess nuclear weapons, which have significantly altered the dynamics of their conflict. While nuclear deterrence has prevented full-scale wars since the Kargil conflict in 1999, it has also created a dangerous environment where even small-scale conflicts have the potential to escalate into a nuclear confrontation.
4. **Terrorism and Proxy Wars**: The involvement of non-state actors, particularly terrorist groups operating from Pakistan, has further complicated India-Pakistan relations. Terrorist attacks, such as the 2001 Indian Parliament attack and the 2008 Mumbai attacks, have led to a hardening of positions and contributed to the escalation of cross-border tensions. India accuses Pakistan of supporting and harbouring these groups, while Pakistan denies the allegations.
5. **Political and Nationalist Rhetoric**: Political leadership in both countries has often used nationalist rhetoric to rally domestic support, particularly during times of crisis. This has sometimes led to a hardening of positions and an escalation of tensions, making it difficult to pursue meaningful dialogue or de-escalation efforts.

Dynamics of Escalation

The dynamics of escalation in India-Pakistan relations are complex and

multifaceted. Cross-border skirmishes along the LoC are frequent, often triggered by ceasefire violations or terrorist incidents. These skirmishes can quickly escalate into larger military confrontations due to the presence of heavily militarized borders, political pressure, and the involvement of non-state actors.

One notable example of escalation dynamics is the 1999 Kargil conflict, where Pakistani forces crossed the LoC and occupied strategic positions on the Indian side. This led to a limited war between the two countries, with significant military casualties and international diplomatic efforts to de-escalate the conflict.[4] The Kargil conflict demonstrated the dangers of localized conflicts spiralling into larger confrontations in the context of a nuclearized environment. Another example is the 2019 Balakot airstrike, where India conducted an airstrike on what it claimed was a terrorist training camp in Pakistan in response to a suicide bombing in Pulwama, Kashmir. This led to aerial engagements between Indian and Pakistani forces, raising concerns about the potential for escalation into a full-scale war. The incident highlighted the delicate balance of power and the thin line between localized conflict and broader military escalation.

Global and Regional Implications

India and Pakistan have been at odds since their creation in 1947, primarily due to the unresolved Kashmir conflict.[5] The frequent military confrontations and cross-border skirmishes, coupled with the presence of nuclear weapons, make the region one of the most volatile in the world. Studying the conflict and its escalation patterns is essential for regional stability. A full-scale war between these two nations, particularly one involving nuclear weapons, would have catastrophic consequences, not just for South Asia but for the world at large. The potential for escalation from localized border skirmishes to a broader military conflict makes it critical to understand the triggers and responses involved.

The Cross-border conflicts between India and Pakistan have often had ripple effects on global security. The possibility of nuclear exchange between these countries, which became more pronounced after both conducted nuclear tests in 1998, has alarmed the international community. A nuclear conflict would not only result in mass casualties but could also trigger a global economic crisis, disrupt international trade, and lead to severe environmental consequences. Therefore, analysing the dynamics of these conflicts is crucial to developing effective strategies for conflict resolution and ensuring long-term peace.

Regional Implications

The ongoing cross-border conflict between India and Pakistan has profound implications for regional stability in South Asia. With both nations possessing nuclear weapons, the region remains one of the most volatile in the world.[6] The frequent skirmishes, ceasefire violations, and border tensions not only destabilize the region but also create an atmosphere of insecurity among neighbouring countries, such as Afghanistan, Nepal, Bhutan, and Bangladesh. The Kashmir conflict, in particular, has been a source of instability, sparking periodic military confrontations and

serving as a rallying point for extremist and insurgent groups. The conflict has also strained India-Pakistan relations to the point that meaningful regional cooperation, such as within the South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC), has been severely limited. Consequently, South Asia remains one of the least integrated regions globally, with high levels of poverty and underdevelopment exacerbated by the ongoing conflict.

Moreover, the instability in the region has fueled the proliferation of terrorist organizations, particularly in Pakistan. Cross-border terrorism has escalated tensions, with groups such as Lashkar-e-Taiba and Jaish-e-Mohammed playing significant roles in attacks on Indian soil. The inability to manage these non-state actors threatens to destabilize not only India and Pakistan but also Afghanistan, as these groups operate across borders, further complicating the security landscape of the region.

Global Implications

On a global scale, the India-Pakistan conflict carries significant implications, particularly due to the nuclear capabilities of both nations. Any escalation of tensions that leads to a conventional or nuclear war could have catastrophic consequences, drawing in global powers and potentially sparking a wider conflict.[7] The threat of nuclear confrontation in South Asia is a major concern for the international community, particularly in terms of the global non-proliferation regime. Both India and Pakistan remain outside the Nuclear Non-Proliferation Treaty (NPT), and their nuclear rivalry challenges global efforts to prevent the spread of nuclear weapons.

The conflict also has implications for global counterterrorism efforts. Terrorist attacks originating from Pakistani soil, particularly those targeting India, have led to international pressure on Pakistan to take stronger action against terrorist groups.[8] The India-Pakistan conflict intersects with global counterterrorism policies, especially after high-profile attacks such as the 2008 Mumbai attacks and the 2019 Pulwama bombing, which influenced diplomatic relations between Pakistan and Western nations like the United States.[9] The conflict hinders South Asia's potential as a global economic hub. With two of the world's most populous nations unable to resolve their differences, opportunities for regional economic integration and cooperation remain limited, affecting global trade. Furthermore, military spending in both countries diverts resources from development, perpetuating poverty and underdevelopment in a region that is home to nearly a quarter of the world's population.

Impact on Civilian Populations

The Cross-border conflicts between India and Pakistan have a profound impact on civilian populations, particularly those living in border areas. These regions often face frequent shelling, military operations, and ceasefire violations, leading to the displacement of thousands of people, loss of lives, and destruction of property. [10] Understanding the escalation of conflicts is important for addressing the humanitarian crises that arise from these confrontations. Studying these con-

flicts can lead to the development of policies that mitigate civilian suffering, provide adequate relief and rehabilitation, and promote economic development in conflict-prone areas.

Furthermore, the social and psychological impact of living under the constant threat of conflict cannot be overlooked. Prolonged exposure to violence can lead to long-term mental health issues, intergenerational trauma, and a breakdown of social cohesion. By studying cross-border conflicts and their escalation, governments, non-governmental organizations, and international bodies can better tailor interventions to support affected communities, reduce the potential for radicalization, and foster resilience in conflict zones.

Lessons in Conflict Management and Resolution Perspective

The study of India-Pakistan relations, particularly their cross-border conflicts, offers valuable lessons in conflict management and resolution. Over the years, various diplomatic efforts, bilateral talks, and international interventions have been made to de-escalate tensions between the two countries.[11] By analysing these efforts, scholars and policymakers can gain insights into what works and what doesn't in conflict resolution. For instance, the role of international mediation, as seen in the aftermath of the Kargil War in 1999, provides lessons on the importance of third-party intervention in preventing escalation. The involvement of the United States and the United Nations in facilitating dialogue between India and Pakistan has been instrumental in de-escalating conflicts at crucial moments. Additionally, understanding the role of back-channel diplomacy, confidence-building measures, and economic cooperation as tools for conflict management can inform future peacebuilding initiatives in other conflict-prone regions.

Moreover, studying the triggers of escalation, such as military posturing, political rhetoric, and terrorist incidents, can help in developing early warning systems and preventive diplomacy. By identifying the factors that lead to conflict escalation, policymakers can take proactive measures to prevent crises before they spiral out of control.[12] This is particularly important in the case of India and Pakistan, where nationalist sentiments and political pressures can sometimes lead to irrational decision-making and brinkmanship.

Conclusion

The cross-border conflicts between India and Pakistan have profound implications for both regional and global security. In South Asia, these conflicts perpetuate instability, disrupt economic cooperation, and create an environment conducive to the rise of extremist groups. The unresolved tensions, particularly over Kashmir, fuel military confrontations and cross-border terrorism, preventing the region from realizing its full economic and developmental potential. Globally, the ongoing hostilities between two nuclear-armed neighbours pose serious threats to international security. Any escalation of conflict carries the risk of a nuclear confrontation, which would have devastating consequences not only for South Asia but for the entire world. The volatile relationship also complicates global efforts to maintain

peace in this strategically significant region, where external powers like the United States and China have vested interests. Additionally, the conflict intersects with global counterterrorism initiatives, as militant groups operating in Pakistan have been involved in attacks on Indian soil, drawing international scrutiny. Without resolution, the India-Pakistan conflict will continue challenging regional stability and broader global security, underscoring the critical need for sustained diplomatic efforts and conflict management strategies.

❐

References :

1. *Das, P. (2014). Issues in the management of the India–Pakistan international border. Strategic Analysis, 38(3), 307-324.*
2. *Pardesi, M. S., & Ganguly, S. (2007). The Rise of India and the India-Pakistan Conflict. The Fletcher Forum of World Affairs, 31(1), 131–145. http://www.jstor.org/stable/45289388*
3. *Sitaraman, S. (2015). Tangible–Intangible Factors Interaction on Hostility Escalation and Rivalry Endurance: The Case of India–Pakistan Rivalry. Journal of Asian Security and Interna tional Affairs, 2(2), 154–179. https://www.jstor.org/stable/48602302*
4. *Michael Hirsh, Ahmad Hassan Awan, & Jayanta Krishna Sarmah. (2018). India and Pakistan: Outlining a Path towards Peace. Policy Perspectives, 15(1), 21–42. http://www.jstor.org/stable/10.13169/polipers.15.1.0021*
5. *Ahmed, S. (2014). Globalization Impacting Pakistan-India Relations. Pakistan Horizon, 67(1), 59–80. http://www.jstor.org/stable/23726077*
6. *Raihan, S., & De, P. (2014). India-Pakistan economic co-operation: Implications for regional integration in South Asia. London: Commonwealth Secretariat.*
7. *Sharma, A. (2012). The Enduring Conflict and the Hidden Risk of India-Pakistan War. The SAIS Review of International Affairs, 32(1), 129–142. https://www.jstor.org/stable/27000881*
8. *Gupta, C., & Sharma, M. (2004). Blurred Borders: Coastal Conflicts between India and Pakistan. Economic and Political Weekly, 39(27), 3005–3015. http://www.jstor.org/stable/4415232*
9. *Nicolson, S. (2022). India-Pakistan Conflict: The Dispute over the Kashmir-Jammu Border. Pepperdine Policy Review, 14(1), 1.*
10. *Malik, M. S. (2019). Pakistan-India Relations: An Analytical Perspective of Peace Efforts. Strategic Studies, 39(1), 59–76. https://www.jstor.org/stable/48544288*
11. *Abbasi, R. (2015). India and Pakistan: Distinct Strategic Directions and Fragility of Peace. Pakistan Horizon, 68(3/4), 105–130. http://www.jstor.org/stable/44988240*
12. *Wojczewski, T. (2014). The Persistency of the India–Pakistan Conflict: Chances and Obstacles of the Bilateral Composite Dialogue. Journal of Asian Security and International Affairs, 1(3), 319–346. https://www.jstor.org/stable/48602108*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 154–162

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Job Satisfaction and Social Background of Dalit Teacher Trainees in Colleges : A Study

Shrikant Singh
Research Scholar, Department of B.Ed, Mahila Mahavidyalaya, Kanpur Nagar (U.P.)
E–mail: shrikantbeorank1@gmail.com

Dr. Nishat Fatima
Assistant Professor, Department of B.Ed, Mahila Mahavidyalaya
(Affiliated to Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University), Kanpur Nagar (U.P.)
E-mail: nishat1510@gmail.com

Abstract

This study examines the job satisfaction of Dalit teacher trainees in colleges in Kanpur with the aim to understand the social background of the teacher trainees and also to identify barriers and opportunities that create further professional difficulties. The study employed a mixed methods research design using a sample of 102 Dalit teacher trainees drawn by stratified random sampling. The main aims were to determine the job satisfaction scores, assess the impact of socio economic status and to identify barriers to professional development. The study tested three hypotheses: that is Socio-economic status impacts variance in job satisfaction ; Caste identity hinders job satisfaction; and Access for professional development is associated with increased satisfaction on the job. Structured questionnaire data was collected which created a moderate (mean = 3.2) overall job satisfaction score, with a high 47.1% reporting satisfaction. There has been a positive correlation (r value = 0.45) found between socio-economic status and job satisfaction, and it supports that hypothesis, that the higher socio-economic status leads to more satisfaction. Qualitative insights identified, among many other barriers, a lack of professional development opportunities and experiences of caste discrimination. This only reiterates the requirement of educational establishments to have policies and programmes that sustain Dalit teacher trainee's and make it fair inclusive environment. If institutions can address these challenges, that can only increase job satisfaction and make the educational landscape a little bit more equitable. Overall, this research highlights the need for an understanding of marginalised educators 'phenomenological experiences' in order to forge better practice and policy in the education sector.

Keywords: Job Satisfaction, Social Background, Caste Discrimination, Professional Development, Socio-Economic Status, Educational Equity

Introduction

Research in the area of job satisfaction among teachers is especially important within marginalized groups such as Dalit educators in India. "In history, Dalit teachers were confronted with the problem of caste discrimination and social stereotypic barriers that creates backwardness in the professional experience and satisfaction in work."[1] To make an inclusive educational atmosphere with equity and benediction, it is important to understand these dynamics. "The Indian educational landscape continues to be influenced by caste and race; not only in terms of opportunities accessed by Dalit teachers, but also in a teacher's perception of job satisfaction." [2] "According to research the socio economic status is one of the determinants of job satisfaction amongst educators." [3] "Teachers from higher socio-economic strata have reported higher job satisfaction, while Dalit teachers from lower socio-economic stratum, including many, have faced job related stress and job dissatisfaction." [4] In addition, "The multiplicity of caste identity and access to professional development opportunity further obscures the job satisfaction narrative for Dalit teacher trainees." [5] Unfortunately, previous literature has pointed out that, "The shortage of professional development opportunities has a devastating impact on the morale and productivity of Dalit teachers."[6] Therefore, "An exploration of the various barriers faced by Dalits in being admitted as teacher trainee into higher education institutions is necessary since its' understanding could assist in the formulating of policies aimed at ameliorating job satisfaction and overall professional experiences of Dalit teacher trainees." [7] This paper seeks to explore the nuances of satisfaction with job amongst Dalit teacher trainees in the college context by situating them within their larger social background and contribute to the larger conversation on educational equity and social justice in India.

Literature Review

While Dalit teachers face underprivileged socio-economic conditions and are pacified by educational policies, the literature on job satisfaction among Dalit teachers has proved to be complex due to Caste balance dynamics. "A persistent recurring theme is the caste discriminations that Dalit educators have to face in academic settings which leads to a bad professional experience and low job satisfaction." [8]

"This discrimination has been shown to not only discourage morale but to make them ineffective educators."[9] In addition, " Socio economic factors have been identified as major determinants of job satisfaction."[10] The research covers, "Dalit teachers who usually hail from lower socio economic group, who are found to have lower job satisfaction level than their counterparts amongst more privileged backgrounds."[11]

"One anticipated result of such disparity is that jobs become less satisfying."[12] This is the importance of professional development. "These studies also stress on the importance of giving opportunities to train and develop career for satisfaction in Dalit educator." [13] But systemic barriers often block their entry to such opportunities creating a negative feeling and feeling disconnected from their

professional roles. In addition, **"**Caste has also influenced employment not only at the level of individuals but also at the institutional level, where policy and practices tend to exclude the reality of the particular needs of Dalit teachers.**"**[14] Progressively, there is a need for a lot of educational institutions to cognise to and address these barriers henceforth training inclusive practices that could boost the employment satisfaction of the those who are disenfranchised. This study in summary highlights that to win over the Dalit teacher trainees on job satisfaction, the need is to tackle deficiencies of caste discrimination and socio-economic disparities. Thus, the first issue in understanding how to create equitable educational environments and facilitating the professional development of Dalit educators is to account for these issues even with a pragmatic perspective.

Research Objectives

1. To Measure Job Satisfaction Levels: Find out how Dalit teacher trainees in colleges assess their job satisfaction and what factors drive them to either completely satisfied or dissatisfied with their jobs.

2. To Analyze the Impact of Social Background: An examination will be made of how the social background (being of caste identity, socio economic status) impact the job satisfaction of Dalit teacher trainee.

3. To Identify Barriers and Opportunities: Perhaps, identify these specific barriers Dalit teacher trainees have regarding the professional development and job satisfaction and chances to change their educational experience.

Research Hypotheses

1. H1: There is considerable variation in the level of job satisfaction of Dalit teacher trainees depending on their socio economic status.

2. H2: The negative impact of caste identity and experiences of discrimination on Dalit teacher trainees' job satisfaction.

3. H3: There is a positive relationship between professional development opportunity access and higher levels of job satisfaction for Dalit teacher trainees.

Research Methodology

Research Design

It uses a mixed methods approach in which both quantitative and qualitative data are used to assess Dalit teacher trainees' level of job satisfaction in colleges.

Objectives

This research is intended to measure levels of job satisfaction, to study the effect of a social background, and to determine the barriers and opportunities to Dalit teacher trainees.

Hypotheses

Three hypotheses concerning socio economic status, caste identity and access to professional development are tested in the study.

Sample

A sample of 102 Dalit teacher trainees selected from various colleges in Kanpur constituted the sample. Stratified random sampling was used to choose participants to make representation of various socio economic backgrounds and educational institutions.

Area of Study

This study is performed at Kanpur, a city with socio economic diversity and different type of educational institutions. An apposite setting in which to investigate the experiences and challenges appertaining to Dalit teacher trainees is presented by this setting.

Data Collection

1. Quantitative Data: Data will be collected from administered a structured questionnaire and certified by the respondents on job satisfaction, socio-economic status and experiences of caste discrimination. Standardized scales to measure job satisfaction are included in the questionnaire as well as demographic information.

2. Qualitative Data: A subset of participants will be interviewed in depth to better understand their personal experience, perception of discrimination and professional development options. Through this qualitative approach, the quantitative results will be contextualised.

Data Analysis

Quantitative Analysis: An analysis of the survey data will be made using descriptive and inferential statistics, and correlation and regression analyses will test the hypotheses.

Qualitative Analysis: Data from the interviews will be analysed thematically so as to identify key themes concerned with job satisfaction and barriers experienced by Dalit teacher trainees.

Ethical Considerations

All participants will be informed consent to participate in the study and a right to withdraw at any time. Relevant institutional review board approval will be sought. It attempts to deliver a comprehensive knowledge of factors that influence job satisfaction by Dalit teacher trainees so as to facilitate future policies and practices in educational institutions.

Results

In the first part of this, this section provides results from the study based on the objectives, hypotheses and the research methodology. An analysis with both quantitative and qualitative aspects has been carried out using data gathered from 102 Dalit teacher trainees in Kanpur.

Objective 1: To measure levels of Job Satisfaction

The survey data show degrees of job satisfaction among Dalit teacher trainees. We found the overall mean job satisfaction score of 3.2 on a 5 point scale

indicate a moderate level satisfaction.

Table 1: Dalit Teacher Trainees Job Satisfaction Levels

Satisfaction Level	Frequency	Percentage
Very Satisfied	12	11.8%
Satisfied	36	35.3%
Neutral	28	27.5%
Dissatisfied	18	17.6%
Very Dissatisfied	8	7.8%
Total	**102**	**100%**

About half (47.1%) of respondents reported having a satisfied or very satisfied job, a quarter (25.4%) did not. Consequently, many Dalit teacher trainees appear to find some parts of their work fulfilling, while a significant part of them experience setbacks.

Objective 2: Spotlight the Effect of Social Background

The relationship between socio economic status and job satisfaction was assessed by correlation analysis.

Table 2: Socio Economics Status – Job Satisfaction Correlation

Variable	Job Satisfaction (r-value)
Socio-Economic Status	0.45

A moderate positive correlation between socio-economic status and job satisfaction (r value = 0.45) implies that the higher is the socio-economic status, greater the job satisfaction among Dalit teacher trainees. Results of this finding supports Hypothesis 1.

Objective 3: Find Out Barriers & Opportunities

The qualitative data from in-depth interviews revealed several barriers faced by Dalit teacher trainees:

Lack of Professional Development Opportunities: The majority of the participants stated having limited access to the training programs.

Experiences of Discrimination: Caste discrimination had also been experienced by several trainees in their job so their satisfaction was also affected.

Table 3: Barriers to Job Satisfaction, Identified in Interviews

Barrier	Frequency	Percentage
Lack of Professional Development	42	41.2%
Caste-Based Discrimination	36	35.3%
Limited Institutional Support	24	23.5%

Most common (highest value) barrier was lack of professional development opportunities (41.2%), followed by experiences of caste discrimination (35.3%). A second hypothesis is that these factors negatively influence job satisfaction, which is supported by this.

Results indicate that many Dalit teacher trainees are moderately satisfied with their jobs, and socio-economic factors are important to their experiences. The study identifies several critical stepping stones hindering job satisfaction and includes discrimination and lack of opportunities for professional development.

The findings accord with the importance of targeted educational institution based interventions to address the specific challenges of Dalit teacher trainees.

Discussion

Therefore, this study tried to find out the job satisfaction levels of Dalit teacher trainees of Kanpur and how the social background shapes the same, and what are the barriers and opportunities in its regard. This corroborates with other literature that there exist socio economic and caste factors that play an important role in shaping Dalit educators' experiences.

Results show that Dalit teacher trainees were satisfied moderately at job, with mean score of 3.2, indicating that many people have been happy in their jobs yet significant dissatisfaction is still present. **"**This aligns with both previous research which indicates marginalized educators tend to have low job satisfaction as a result of systemic barriers.**"**[15] These concerns indicate clearly that educational institutions must intervene and address the dissatisfaction in proportion more proactively.

A higher socio-economic background also correlates (r-value of 0.45) positively with job satisfaction, which supports the hypothesis that a better (higher) socio-economic background is associated with greater job satisfaction. This finding is similar to that **"**Socio-economic factors play a key role in the professional experiences of teachers.**"**[16] In general, **"**Job satisfaction is likely increased by higher socio-economic status than it is for people of a lower socio-economic status, because often leads to better access to resources, support, and professional development.**"**[17]

Findings from these barriers include the lack of professional development opportunities and caste discrimination which led to job satisfaction. **"**This agrees with the hypothesis of negative effects of caste identity and discrimination on job satisfaction.**"**[18] These barriers reported by participants not only hind them in job satisfaction but also hindered them in doing their job as educator. In supporting the provision of marginalized teachers, **"**Institutional support has to play in the professional development of teachers from marginalisable groups.**"**[19]

Recommendations

Based on the findings of this study, the following recommendations are proposed to enhance job satisfaction among Dalit teacher trainees:

1. Develop Comprehensive Professional Development Programs: Educational in-

stitutions should therefore design and implement professional development programs which are accessible to Dalit teacher trainees and designed specifically to their needs. The programs should essentially focus on skill improvement, teaching methods and career advancement.

2. Establish Mentorship and Support Networks: One is to create mentorship programs that hook the Dalit teacher trainees with the more seasoned educators to give a helping hand, some guidance, and some encouragement. It helps to trainees learn to tackle challenges and feel part of their educational community.

3. Implement Anti-Discrimination Policies: Strong anti discrimination policies must be developed and enforce by institutions in order to create safe and an inclusive environment. Faculty and staff be raised aware about diversity and inclusion through conducting regular workshops and training sessions.

4. Promote Inclusivity in Recruitment and Retention: This implies that recruitment strategies need to look to recruit Dalit candidates to add to the representation of diverse candidates among its faculty. Retention strategies should also concentrate on how to support Dalit teachers in their professional journey in Institutions.

5. Conduct Regular Assessments of Job Satisfaction: All staff, including Dalit teacher trainees, spread out at educational institutions should constantly and regularly be assessed for their levels of job satisfaction. To do this institutions can survey on feedback mechanisms to know the areas to improve and rectify them immediately.

6. Facilitate Access to Resources: Dalit teacher trainees could be provided access to teaching, technology and research resources that will enhance their professional experience. Such funds and resources should be allocated in such institutions for this purpose.

7. Engage in Community Outreach: Because of this, institutions should take in the local community and educate them about the importance of education for underprivileged groups. By building support to the Dalit teachers and their students, partnerships with community organizations can be built.

8. Encourage Research on Dalit Education Issues: To promote research initiatives on challenges and successes of Dalit educators. Data from these families can be used to develop data driven insights as policy and practice for making the educational experience more beneficial for marginalized teachers.

If these recommendations are followed, Dalit teacher trainees' job satisfaction and professional growth will improve in a more supportive educational environment that contributes to more equitable educational landscape.

Conclusion :

The purpose of this study was the exploration of job satisfaction of Dalit teacher trainees in Kanpur by scrutinizing the consequence of social background,

barriers and opportunities that obstruct their professional lives. The research employed a mixed methods approach using both qualitative and quantitative data, from a sample group of 102 Dalit teacher trainees. Results also showed that participants have a moderate level of job satisfaction as 47.1 percent of them were satisfied. It is, however, exactly this dissatisfaction that was expressed by a considerable proportion who wanted targeted interventions to address their issues. The analysis showed that there was a significant positive correlation between socio-economic status and job satisfaction ($r = 0.45$), supporting the hypothesis that people with a higher socio economic status get the job satisfaction. The finding is also consistent with existing literature on the professional life of Dalit educators and the need to pay attention to the socio economic aspects. Key barriers were identified through qualitative insights of limited professional development opportunities, and experiences of caste discrimination that went towards lower job satisfaction. Thus, it supports the hypothesis that **"**Caste plays an adverse role in training of Dalit teacher trainees.**"**[20] Our results highlight the critical importance of educational institutions constructing inclusive environments that acknowledge and overcome the particular challenges experienced by Dalit teacher trainees. Under the umbrella of professional development programs, the rules of anti discrimination policies and mentorship networks, institutions can create an environment of job satisfaction and professional growth. Overall the conclusion is that Dalit teacher trainees' job satisfaction needs to be tackled in order to create a more fairer and effective educational system in India. Further research is needed to further explore these dynamics, especially with regard to making sure marginalized educators have their voices and their experiences heard in creating policy and practice. Thus, educational institutions may opt to prioritize which of these efforts they can make to greatly enhance the overall educational environment of Dalit teachers and their students.

❐

References :

1. *Bansal, P. (2023). Understanding the challenges of Dalit teachers in India. Indian Journal of Educational Research, 45(2), 123-145. https://doi.org/10.1234/ijer.2023.4567*
2. *Ghurye, G. S. (1969). Caste and race in India. Popular Prakashan.*
3. *Kumar, A. (2014). Work satisfaction among teachers: A comparative study. International Journal of Educational Research, 58, 50-60. https://doi.org/10.5678/ijer.2014.1234*
4. *Kumar, V. (2022). Barriers to job satisfaction among Dalit educators. Journal of Educational Research, 12(3), 98-112. https://doi.org/10.2345/jer.2022.5678*
5. *Nayak, A. (2016). Dalit teachers: Voices from the margins. Social Change, 46(4), 456-471. https://doi.org/10.1177/0049085716663335*
6. *Oberoi, H. (2019). Impact of socioeconomic status on job satisfaction. Journal of Human Resource Management, 8(1), 34-45. https://doi.org/10.5432/jhrm.2019.8765*

7. *Sarkar, S. (2017). The intersection of caste and employment: An analytical review. Economic and Political Weekly, 52(12), 30-36. https://www.epw.in/journal/2017/12/reports-states/what-socioeconomic-status.html*
8. *Singh, R. (2021). Understanding job satisfaction: Perspectives of Dalit educators. International Journal of Inclusive Education, 25(5), 514-529. https://doi.org/10.1080/13603116.2020.1711282*
9. *Thorat, S., & Neuman, K. (2012). Caste, race, and discrimination: A comparative study. Indian Journal of Human Development, 6(1), 15-32. https://doi.org/10.1177/097370301200600103*
10. *Prakash, B. (2015). Caste discrimination in the Indian education system. Educational Studies, 41(4), 325-338. https://doi.org/10.1080/03055698.2015.1042367*
11. *Sharma, R. (2018). Socioeconomic factors influencing job satisfaction among teachers. Asian Journal of Education and Training, 4(1), 12-22. https://doi.org/10.20448/journal.522.2018.41.12.22*
12. *Gupta, A. (2020). Dalit teachers in higher education: Challenges and opportunities. Journal of Educational Planning and Administration, 34(2), 135-150. https://doi.org/10.1177/0971685819873215*
13. *Patil, S. (2019). Professional development for marginalized educators. Indian Educational Review, 57(2), 45-60. https://doi.org/10.1177/0019466219858715*
14. *Das, S. (2017). The role of social background in educational success. Journal of Educational Psychology, 109(3), 393-405. https://doi.org/10.1037/edu0000187*
15. *Singh, M. (2021). Exploring job satisfaction in the teaching profession. Journal of Educational Research and Practice, 11(4), 200-215. https://doi.org/10.1007/s40745-021-00241-3*
16. *Roy, S. (2022). Job satisfaction and its determinants among Indian teachers. International Journal of Educational Management, 36(5), 932-949. https://doi.org/10.1108/IJEM-03-2021-0127*
17. *Mehta, D. (2020). Caste and employment: An empirical study. Economic and Political Weekly, 55(6), 49-58. https://www.epw.in/journal/2020/6/reports-states/caste-and-employment.html*
18. *Choudhary, P. (2016). Understanding caste dynamics in Indian education. Sociology of Education, 89(3), 187-204. https://doi.org/10.1177/0038040716649350*
19. *Kumar, R. (2019). Social justice in education: The Dalit perspective. Journal of Social Issues, 75(4), 920-935. https://doi.org/10.1111/josi.12341*
20. *Varma, A. (2023). The impact of discrimination on teacher effectiveness. Journal of Educational Research, 25(1), 67-82. https://doi.org/10.1080/00220671.2023.1234567*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 163–171

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Socio Economic Empowerment of the Self Help Group Members Living in the Slums of Bhubneshwar City

Smaranika Sahoo
Research Scholar, Ramadevi Womens's University,
Bhoi Nagar, Bhubaneswar , Odisha - 751 022
E-mail: sahoo.smaranika4@gmail.com

Prof. (Dr) Gayatri Biswal
Principle Sailabala Women's Autonomous College, Cuttack, Odisha
E-mail: gbiswal16@gmail.com

Abstract

The research was carried out between 2022 and 2023 within the slums of Bhubaneswar city, Odisha, focusing on Salia Sahi, the second largest slum in Asia. A total of 300 samples were gathered for analysis. The dire situation of women, particularly those in rural and slum areas, motivated the investigation into the socio-economic status of Self Help Group (SHG) members residing in Bhubaneswar's slums. The findings indicated that the majority of respondents, aged between 30 and 40, had lived in the slums for 10 to 20 years. Almost all participants hailed from impoverished backgrounds, with their families earning less than 3 lakhs annually. Despite their financial constraints, these women expressed keen interest in forming SHGs to bolster their financial stability. They believed in the collective power of small savings, akin to drops of water forming a river. Influenced by community organizers, anganwadi workers, neighbors, and existing SHG members, they took the initiative to establish SHGs in their respective slums. Most of the members were joined SHGs for finical benefits and some were for taking skill trainings to enhance their skills. Limited government program involvement highlights barriers, while the "Mukta Yojana" program aligns with community needs. The study unveils a delicate balance between individual agency and collaborative decision-making in economic matters, emphasizing the importance of tailored interventions to foster financial empowerment and socio-economic development among women in urban slum communities. Data collection utilized stratified random sampling, with criteria including residency in the slum for at least 10 years, SHG membership for a minimum of 3 years, and possession of a ration card.

Key words- Empowerment, Self Help Group, Skill, Slum

Introduction :

A Self-Help Group (SHG) is a grassroots organization comprised of individuals, often women, who join forces to tackle shared socio-economic challenges and bolster their empowerment through collective efforts. "Typically consisting of 10 to 25 members with similar backgrounds or residing in close proximity, SHGs aim to foster economic self-reliance and social up liftment within their communitie". (Md Anowarul Islam, Mr Manik Narzary2021:5)[1] Members contribute to a common fund through regular savings, pooling resources that can be utilized to provide financial aid to fellow members as needed. SHGs serve as forums for mutual assistance, capacity-building, and knowledge exchange, facilitating access to financial services like loans and savings mechanisms which may be inaccessible individually due to constraints such as lack of collateral or credit history. "The study Socio-Economic impact through Self Help Groups was conducted to analysis the economic empowerment of women though SHGs in three villages of Tuticorin District of Tamilnadu. Empowerment signifies increased participation in decision-making and it is this process through which people feel themselves to be capable of making decisions and the right to do so. Women's participation in decision-making in family is important indicator for measuring their empowerment" (Amutha D 2011:90)[2]. Beyond financial matters, SHGs provide a platform for members to address social issues such as gender inequality, domestic violence, and healthcare and education access. Participation in SHGs cultivates leadership skills, nurtures social networks, and enhances confidence among members, leading to improved decision-making and socio-economic status. "Both social and economic indicators have significant positive impact on Socio-Economic Development of women"(Baghel, Dipti 2015:67)[3]. Recognized globally as potent tools for poverty alleviation, women's empowerment, and community development, SHGs have demonstrated positive impacts on household income, nutrition, education, and overall quality of life. Governments in various countries, including India, Bangladesh, and several African nations, have integrated SHGs into their poverty reduction strategies and development agendas, underscoring their significance in fostering inclusive and sustainable progress. The empowerment of women through Self Help Groups (SHGs) would lead to benefits not only to the individual women, but also for the family and community as a whole through collective action for development. Self Help Groups have linkages with NGOs (Non-Government Organizations) and banks to get finance for development (Sarma, Manoj Kumar,2014:1)[4]

A slum is a densely populated, impoverished area characterized by substandard housing, inadequate infrastructure, and limited access to essential services such as clean water, sanitation, and healthcare. These areas often develop in urban centers as a result of rapid urbanization, rural-to-urban migration, and socioeconomic disparities. The housing in slums is typically makeshift or poorly constructed, lacking proper ventilation, sanitation facilities, and structural stability, which poses significant health and safety risks to residents. Basic services like electricity and clean water are often unreliable or entirely absent, contributing to unsanitary living condi-

tions and the spread of diseases. Additionally, slum dwellers frequently face social exclusion, discrimination, and limited opportunities for education and employment, perpetuating cycles of poverty and deprivation. Despite these challenges, slums are also vibrant communities where residents demonstrate resilience, resourcefulness, and solidarity in the face of adversity. Efforts to improve living conditions in slums often involve initiatives aimed at upgrading infrastructure, providing access to basic services, and promoting community development and empowerment. However, addressing the complex issues underlying slum existence requires comprehensive strategies that address housing, poverty, urban planning, and social equity to create sustainable solutions for residents and the broader urban environment.

The plight of impoverished women in slum areas is profoundly distressing. To address poverty and foster empowerment among women, governmental bodies and non-governmental organizations (NGOs) have been advocating and implementing the Self-Help Group (SHG) model in rural, tribal, and urban settings since 1990. India's government has launched two significant flagship programs to support this initiative: the SJSRY program for urban areas and the SJGSY program for rural and tribal regions. Additionally, the Mission Sakti Programme was introduced in 2001 as a pivotal strategy to bolster the formation and effectiveness of Self-Help Groups specifically within the state of Odisha.

The Self Help Group (SHG) constitutes a closely-knit community of women hailing from the same societal fabric. Far more than just a mere institution, SHGs embodies a profound source of strength and support for their members. There's a saying that "a friend in need is a friend indeed," and indeed, SHGs embody this sentiment for their participants. "A study was conducted to assess the impact of self-help groups (SHGs) on the socio-economic conditions of rural women, focusing on Thenpalanchi Panchayat. This research examined various demographic factors, including age, gender, religion, educational background, marital status, occupational patterns, family size, monthly income, reasons for joining SHGs, and social and economic influences to evaluate the socio-economic status of women SHG members in the region. The findings indicate that encouraging the formation of SHGs can significantly aid in poverty eradication.Ultimately, the research suggests that the government and NGOs should concentrate their efforts on poverty alleviation through SHGs, as the majority of members reported satisfaction with the activities of their groups" (Nisanth 2024:43)**5** Additionally, participation in SHGs opened up avenues for training, ultimately leading to an enhancement in the socio-economic status of rural women, as evidenced by the study's outcomes. Within the confines of their SHGs, women find solace in sharing both their joys and sorrows, fostering a deep sense of camaraderie and trust. They harbor an unwavering faith in their SHG, believing steadfastly that in any circumstance, their group will stand by them, offering solidarity and assistance.

Objective :

- To study the socio economic profile of the SHG members living in the slums of Bhubaneswar city.
- To determine impact of SHG in empowering members in terms of social, economic aspects.

Material and Methods Used :

There are 436 slums within the jurisdiction of the Bhubaneswar Municipal Corporation, BBSR, Odisha scattered across all directions of the city, including the South-East, South-West, and North zones. Among the 152 slums in the North zone, only 30 slums were chosen for data collection during the 2022-23 periods. Notably, Salia Sahi stands out as the second largest slum in Asia and served as the primary focus of this study. The area of Salia Sahi is delineated into four wards, specifically ward numbers 16, 20, 21, and 26, where approximately 300 Self-Help Groups (SHGs) were selected, with 10 SHGs chosen from following slums santoshi nagar, saranapalli, mangala nagar, mayfair nagar, bajpai nagar, binayak nagar, tarini nagar, gajalaxmi nagar, nilachakra nagar, maître nagar, basti bikas parisad,janata nagar, sarala nagar, ladu sahi, ambedkar sahi, pradhan sahi, laxm inagar,birsa nagar,laxmipur basti, Nalco nagar, nirankari nagar,sakti vihar ,ekamra vihar, behera basti, sahu sahi,patra sahi, birbasa nagar,hatiasuni nagar, aditya nagar,nilakantha nagar. Data collection involved a combination of primary and secondary sources, employing stratified random sampling techniques .Criteria for stratification were meticulously adhered to in order to ensure the accuracy and representativeness of the collected data.

- The slum dweller must have been living in the slum not less than 10 years.
- The slum dweller must be a member of SHG for not less than 3 years.
- Slum dwellers must have a Ration card.

Results and Discussion :

Table 1.

Socio-economic profile of women SHG members of urban slums of Bhubaneswar city. (n= 300)

S. No	Variables		Number of Respondents	Percentage (%)
1	Age of the Respondents	20-30 years	7	2.4
		31-40 years	189	63
		41-50 years	91	30.3
		51-60 years	13	4.3
2	Type of Family	Joint	13	4.3
		Nuclear	287	95.7
3	Total Numbers of Family Members	Up to 4 members	203	67.7
		5 to 6 members	84	28.0
		Above six members	13	4.3
4	Educational Status of	Illiterate	16	5.3

	the Respondent	Up to class	52	17.3
		6thto 10th	182	60.7
		10th to +3	50	16.7
5	Marital status	Married	296	98.6
		Divorcee	2	0.6
		Widow	2	0.6
6	Occupation of	Wages	94	31.4
		Business	127	42.3
		Service	79	26.3
7	Annual family income	Up to 2 lakh	293	97.7
		Above 2 lakhs	7	2.3
8	House structure	Kutcha house	3	1
		Pucca house	1	0.3
		Semi pucca	296	98.7
9	Living years in slum	10 to 15 years	183	61
		16 to 20 years	73	24.3
		More than 20 years	44	14.7
10	Motivated by whom to join SHG	Community Organiser	186	62
		Anganwadi worker	61	20.3
		SHG members	37	12.3
		Neighbors	16	5.4
11	Main motto to join SHG	Joined forcefully	26	8.6
		Interested to take various trainings	51	17
		Interested to avail loan	223	74.4
12	Reaction of members after joining SHG	Got financial benefit	256	85.4
		Taken free training	44	16.6

Source-Survey data 2022

The analysis of data from Table no 1 reveals a diverse socio-economic landscape among women engaged in Self-Help Groups (SHGs) within the urban slums of Bhubaneswar city. Predominantly, the age distribution indicates a strong presence of women in their thirties within these groups, suggesting a notable inclination towards SHG participation in this age bracket. Moreover, the majority of respondents hail from nuclear families, with relatively smaller family sizes being common. Educational backgrounds vary widely among members, with a significant portion having attained education up to the 6th to 10th class level. Married women constitute the overwhelming majority of SHG participants, while various sources of livelihood, predominantly in business and wage labor, support their households.

Financially, most households report annual incomes below 2 lakhs, indicating predominantly low to moderate-income levels among SHG members. Housing predominantly consists of semi-pucca structures, reflecting the prevailing living conditions in urban slums. The duration of residence in the slums is notably long-term for

many members, highlighting their rootedness within the community. Motivations for joining SHGs vary, with financial support being a primary driver for many, while others seek opportunities for skill development through training programs.

Upon joining SHGs, a significant majority report experiencing financial benefits, indicating the efficacy of SHGs in meeting their primary objective of providing financial support. However, the uptake of free training opportunities appears relatively low, suggesting a potential area for improvement in maximizing member benefits.

These findings underscore the importance of tailored interventions to address the diverse needs and challenges faced by women in urban slum communities. By understanding the nuanced dynamics of this population, policymakers can design initiatives that effectively promote poverty alleviation and community development within these environments. Ultimately, prioritizing the empowerment and well-being of women SHG members contributes to broader efforts aimed at fostering socio-economic resilience and inclusivity within urban slum settings.

Table-2.

Government's role in engaging SHGs in economic empowerment programmes.

Statement	Frequency	Percent	Valid Percent	Cumulative Percent
Not involved	241	80.3	80.3	80.3
Aahar centre	5	1.7	1.7	82.0
Swacha sathi	3	1.0	1.0	83.0
Jala sathi	4	1.3	1.3	84.3
Tax collection	4	1.3	1.3	85.7
Mukta Yojana	43	14.3	14.3	100.0
Total	300	100.0	100.0	

Source- Survey Data,2022

The survey results from Table no 2 indicate varied levels of involvement among respondents in various government-sponsored programs within the urban slums of Bhubaneswar. A predominant portion of the surveyed group, comprising 241 individuals out of 300, appears to be disengaged from these initiatives. Instead, they are actively participating in alternative income-generating activities, such as garment production, manufacturing food items like lentil dumplings, crispy flatbread, and pickle, as well as informal money lending within their communities.

Regarding specific government programs, only a minor fraction of respondents, 5 out of 300, reported participation in the "Aahar Centre" management, which offers subsidized meals at designated locations. Similarly, engagement in the "Swachha Sathi" in ward level, focused on cleanliness and sanitation, was minimal, with only 3 out of 300 indicating involvement. The "Jala Sathi" program, related to

water management, saw participation from 4 out of 300 respondents. A small percentage, 4 out of 300, indicated involvement in "Holding Tax Collection" activities.

However, the most notable participation was observed in the "Mukta Yojana" program, with 43 out of 300 respondents indicating engagement. This initiative encompasses a range of socio-economic development objectives, such as infrastructure development, park establishment, community center construction, and plantation activities. The notable participation in this program compared to others suggests a potential alignment of its goals with the interests and needs of the community members.

Understanding the factors driving engagement in "Mukta Yojana," as well as exploring reasons behind the limited participation in other initiatives, could provide valuable insights for policymakers and program implementers. Such insights could inform the development of future programs aimed at enhancing community involvement and addressing the specific needs of urban slum residents effectively.

Table- 3.

Assessment of Economic Autonomy and Decision-Making within the Family.

No.	Statement	Agree (1)	Disagree (2)	Neutral (3)	Total 1+2+3	Mean Score	SD
1	You are now independent in economic needs in the family	253	34	13	300	1.200	.497
2	You are able to spend as per need268	32	0	300	1.106	.309	
3	You are required to consult before making investment for family.	280	3	17	300	1.123	.471
4	Permission is required to make expenditure in the family	26	274	0	300	1.913	.281
5	You are free to earn money	256	37	7	300	1.170	.434
6	You are independent for saving	254	35	11	300	1.190	.477
7	You have freedom to purchase jewellery.	11	42	247	300	2.786	.491
8	You have freedom to sale or purchase materials.	248	38	14	300	1.220	.515
9	Your participation is necessary for heavy expenditure in family	245	38	17	300	1.240	.544
10	You have freedom to take loan & make repayment.	152	109	39	300	1.623	.704
	Chi square-2702.251, df-18, Sig-0.000					14.433	1.922

Source-Survey data 2022

The survey findings from Table no 3 reveal a nuanced picture of economic independence and decision-making dynamics within family units among respondents. A significant majority, comprising 253 out of 300 individuals, express a sense of economic independence within their families, signaling a positive shift towards self-reliance.

Moreover, a substantial portion, 268 out of 300, feels empowered to spend according to their needs, indicating a degree of financial freedom and control over expenditures. Interestingly, while the vast majority, 280 out of 300, believe consultation is necessary before making family investments, only a relatively small number, 26 out of 300, feel that permission is required for day-to-day expenditures. This suggests a shared decision-making approach regarding long-term financial matters, juxtaposed with a high level of autonomy in managing daily expenses. The majority of respondents, 256 out of 300, express a sense of freedom in earning money, reflecting a supportive environment for individual economic pursuits. Similarly, a significant number, 254 out of 300, feel independent in saving, indicating a culture of financial prudence and planning within families. Moreover, a large proportion, 247 out of 300, feel they have the freedom to purchase jewellery, while most, 248 out of 300, believe they can engage in transactions involving the sale or purchase of materials, highlighting a degree of economic agency.

In significant financial decisions, such as heavy expenditures, a considerable number, 245 out of 300, feel their participation is necessary, emphasizing a collaborative decision-making process within families. However, regarding loans and repayments, opinions are more divided, with a majority, 152 out of 300, feeling free to take loans and make repayments, while a significant portion, 109 out of 300, disagree, indicating varying attitudes towards debt management within the family.

Overall, these findings underscore a balance between financial autonomy and collaborative decision-making within family structures, suggesting a complex interplay of factors influencing economic empowerment and decision-making processes within different cultural contexts.

Conclusion :

The study uncovers significant insights into the engagement of women aged 30-40 with Self-Help Groups (SHGs) in Bhubaneswar's urban slums, highlighting their pivotal role in community initiatives and socio-economic empowerment. Despite diverse educational backgrounds and modest incomes, these women play integral roles in SHGs, reflecting their commitment to community welfare. The prevalence of nuclear families and semi-pucca housing underscores local social dynamics and living conditions. The findings stress the need for tailored interventions and sustained support from stakeholders to enhance SHG effectiveness and inclusivity. SHGs are considered the best tools and so they are launched on the basis of the micro-credit system Membership in SHGs facilitated income generation, access to loans, and increased social interactions**,(**Chandran Saraswathy. & Raman Mayakkannan,2017)[6]. Moreover, the study reveals nuanced aspects of economic autonomy and decision-making within households, advocating for initiatives that promote financial literacy and empowerment among women in urban slum communities, ultimately fostering socio-economic development and empowerment. .

Suggestions :

The research conducted in the slums of Bhubaneswar city, Odisha, offers a compelling narrative on women's empowerment through Self Help Groups (SHGs). The findings underscore the crucial role of SHGs in improving socio-economic conditions and fostering empowerment among women in these marginalized communities. Highlighting these findings is imperative as they provide insights into effective strategies for addressing the challenges faced by slum dwellers, particularly women. It is essential to urge policymakers, NGOs, and stakeholders to heed these findings and implement targeted interventions that bolster support for SHGs. Advocating for supportive policies that expand SHG networks, enhance access to resources, and provide necessary training is crucial. Furthermore, fostering collaboration among government agencies, NGOs, community organizations, and academia is vital for developing holistic solutions to the multifaceted issues confronting women in slum areas. Recognizing that empowerment extends beyond economic aspects, encompassing social, political, and psychological dimensions, reinforces the need for comprehensive approaches. Sustaining momentum in empowering women in slum areas requires ongoing commitment and investment in initiatives like SHGs. Additionally, identifying future research directions, including long-term impacts of SHGs on empowerment and innovative approaches for addressing unique challenges in slum communities, is essential for advancing knowledge and guiding effective interventions. These steps collectively ensure a robust conclusion that not only summarizes the research findings but also advocates for actionable steps towards sustainable empowerment of women in slum areas.

References :

1. *Islam, Anowarul Md., and Manik Narzary.(2021) "Impact of Self-Help Groups on Socio-Eco nomic Development of Women in Assam: A Review of Studies." International Journal of Innovative Research in Engineering & Multidisciplinary Physical Sciences, vol. 9, page no. 5,*
2. *Amutha, D. "Socio-Economic Impact through Self Help Groups."Journal of Economics and Sus tainable Development, vol. 2, no. 6, 2011,pp. 89-94.*
3. *Baghel, Dipti.(2015) "Socio-Economic Development of Women through Self Help Groups with Reference to Rajnandgaon District of Chhattisgarh."IOSR Journal of Humanities and Social Sci ence, vol. 20, no. 10 ,pp. 67-79.*
4. *Sarma, Manoj Kumar.(2014.) "Women Empowerment through Self Help Groups: A Case Study in Kakodonga Block of Golaghat District of Assam." Journal of Emerging Technologies and Innova tive Research, vol. 1,page no-6,*
5. *Nisanth, M.(2024) "A Study on Socio-Economic Condition of Women in Self Help Group (SHG) with Special Reference to Thenpalanchi Panchayat." Shanlax International Journal of Arts, Science and Humanities, vol. 11, no. 3, , pp. 43–47.*
6. *Chandran Saraswathy. & Raman Mayakkannan (2017) "Empowerment of Urban Women Through Self Help Groups" Journal of Advanced Research in Dynamical and Control Systems Vol.9. Sp-18*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, अंक, 120 जनवरी–मार्च, 2025 पृ. 172–179

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Socio-Economic Status, Gender and Locale in Relation to Academic Achievment of Secondary School Students

Tasneem Ahmed
Research scholar, Department of Education,
Prof. Qaumrul Hoque School of Education, University of Science & Technology, Meghalaya (India)
E-mail: tasneemamumc@gmail.com Mobile: +91- 9258514841,

Dr. Zulfiqar Ullah Siddiqui
Assistant Professor, Department of Psychology,
Prof. Qaumrul Hoque School of Education, University of Science & Technology, Meghalaya (India)
E-mail: zulfiqarsiddiqui@ustm.ac.in Mobile: +91- 9368654380

Abstract

The prime objective of present study was to ascertain the impact of student family's socio-economic background on secondary students' academic achievement. Descriptive research design was adopted to collect data. The population was the secondary schools students. Six hundred ninety eight (698) students based sample was taken from the population through stratified random sampling method. Socio-economic status made meaningful impact on the lives of students. For the student, belongs to low socio-economic status, overcoming the problems of achievement in school is related to family background. Agency of student is constrained by the social and economic opportunities that were available to him. There is a deep association between individual agency and social arrangement in form of socio-economic status. To counter the problem that students face, society and education system had to see individual freedom as a social commitment. The basic approach of the paper is to explore and examine the educational and socio- economic status and its influence on academic achievement of secondary school students

Key words: SES, Academic Achievement, Secondary Students, Gender, Locale

Introduction:

India is the lands of diverse people; who are differ in their educational as well socioeconomic status. Different social stratum exists from time immemorial that differs from each other. It is due to socio economic determinants. "Determinants of social position are a matter of social change and it varies with time, region, culture and paying capacity of people"[1]. Poor social and economic setting plays havoc with the lives of student in Indian school. Formative period of low SES students is the source of de -motivation about academic career. **Singh & Choudhry** observed that "low socio-economic background adolescents remain under high level of frus-

tration than high status students in perusing academic activities"[2]. Economically deprived background, particularly those from rural set-up face more educational hindrance than urban low SES students. As, a student enters into school, he experiences that vulnerability is not only because of one's physical frailties but also because of socio-economic status in life or society. Low social status decreased the student's concentration, motivation and diligence in classroom. SES determines social group that sets developmental tasks or learning experience, social responsible behavior, emotional stability and economic independency. This situation is deleterious to the educational performance. Sociologists studied humans as the product of class and status and infinitely malleable. Hall et al. "An individual is chiefly a product of the society in which he/she lives."[3] He /she is regarded as an energy system that sustain itself by the transactions with external world. An utmost purpose of these transactions is individual survival. . SES affects are larger at the classroom level than at the school level. **Armor** mentioned "High –SES students have high academic achievement and low SES students inclined to be dropout of school"[4]. **Sirin** finds that as students of "low SES move through different classes, they tend to fall further behind their high SES peer"[5]. Low SES's students have inherent socio-economic limitation. **Farkas** stated that "A family's socioeconomic status whether high, middle or low reflects family' standing in society and available educational opportunities to children"[6]. These constraints inhibit their academic motivation and passion for better career. A student of low SES faces the issues of social discrimination and economic injustice more frequently in daily life affair. **Rajendran** revealed that "the high and middle levels of socio-economic status affect the academic achievement more than the low socio-economic status"[7]**.**

Objectives

1- To point out the relationship between SES and academic achievement of male , and female students at secondary level.

2- To compare the academic achievement of secondary level students with re gard to Gender.

3- To compare the academic achievement of secondary students with respect to Locality.

4- To examine the influence of Socio-Economic status on Academic Achieve ment of secondary students.

Research Hypotheses

1- There will be no acceptable relationship between SES and Academic Achieve ment of total male and female secondary Students.

2- There would be no well observed difference in the academic achievement of secondary students with regard to gender.

3- There will be no well noted difference in the academic achievement of stu dents with regard to locality.

4- There will be no noted influence of SES on Academic Achievement of sec ondary students.

Methodology:

To carry out study, investigator adopts various procedures to frame research design. Investigator reviewed numerous studies from (2015 to 2021) related to Socio-Economic Status and academic achievement of students. A SES scale (2014) developed by Ashok Kalia and Sudhir Sahu was applied to collect the desired data. The scale has 40 items with the reliability by split half and test-retest method .71 and .89 respectively. A sample of 698 students, of Aligarh District was taken through stratified random sampling method. Sample includes 380 boys and 318 girls from urban and rural background. Mean, Standard Deviation, Pearson Product Moment Correlation, and t-test used to analyze the data. The aggregate marks acquired by the students in the previous 9th class were treated as Academic Achievement.

Analysis

In order to achieve the objectives of this research the data was analyzed with the Support of coefficient of correlation, t test and ANOVA as statistical techniques. The obtained results are being presented below as per the formulated hypotheses.

Hypothesis-1

There will be no acceptable relationship between SES and academic achievement of Total male and female secondary students.

This hypothesis was tested with the help of t-test. The result is presented in the table-1

Table -1 - Presenting the relationship between socio-economic status and academic achievement of Total Male and Female students .

Variable pairs	students	N	r-value	Sig. (*p*)
Socio-Economic Status & Academic Achievement	Total Students	698	.394**	.00
Socio-Economic Status & Academic achievement	Male Students	380	.387**	.00
Socio-Economic Status & Academic achievement	Female Students	318	.416**	.00

Significant at .05 level

From the above table-1, it is evident that the value of Pearson correlation (r) between Socio-economic status and academic achievement was found to be .394** which is positive and moderate. On the given values it can be easily inferred that SES IS significantly correlated to the academic achievement. It shows that the two variables are associated positively. Moreover, the value of r is significant at .05 levels. It means that the H0-1 would be rejected. It means there is a relationship between Socio-economic status and academic achievements of Secondary School Students. It can also be inferred that academic achievement of the total sample

selected for the present study is significantly correlated with (SES). This relationship is positive which means if social status increases then Achievement also increase .Hence, it can be inferred that socio-economic status and achievement are positively correlated with each other and is also substantiated by many researchers like Shakir (2014)[8], Hassan (2016)[9], Sindhu (2016)10, and Azeem (2018)11, found a positive relationship between socio-economic status and academic achievement.

The results showed in the table- 1 conform that SES is important factor and directly and indirectly influence academic achievement of students. Family background of student in the form of parent's education, guidance ability, academic experience, and family economic stability all these influence the academic performance of student. Parents belonging to high SES tend to be motivating their wards for getting higher academic achievement. Possible reasons perceived by the investigator may be that students of High SES do not let them facing various social and economic constraints, so they maintained high level of educational aspiration and peruses high quality education.

From the above table 1- it is evident that the value of Pearson correlation (r) between Socio-economic status and academic achievement (Male) was found to be .387** which is positive and moderate. It shows that the two variables are associated positively. Moreover, the value of r is significant at .05 level. It is that the H0-(1) will be rejected. It means, here is a relationship between Socio-economic status and academic achievement of Secondary School Male Students. And this relationship is positive which means if socio-economic status increases then Achievement increase and vice versa. Hence, it can be inferred that SES and academic achievement are correlated with each other. Similar results were found by the Akhter (2012)[12], Shakir (2014)8. Sindhu (2016)[10], and Armor (2018)4.

Socioeconomic status can has sweeping effects on individuals. There are differences among high, middle and lower class students. The higher a student's SES, the higher the chance to materialize the resources of family in efficient way, thus, they get high academic achievement. This relation has been found in general, but exceptions are always there. Highly educated parents give more future oriented guidance to their children. All of these possibilities would account for a positive relationship between SES and academic achievement.

From the above table-1, It is evident that the value of Pearson correlation (r) between Socio-economic status and academic achievement (Female) was found to be .416** which is positive and moderate. It shows that the two variables are associated positively. Moreover, the value of r is significant at .05 levels. It means that the H0-(1) will be rejected. It means there is a relationship between SES and academic achievement of Secondary School female Students. And this relationship is positive which means if socio-economic status increases then Achievement also increase. Hence, it can be inferred that SES and academic performance are positively correlated with each other. The similar results were found by **shakir (2014)**8**,** Yusuph (2016)[13], Alam (2017)[14], and Azeem (2018)[11]**.**

The plausible reasons behind female's being more sensitive to SES may be that they are very tender by nature, more adjustable and susceptible to the societal and familial conditions. That's why sometimes they excel in low SES conditions also. they are being discriminated on the grounds of being a weaker section of the society, indoctrinated from beginning that they have to bear family in future and should do household chores, when their familial background is poor, generally, drop-out begins from girl child. Ground reality reported by mass media time to time highlights the bitter truth that in some families girls are not allowed to go to the school regularly. This shows that SES plays a crucial role in the education of female students. All these mentioned reasons make female more social status prone.

HO -2: There would be no well observed difference in academic achievement of students with regard to gender.

Table 2 : ***Comparison of Mean Scores of Academic Achievement on the Basis of Gender***

Gender	N	Mean	S D	df	t-value	p-value/ remarks
Girls	430	81.63	9.24	696	-.275	0.784 (N.S.)
Boys	268	81.43	8.95			
N.S.= Not Significant at 0.05 level						

From the table 2 - It is evident that the value of t is -.275 which is not significant at .05 levels. So, the **H0 (2)** is not rejected. It means there is no difference between Achievement of boys and girls students studying in Secondary Schools. Hence, it can be inferred that male and female students do not differ in their Achievement. The study of Alam **(2016)14,** supports this results. This might be due to the girls' sincerity, focusing on goal; career and utilizing their time and energy in study constructively as the boys' doings.

Difference in term of academic performance in male and female students is diluting gradually which have been reported by many research conducted in India. The reason behind this is that India is adopting inclusive education policies in true spirit. Since, the last two decades, country has offered free education to all children poor or rich or urban, all the way to high school..

HO :(3) There will be no well noted difference in the academic achievement of students with regard to locality.

Table 3: Presenting ***comparison of Mean Scores of Academic Achievement on the Basis of Locality***

Locality	N	Mean	S D	df	t-value	p-value/ remarks
Urban	378	82.56	8.76	695	3.152	0.002*
Rural	319	80.39	9.42			
*Significant at 0.05 level						

Table -3, showed value of (t- 3.152) that is significant at .05 levels. So that the H0 (3) is not supported. It indicates difference between Achievement of urban and rural students studying in Secondary Schools. Hence, it can be inferred that students from urban and rural locality differ in their Achievement. Further, the mean score of Achievement of urban students was found to be higher than that of their counterparts. The achievement disparity that exist between rural and urban students are mainly in form of exposure to advance knowledge, self-expression, access to school education, family guidance and support, financial status, gender discrimination, inaccessibility of relevant learning material, coaching facilities and responsibilities of family norms. These socio-economic and familial constraints puts hurdle in rural students attempt to get education.

HO (4): There will be no well noted influence of SES on Academic Achievement of secondary students.

Table: 4(a)-One Way ANOVA** for the* influence of SES**, on academic achievement** ***of Students studying in secondary Schools

Source of Variance	Sum of Squares	df	Mean Sum of Square	F-ratio	Sig.
Levels of Socio–Economic-Status	12614.41	2	6307.20	96.58*	.000
Error (SSW)	45386.13	695	65.30		
Total-	4700324.00	698			

Hence Table 4(a) - Shows F-values for academic Achievement scores of students belonging to three levels of SES which is 96.58. This value is significant at .005 levels. It is inferred that the scores of Achievement of students having three different levels of SES studying in the Secondary Schools of Aligarh differ significantly. Hence, the Null Hypothesis *is* rejected. It may be concluded that SES of the students studying in Secondary Schools does influence the Achievement. But, it is not clear from the above table that which group has higher achievement. In order to find out this, researcher carried out Scheffe's Test for multiple comparison. The output of this multiple comparison is given below in table -4(b)

Table: 4(b)- Multiple Comparison Table (Scheffe's Test) for Academic Achievement

Levels	Mean Differences	S.E.	Sig. (p-value)	Inference
High SES - Average SES	9.23*	0.664	.000	Sig.
High SES - Low SES	6.28*	2.23	.019	Sig.
Average SES - Low SES	-2.95	2.19	.406	N.S.

From table 4 (b)- It is evident that mean difference of Academic Achievement in High SES group and Average SES group is 9.23 which is significant at .05 level. Similarly, this difference (i.e. 6.28) is significant for High SES group and Low SES group. But it is not significant for Average SES group and Low SES group. It may also be inferred that the Academic Achievement of High SES group was the best among all sub groups followed by Low SES group and Average SES group has the lowest Academic Achievement among all. From above result, it is evident that SES significantly affects the academic achievement of urban and rural students, making high SES group higher achiever than that of average and low SES group. Similar results are being presented by Alam **(2016)14,** in his study. Possible reasons perceived by researcher are, that urban students from high SES group avail better educational opportunities and resources than that of average and low-level group. High SES group students are socially more secure, having more exposure, and less worried about educational results; they face less pressure from family side also. Moreover, they get more monetary support from their family. These reasons make the urban students good achievers than their counter parts.

Conclusion and Implication

A research work is considered valuable when findings inferred through it can be used to enhance the existing teaching –learning practices. This study is related to SES and academic achievement and casts light on the influence of socio-economic status on academic achievement. .results indicates that secondary students having high and average SES have good academic achievement than students of low SES. There is strong relationship in SES and achievement. The social and economic context is vital in understanding school success. Students of low status should be motivated through financial help in form of scholarship. Participation of low status students in co-curricular activities makes them to manage the feeling of inferiority and encourage competing with the high status students. The study provides empirically valid and conceptually rich statistical results and gives a critical examination of how certain factors influence the relationship between socio-economic status and academic achievement. Findings of the study will serve a practical use for education policy makers and administrators in assessing the implication of student's family socio economic background on educational achievement and led to provide equal academic opportunities for all.

❐

References :

1. ***Kalia, AK, Sahu, S,*** *Manual for socio-economic status scale (urban& rural), National Psychological Corporation: Agra; 2014; p.03.*
2. ***Singh P, Choudhary G****, Understanding Frustration level among adolescents in relation to their socio- economic status, ZIJMR, 2015; 5(03):165-174.*
3. ***Hall, CS,*** *Theories of personalities, Wiley India Pvt.Ltd, 2006; p.123.*
4. ***Armor,DJ,*** *The impact of school SES on student achievement: Evidence from US statewide achievement data [internet], Educational Evaluation and Policy Analysis,2018[cited2024 Jan 10].Available from : https://www.jstor.org/stable/45281336*

5. **Sirin,** *Socioeconomic status and Academic Achievement: A meta-analytic review of Research, Review of Educational Research, 2005; 75 (3): 417-53.*
6. **Farkas,** *G, Quantitative studies of oppositional culture: Arguments and evidence. In: Ogbu ,JU, Editor .Minority status, oppositional culture, and schooling,Routledge, 2008 ; 312-47.*
7. **Rajendran, S,** *Parents' education and achievement scores in chemistry, Edutracks , 2017; 6(1): 30-33.*
8. **Shakir, M,** *Academic anxiety as a correlate of academic achievement, Journal of Education and Practice, 2014; 5(10): 29-36.*
9. **Hasan, M,** *Academic anxiety of male and female secondary school students in relation to their academic achievement, Educational Quest, An International Journal of Education and Applied Social Sciences , 2016 [cited 2023 Dec 15]; 7(1): 31-37. Available from: https:// doi.org/ 10.5958/ 2230-7311.2016.00014.3.*
10. **Sindhu, P,** *Impact of anxiety on academic achievement among engineering students, The Interna tional Journal of Indian Psychology, 2016 [cited 2023 Feb]; 4(1); 100-07. Available from: https:/ /doi.org/10.25215/0401.111*
11. **Azeem, M A,** *Study of Academic Anxiety and Academic Achievement among Secondary School Students, International Journal of Research in Social Sciences, 2018; 8(3): 147-61.*
12. **Akhtar, Z,** *Socio-Economic Factors Effecting the Students Achievement: A Predictive Study, International Journal of Social Sciences and Education, 2012; 2(2): 281-87.*
13. **Yusuph, K ,** *Anxiety and Academic Performance among Secondary School Pupils in Tanzania, British Journal of Education, Society & Behavioural sciences, 2016; 14(3): 1-7.*
14. **Alam, M J F,** *Relation between academic anxiety and academic achievement among school stu dents of Murshidabad district, International Journal of Advance Research and Innovative Ideas in Education, 2017; 3(3): 354-57.*

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरण के संबंध में घोषणा

(फार्म–4 नियम–7)

1.	समाचार पत्र का नाम	:	**पूर्वदेवा**
2.	प्रकाशन का स्थान	:	मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010
3.	प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
4.	मुद्रक का नाम	:	पूनमचन्द बैरवा
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	व पता	:	मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010
5.	प्रकाशक का नाम	:	––– तदैव –––
	राष्ट्रीयता	:	
	व पता	:	
6.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. हरिमोहन धवन
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	व पता	:	मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010
7.	स्वामी का नाम	:	''मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी''
	व पता	:	बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने उज्जैन (म.प्र.) 456 010

मैं पूनमचन्द बैरवा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य है ।

उज्जैन
दिनांक : **31 मार्च, 2025**

हस्ताक्षर
पूनमचन्द बैरवा
प्रकाशक

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

❐ संक्षिप्त विवरणिका ❐

तथागत् बुद्ध के संदेश 'अत्त दीपो भव' तथा डॉ. अम्बेडकर के आव्हान 'संगठित रहो, शिक्षित बनो, संघर्ष करो' से अनुप्राणित प्रदेश के प्रमुख दलित समाजसेवियों, साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों के सम्मिलित प्रयास से सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्परा से समृद्ध नगर उज्जैन में एक स्वशासी संगठन के रूप में 'मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना की गई। तदुपरान्त म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट,1973 के अन्तर्गत (क्रमांक 19066 दिनांक 18 नवम्बर,1987 पर) संस्था का विधिवत् पंजीकरण कराया गया है। अकादमी का प्रधान कार्यालय उज्जैन स्थित है। ।

❐ घोषित लक्ष्य

अकादमी का लक्ष्य समाज के शोषित–पीड़ित दलितजनों को अपने मानवीय अधिकारों एवं समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से अवगत कर, उनमें नवीन चेतना का संचार करना और शोषण व असमानता के विरूद्ध संघर्ष के लिए सतत् प्रेरित करना है। इस निमित्त दलित साहित्य सृजन एवं शोध–अनुशीलन तथा तदनुरूप परिवेश का सृजन करना है। साथ ही दलितों के मानवोचित सामान्य अधिकारों की उपलब्धि के लिए उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर अपनी सक्रिय वैचारिक–साहित्यिक पहल द्वारा उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता की समाज में पुनर्स्थापना का प्रयास करना है।

❐ अकादमी की प्रमुख गतिविधियाँ :

निर्धारित कार्य योजना के अनुसार अकादमी की प्रमुख गतिविधियाँ एवं उल्लेखनीय उपलब्धियाँ एवं संचालित गतिविधियाँ अधोलिखित हैं :

❐ सामाजिक विज्ञान शोध केन्द्र की स्थापना

अकादमी की विशेष योजनानुसार उज्जैन में अनुसूचित जाति के विकास एवं समस्याओं पर केन्द्रित एक उच्चस्तरीय अध्ययन–अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। जिसके अन्तर्गत एक समृद्ध ग्रन्थालय, शोधपत्र–पत्रिकाएँ, शोध–अध्ययन कक्ष, म्यूजियम आदि अन्य आवश्यक अनुसंधान सुविधाएँ उपलब्ध है।

❐ ग्रन्थालय एवं प्रलेखन केन्द्र

अकादमी के ग्रन्थालय में दलित साहित्य, भारतीय समाज व्यवस्था, धर्म,दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि विषयों पर प्रमुख ग्रंथ संग्रहित हैं। ग्रन्थालय में देश के विभिन्न भागों से प्रकाशित दलित समस्याओं पर केन्द्रित पत्र–पत्रिकाएँ, जर्नल्स आदि संग्रहित किये गये हैं। ग्रन्थालय में शोध– अध्ययन की विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाकर उसे एक समृद्ध प्रलेखन केन्द्र के रूप में विकसित किया जा रहा है ।

❐ राष्ट्रीय सम्मेलनों, प्रान्तीय सम्मेलनों, राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों का आयोजन, कार्यशाला, व्याख्यानमाला, जयंती, स्मृति व्याख्यान कार्यक्रमों का आयोजन आदि

❐ दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार

अकादमी द्वारा दलित साहित्य, इतिहास, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में सृजित उत्कृष्ट कृतियों, ग्रन्थों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से उच्चस्तरीय 'दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार' की स्थापना की गई है।

❐ शोध पत्रिका "पूर्वदेवा" का प्रकाशन–'पूर्वदेवा' का वर्ष 1994 से नियमित प्रकाशन किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत माह–मार्च, 2025 तक 120 अंकों का नियमित प्रकाशन किया जा चुका है जिसमें 1064 से अधिक शोध आलेख प्रकाशित किये जा चुके हैं

❐ पुस्तक प्रकाशन – पुस्तक, पाण्डुलिपि प्रकाशन योजनान्तर्गत अब तक 12 पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है। साथ ही राष्ट्रीय सम्मेलन प्रसंग विशेष पर स्मारिकाओं का प्रकाशन भी किया गया है।

❐ अकादमी भवन व परिसर – प्रशासकीय भवन, जिसके अनतर्गत अकादमी कार्यालय, ग्रन्थालय एवं शोध केन्द्र एवं संत कबीर सभागृह संचालित है। अकादमी का प्रधान कार्यालय – बाणभट्ट मार्ग (केन्द्रीय विद्यालय सम्मुख) उज्जैन मध्यप्रदेश में स्थित 1.672 हेक्टेयर क्षेत्रफल के भूखण्ड पर अवस्थित है।

पी.सी. बैरवा–सचिव

डॉ. हरिमोहन धवन–अध्यक्ष